बाजीराव-मस्तानी

ऐतिहासिक-उपन्यास

केशर

●

प्रकाशक

जय प्रकाशन

कबीरचौरा, वाराणसी-१

प्रथम संस्करण '५८

साढ़े चार रुपये

आवरणसज्जा

मधुर

मुद्रक

राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,

लहरतारा, वाराणसी-४

हास-रुदन के सम-सहचर—

अशेष,

तुम्हें।

—केशर

चन्द मिनट

उपन्यास के पूर्व आप से चन्द मिनट अपने लिये ले रहा हूँ। 'भूमिकाबाजी' का मैं पक्षपाती नहीं परन्तु 'बाजीराव-मस्तानी' ऐतिहासिक उपन्यास है और इस नाते अपनी चन्द बातें आप तक पहुँचाने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ।

बाजीराव (पेशवा द्वितीय) और उनकी प्रेमिका मस्तानी से, भारतीय इतिहास में जिसे तनिक भी रुचि है, अपरिचित नहीं होगा। पेशवा और मस्तानी के प्रणय को लेकर, इतिहास में परस्पर-विरोधी मतों की कमी नहीं। मस्तानी को कोई मुहम्मद खाँ बङ्गश के पास होना सिद्ध करता है तो कोई मालवा के किसी संगीतज्ञ-मुसलमान की कन्या! मगर इतिहास का एक और पक्ष है, जो यह दृढ़ता से मानता है कि मस्तानी और पेशवा का मिलन ओरछा में हुआ, जब वे महाराज छत्रसाल की सहायता के लिये बुन्देलखण्ड गये थे। और बहुत खोज-बीन के पश्चात् मैंने भी इसी मत को स्वीकार किया है।

आज के इस 'प्रयोगवादी-युग' में, लगता है, उपन्यास की परिभाषा ही बदल दी जानेवाली है। प्रयोग, प्रगति के सङ्केत पर होते हैं और प्रगति कभी बोझिल नहीं होती, दुरूह भी नहीं होती। प्रस्तुत

उपन्यास में, मैंने भी 'प्रयोग' किया है—परिभाषा बदलकर नहीं, प्रगति के सङ्केत पर। ऐतिहासिकता की सतर्क-रक्षा करते हुए ही यत्र-तत्र कल्पना को प्रश्रय दिया गया है; इसलिये कि उपन्यास लिखना था, इतिहास नहीं। संपूर्ण उपन्यास मरणासन्न पेशवा के चिन्तन-प्रवाह में चित्रित हुआ है, अस्तु कथा-वस्तु की गति में तीव्रता भी है, अवरोध भी।

मेरी सफलता-असफलता के वास्तविक निर्णायक आप ही हैं। 'टकसाली-आलोचनाओं' में सत्य नहीं होता, वह तो आपके निर्णय में ही मिलेगा और वह मेरे लिये अमूल्य है। जानते हैं, आपके निर्णय के लिये मैं कितना आकुल रहूँगा? मेरे लिये पाँच नये पैसे के एक पोस्टकार्ड की 'हत्या' करेंगे अवश्य। बस।

बी० ६/१, फीलखाना,
वाराणसी।
१-१-५८

—केशर

मर्म का घाव

भुजायें रह-रहकर फड़क उठती थीं पर उनमें वह जोश न था, जिससे मुगलिया इमारत की नींव धसक उठी थी। नयनों में लाल डोरे तो थे पर उनमें वह ज्वलन्तता न थी, जिससे अस्तप्राय मराठा-सूर्य दक्षिण ही नहीं, सम्पूर्ण भारत पर तप उठा था। मन में महत्वाकांक्षा की लपटें अब भी लपलपा रही थीं पर उनमें वह दाहकता न थी, जिससे विरोध मोम-से पिघलकर बह जाते थे। अठारहवीं शती का चौथा दशक—महाराष्ट्र के भविष्य की वह डाँवाडोल स्थिति थी, जैसी महाराज सम्भा जी के बलिदान के उपरान्त हो गयी थी। छत्रपति का महान् स्वप्न टूट रहा था, बिखर रहा था।

पेशवा बाजीराव ने पलङ्ग पर पड़े-पड़े एक दीर्घ निश्वास लिया। लगा कि अन्तस के द्वन्द्व का एक टुकड़ा छिटककर कक्ष में बिखर गया हो—"चिमणा जी!" यह तड़प थी उस शेर की, जो विवश था, पङ्गु था।

"नाथ!" काँपता हुआ, भीगा स्वर।

आवेग को झटका लगा। तनी हुई पुतलियों का तनाव ढीला पड़ा—"कौन, तुम हो रानी!" आँसू आँखों में नहीं, स्वर में छलक रहा था—"लगता है, सचमुच हार गया, कभी अपनी हार स्वीकार नहीं की, पर जीवन की इस दौड़ में हार कर ही रहा....तुम्हारा समाज, सामाजिक-उच्चता का ढोंग—मुझे पराजित करने के लिये कृतसङ्कल्प हो उठा है न?....और जानती हो, अपराजेय बाजी ने अपनी हार...."

कण्ठावरोध हुआ, फिर आवेग भड़क उठा—"तलवार की धार पर विजय-दीप जलानेवाला बाजीराव, अपनी पराजय के तिमिर में खो गया है...." स्वर क्रमशः उच्छ्वासों में घुलता गया। पेशवा के शिथिल हाथ ने धीरे से, पास ही खड़ी काशीबाई का आँचल पकड़ लिया।

रानी अपने को सम्हाल नहीं पायी। मरणशय्या पर पड़े अपने शार्दूल पति बाजीराव पेशवा को, वह जिस मर्मभेदी करुणा में छटपटाता देख रही थी, अब असह्य हो उठा। आँखों में तीन-चार बूँदें झलकीं परन्तु तुरत ही मिट भी गयीं—"अपने को संयत करें नाथ !"

"संयत करूँ ?" पेशवा की आँखों का तरल-शून्य जैसे हाहाकार कर उठा।

"नाथ !"

"रानी !" पेशवा के स्वर में कम्पन था और पश्चात्ताप की झलक भी—"तुम मुझसे घृणा क्यों नहीं करती हो ? बोलो, बोलो रानी, आज सारा महाराष्ट्र मुझसे घृणा कर रहा है....तुम....तुम्हारा यह बलिदान...."

रानी ने पति के चरणों पर अपना मस्तक टिका दिया—"दुनिया आपको क्या समझती है, यह मेरे लिये कोई महत्व नहीं रखता। मस्तानी मेरी अनुजा है। मेरा दुर्भाग्य, जो आपको विश्वास नहीं...."

रानी के आँसुओं ने झकझोर कर रख दिया—"मुझे क्षमा कर दो रानी !" उनका काँपता हुआ दायाँ हाथ रानी के मस्तक पर था।

"नाथ !"

"तुम्हारा बलिदान अपूर्व है रानी !"

"नहीं नाथ, वह तो मेरा कर्तव्य है...."

खाँसी का दबा हुआ दौर उभड़ने को हुआ। पेशवा के सीने की हड्डियाँ छितरा पड़ने को हो गयीं। रानी ने सिहरकर उनकी ओर

नहारा—"रानी, मैंने तुम्हें क्या दिया....ओह, कुछ नहीं...." करुणा और पीड़ा में डूबे शब्द रानी के मर्म पर घाव बनकर अङ्कित हो गये।

"वैद्यराज !"

राजवैद्य कक्ष के बाहर, पेशवा-परिवार के कतिपय सदस्यों और मराठा-सामन्तों से घिरे, सहकारियों से दवा तैयार करा रहे थे। रानी का चीत्कार सुन, सब-के-सब भागे हुए अन्दर आये।

पेशवा मूर्च्छित हो गये थे।

"वैद्यराज !"

वैद्यराज ने एक दीर्घ-निश्वास के साथ रानी की ओर निहारा—"आप शान्त रहें...." और उन्होंने पेशवा की नाड़ी पर हाथ रख दिया। रानी मूर्तिवत् खड़ी थी। उपस्थित जनों की आँखें भर आयीं। पेशवा शीघ्र ही चैतन्य हुए। वैद्यराज की अमृतमयी-औषधियों ने अपना काम किया। आँखें खोलते ही पेशवा ने सबसे पहले रानी को ही देखा, जो अपने सुहाग-लालिमा पर छाती कालिमा की ओर निर्निमेष निहार रही थी।

राजवैद्य ने धीरे से रानी के कन्धे पर सान्त्वना की थपक दी और सबको बाहर चलने का सङ्केत करते हुए, डगमग पगों से घूम पड़े। रानी ने चौंककर पेशवा की आँखों में झाँका—वे खुली तो थीं, पुतलियों में स्पन्दन भी था, परन्तु लगा कि अपनी ज्योति खो चुकी हों।

"नाथ !" रानी का विकलमन क्रन्दन कर उठा—"आपको क्या हो गया है नाथ !"

पेशवा की आँखें पूर्ववत् शून्य में कुछ खोजती-सी रहीं।

सहसा उनके शरीर में कम्पन हुआ। खुली हुई पलकें धीरे से ढँप गयीं। अत्यन्त क्षीण, अस्फुट स्वर शुष्क अधरों पर फिसला—"मस्तानी प्रिये, तुमको मैं मुक्त नहीं ही कर पाया....तुम्हें क्या मालूम,

तुम्हारे बाजी ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली है....काश कि तुम्हें समझा पाता कि अनन्त-पथ पर वेग से आगे बढ़ रहे मेरे प्राणों के अणु-अणु में मात्र तुम्हीं हो, बस...."

उनके इस करुण-उन्माद ने रानी को विह्वल कर दिया।

झरोखे से शीतल पवन आ रहा था मगर पेशवा के घायल अन्तर में जो ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी, वह और उद्दीप्त होती गयी। वैद्यराज पुनः आ गये। पेशवा की नाड़ी की गति क्रमशः स्वाभाविक हो रही थी। पेशवा के निस्तेज मुख की ओर क्षणभर निहारने के बाद, जब वे मुड़े तो उनकी छलकती आँखें बरसने लगी थीं। रानी को सम्भवतः उनके आने और जाने का भास नहीं हो पाया।

"अप्पा!"

रानी ने सहम कर उनकी ओर देखा—"नाथ!"

"ओह, तुम रानी....मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा था?" स्वर लड़खड़ा रहा था—"ओह, तुम्हारी आँखों में आँसू....तुम रो रही हो रानी...."

"नहीं, नाथ!"

"नहीं!" पेशवा के पीत मुख पर आवेग ने रक्त छलका दिया—"अप्पा कहाँ है?"

"वे तो सतारा में हैं...."

"सतारा....सतारा...." पेशवा की दृष्टि झरोखे की ओर उन्मुख हो गयी—"ओह, मैं उन्मादी हो गया हूँ रानी....उन्मादी....पानी...." रानी ने झटपट पास ही चन्दन की चौकी पर रखी सोने की झारी का मुख, पेशवा के सूखे ओंठों से लगा दिया। दो घूँट लेने के बाद—"और नाना भी?"

"नहीं, वह पूना में है...."

"पूना में....ओह, शाहू महाराज के लिये भी मैं घृणा का पात्र

बन गया हूँ....फूल-सी कोमल, गङ्गा-सी निर्मल और धरती-सी स्नेह-शीला मेरी मस्तानी—महाराष्ट्र को कण्टक प्रतीत हो रही है और उस कण्टक को दलित करने के लिये...." स्वर में जितनी ही उत्तेजना थी, उतनी ही निढालता भी—"मैं सब समझता हूँ, इन सब में महाराज की सहमति है...."

"नहीं, नाथ !"

"तो ?"

"आपको भ्रम हो गया है...."

"हुं !" पेशवा के अधरों पर कसकती हुई-सी स्मिति लौट पड़ी—"एक बात बताओ रानी, मस्तानी क्या सचमुच जीवित है ?"

रानी को रोमाञ्च हो आया—"ऐसे अशुभ की आप कल्पना क्यों करते हैं नाथ !"

"तुम मुझे भुलावा देना चाहती हो रानी !" उनकी आँखें भर आयीं—"चिमणा जी ने लिखा था, मस्तानी को मुक्त कर दिया गया है। वह स्वस्थ-सानन्द है—कितना दारुण विद्रूप है मेरी विवशता का। है कि नहीं ? स्वतन्त्र रहकर मस्तानी बाजी से दूर रह सकती है ? —तुम्हें विश्वास है रानी !"

उसी समय द्वार से दासी की आवाज आयी—"पूना से पेशवा-माता का अनुचर...."

पेशवा चौंके—"क्या माता जी ?"

"नहीं, उनका अनुचर स्वामी !" दासी ने विनम्र स्वर में कहा।

"मैं देखती हूँ...." रानी द्वार की ओर बढ़ गयी। पेशवा के मुख से एक दीर्घ-उच्छ्वास निकल गया। द्वार पर ठमक कर रानी ने देखा तो उनकी पलकें ढँप गयी थीं।

पेशवा-माता राधाबाई के अनुचर ने रानी का अभिवादन किया और एक खरीता उनकी ओर बढ़ा दिया। पत्र रानी के ही नाम

था। उसे लेते समय उनका हाथ काँप उठा है, अनुचर ने स्पष्ट अनुभव किया—"मेरे लिये कोई आज्ञा ?"

"नहीं, अब तुम जा सकते हो। कल सबेरे जैसा होगा, तुम्हें उत्तर मिल जायगा...."

अभिवादन के पश्चात् पीछे हटता हुआ अनुचर बाहर चला गया।

रानी ने खरीते का बन्द तोड़ा और तब उसकी दृष्टि पत्र में डूब गयी। पेशवा और उनको आशीर्वाद के उपरान्त लिखा था—

....बाजी अब कैसा है ? मुझ वृद्धा के कलेजे में उस निर्दयी ने जो चोट पहुँचाई है, वह मेरे लिये असह्य तो है ही, सम्पूर्ण महाराष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न बनकर रह गयी है। एक तुच्छ यवनी के मोह-जाल में फँसकर मेरा बाजी, अपने परम्परागत उच्चादर्शों से पतन के गर्त्त में गिर पड़ा है—ओह, बहू ! किसने कल्पना की थी ? अप्पा के द्वारा शाहू महाराज ने जो सन्देशा भेजा है, उसने मुझे झकझोर कर रख दिया है। यह अनर्थ देखने के लिये मैं जीवित हूँ बेटी ! शाहू महाराज ने बाजी की तुष्टि के लिये, मस्तानी को उसके पास पहुँचा देने की कामना प्रकट की है। परन्तु मेरे जीते जी ऐसा न हो सकेगा। कभी नहीं। मेरे निर्मल-मन पुत्र को पतित करने वाली उस यवनी—मस्तानी को, अगर वश चलता तो....

आगे और पढ़ा न गया।

एक माँ ने, मान-मर्यादा के ढोंग में, अपने पुत्र का बलिदान कर देने का निश्चय कर लिया था। मातृत्व क्या इतना निर्मम हो सकता है ? सोचा था, अन्ततः पेशवा-माता को वत्सलता विवश करेगी और वे आकर पुत्र को अपनी छाती से लगा लेंगी। इसी आशा को लेकर उसने, पेशवा की मरणासन्न-अवस्था का अत्यन्त मार्मिक वर्णन अपने पत्र में किया था परन्तु व्यर्थ....

तभी—"भाभी !" पीछे से गम्भीर स्वर आया।

रानी ने चौंक कर देखा—"ओह, तुम, नीरा जी!" उसने द्वार पर खड़े तरुण मराठा-सरदार का स्वागत किया—"आओ, आओ, कब आये?'

"पूज्य राव कैसे हैं भाभी!" उसने झुककर रानी का चरणस्पर्श कर लिया।

"कैसे हैं!" रानी का स्वर थरथरा रहा था—"नीराजी, तुम्हारे महाराष्ट्र को पेशवा के बलिदान से क्या मिल जायगा?" पेशवा माता का पत्र अब तक उसके हाथ में था—"देखो, एक माँ ने अपने पुत्र को...."

"मैं सब जानता हूँ भाभी!"

"जानते हो?"

"हाँ!"

"तो क्या तुम भी पेशवा के बलिदान का समर्थन करते हो नीरा जी!" रानी का स्वर तीव्र हो आया। हाथ से पत्र छूटकर फर्श पर आ रहा।

नीरा जी का गौर मुख आरक्त हो गया—"भाभी, आप मुझे आज्ञा दीजिये, पूज्य राव की शान्ति को अगर अपना मस्तक देकर ले आने में सफल हुआ तो मेरा जीवन सार्थक हो जायगा। मैं खूब जानता हूँ, शाहू महाराज ने सहमति भले ही प्रकट की हो परन्तु मस्तानी के प्रति सम्पूर्ण महाराष्ट्र में जो कुत्सा उमड़ पड़ी है, उसके समक्ष, उनके प्राणों का मूल्य नगण्य ही सिद्ध होगा...."

"हूँ!"

"आप मुझे आज्ञा दें!" नीरा जी के अन्तस की उत्तेजना स्वर में छलकी पड़ रही थी—"मेरी और मुझ जैसे पेशवा-भक्तों की तलवारों में, एकबार सारे महाराष्ट्र से टकराने की शक्ति है भाभी, विश्वास रखो!" और उसने म्यान से तलवार निकाल कर रानी के

चरणों पर रख दी—"भाभी, मस्तानी उनकी की जीवन-ज्योति है और वह ज्योति हमारे लिये...."

"नहीं !" रानी ने दृढ़ स्वर में कहा—"तुम मस्तानी के लिये गृह-युद्ध का सूत्रपात करोगे नीराजी !" वह रुकी, स्वर में भावी आशङ्का का कम्पन स्पष्ट हो गया—"उन्मादी हो रहे हो क्या ? महाराष्ट्र की एकता, पेशवा के प्राणों की आहुति से कहीं महत्वशालिनी है, आवेश में इसे तुम भूल बैठे हो....आओ, चलो...." रानी ने नीरा जी के कन्धे पर स्नेहपूर्वक हाथ रखा और द्वार की ओर बढ़ गयीं। नीरा जी ने अनुसरण किया।

● ●

पेशवा के मर्म का घाव, गहरा ही होता गया। राधाबाई ने उस घाव को अपनी हठवादिता की आँच पर तपाकर और भयङ्कर बना दिया था। जिसमें पेशवा का जीवन-अस्तित्व तीव्र गति से सिमटता जा रहा था। अजेय मुग़ल-सत्ता को अपनी ठोकरों से हिलाकर रख देने-वाले बाजीराव पेशवा की जिन्दगी—हारी हुई जिन्दगी में, अब थकन भरती जा रही थी। महाराष्ट्र-सूर्य राहुग्रसन की कल्पना से म्लान पड़ गया था। पूना और सतारा के जन-जीवन में विस्फोटक-तत्व तिरने लगे थे। नादिरशाह जैसे दुर्दान्त लुटेरे के मन में अपने वीरत्व-तेज की आभा से सिहरन भर देनेवाला बाजीराव—मरणशय्या पर पड़ा, अपने को पूर्णतया निस्सहाय पा रहा था।

२७ अप्रैल १७४० की सूनी सन्ध्या, नर्मदा की उच्छृङ्खल लहरियों को चूम रही थी। रावर का राजभवन खड़े-खड़े ऊँघ रहा था। कई दिनों के बाद, आज पेशवा के गुल-से हो गये जीवन-प्रदीप

में जाने कहाँ से चमक आयी है। रानी के साथ ही नीराजी ने भी,
पेशवा की परिचर्या में अपने आपको भुला दिया था। नर्मदास्पर्शित
सुशीतल पवन कक्ष में पसरा पड़ रहा था।

"रानी ! पेशवा ने शान्त स्वर में पुकारा।

"नाथ...."

"देखो तो, मैं कितना स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ अपने आप में....
हाँ, स्वस्थ ही तो....वैद्यराज को विश्राम करने के लिये पूना भेज दो....
हाँ, नीरू कहाँ है ?"

"मैं पास ही हूँ पूज्य राव...." नीरू पेशवा के सिरहाने खड़ा
था, सामने आया तो आँखें अनायास ही बरस उठीं उसकी।

"रोता है, पगले ! रानी, देखो तो, अरे....तुम भी....ओह, तुम्हारे
आँसुओं को सह पाने की अब मुझमें शक्ति नहीं रही...." उनके शिथिल
हाथों ने नीराजी के दोनों हाथों को पकड़ लिया—"नीरू, तुम्हें अपनी
भाभी को समझाना चाहिये मगर...."

"पूज्य राव...."

"नीरू !"

"आप मुझे आज्ञा दें राव, आपकी शान्ति, प्राणों की ज्योति
को—मैं अपने मस्तक का अर्ध चढ़ाकर वापस ले आऊँगा...."

"नहीं, नीरू नहीं !" पेशवा विकल हो उठे—"मर्म के इस घाव
पर मरहम लगाने का समय नहीं रहा और पगले, मेरे इतने निकट
रहकर भी तूने मुझे नहीं समझा, दुख है। अगर मैं चाहता तो, महाराष्ट्र
में इतनी शक्ति नहीं थी, जो मस्तानी को मुझसे बिलग रख पाता—हाँ,
मैंने नहीं चाहा....नहीं चाहा इसलिये कि पराजित हो गया था....मर्म
का घाव, घाव में होती चिल्हक कितनी....कितनी मनोहर, कितनी...."
पेशवा का स्वर स्वाभाविक-सा होते हुए भी कितने करुणारूप में
अस्वाभाविक हो गया है—इसे नीराजी खूब समझ रहा था। वे क्या

कह रहे हैं, सम्भवतः स्वयं नहीं जान पा रहे थे। रानी आँचल में मुँह छिपाकर सिसकने लगी थी।

"पूज्य राव !"

"हूँ, नीरू ! पेशवा-पद पाये मुझे कितने वर्ष हुए ?"

"बीस...."

"बीस वर्ष ?" एक दीर्घ उच्छ्वास और—"ओरछा गये ?"

नीराजी ने अनुभव किया कि ओरछा का नाम लेते ही पेशवा की आँखों के कोर भींग आये। वह विचलित-सा हुआ, फिर सम्हलकर बोला—"बारह वर्ष...."

पेशवा की आँखें झरोखे के बाहर, दूर पर दीख रहीं पहाड़ियों की ओर केन्द्रित हो गयीं। जैसे कुछ खोज रही हों। नीराजी का हृदय धड़क उठा।

"नाथ...." रानी के हृदय का बाँध टूट चुका था। उन्होंने अपना मस्तक पेशवा के पैरों पर टिका दिया—"चलिये, हम पूना चलेंगे; मेरी माँग पर छा गई कालिमा माता जी देख नहीं पायेंगी...." लगा कि पेशवा के 'मर्म का घाव' फट गया हो। करुण, विवश दृष्टि से बिलखती रानी की ओर देखते हुए पेशवा दीर्घ निश्वास ले रहे थे।

सन्ध्या का धुँधलका रात्रि की गहनता में डूबा जा रहा था।

● ●

"नीरू !"

"राव...." रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। नीरू की आँखों में नींद नहीं थी। रानी काशीबाई पेशवा का मस्तक अपनी जाँघ पर

रखे बैठी थी। रावर भवन निस्तब्ध था। नीचे पथ से, जब-तब सन्त-रियों की सजगता की भनक मिल जाती थी।

राजवैद्य कई बार आए परन्तु हर बार पेशवा ने उन्हें विश्राम करने का अनुरोध करते हुए वापस कर दिया। राजवैद्य की मुद्रा पर छाई निराशा देख, नीराजी आतङ्कित हो उठा और उसके मन का यह आतङ्क कितना हाहाकारी था। पेशवा की शान्ति और स्थिरता की पृष्ठभूमि में मृत्यु की करालता नर्तन कर रही है—राजवैद्य की उस नैराश्याच्छन्न मुद्रा पर स्पष्ट अङ्कित था। फिर भी उसने अपने को जाने किस शक्ति के सम्बल पर—अस्थिर नहीं होने दिया था।

"राव, रात आधी से अधिक बीत गई, अब आप सोने का प्रयत्न करें...."

"सो जाऊँ ?" पेशवा के अधरों पर कराहती हुई-सी मुस्कान तिर आयी—"सोचता हूँ, जीवन के प्रति मानव को कितना अपार मोह होता है....होता है न ? परन्तु जानता हूँ, वही मोह मेरे मर्म पर घाव, ताजा और चिल्हकता हुआ घाव बनकर....उफ् !" वे विकलभाव से कक्ष में इधर-उधर देखने लगे।

"राव, भैया !"

"नीरू....तूने किसी से प्रीति की है ?"

प्रश्न इतना आकस्मिक और स्वर में इतना कम्पन था कि दोनों, रानी और नीरू—चौंक पड़े। नीरू सहसा कुछ उत्तर नहीं दे पाया।

"तो....तो, कभी मत करना !" पेशवा ओंठों के भीतर ही कह उठे—"कितना शान्त और सुखमय जीवन था....तलवारों की चमक में सोता था, जागता था...." उनकी पलकें ढँप गयीं।

स्मृतियों की झंझा में वे खो गये।

"सो गये ?" रानी ने पूछा, कुछ देर बाद। स्वर बुरी तरह काँप रहा था।

"शायद...."

परन्तु पेशवा की बन्द आँखों के रङ्ग-मञ्च पर स्मृतियाँ—अतीत, बीस वर्ष पूर्व का अतीत-जीवन सजग हो उठा था, सचित्र हो उठा था।

मर्म के घाव की पीड़ा पर स्मृतियों की विमुधता बिछ गयी थी, चिल्हक में स्फुरण लहर रहा था। रात्रि के चरण भागे जा रहे थे।

प्रवेश

सतारा सभा-भवन में निस्तब्धता व्याप्त है; परन्तु उस निस्तब्धता के बीच विचित्र सी सनसनी लहर रही थी। सभा-भवन ठसाठस भरा था। मराठा-राज्य के लगभग सभी उच्चाधिकारी तथा सुप्रतिष्ठित नागरिक यथास्थान विराज रहे थे। कुछ ही दिनों पूर्व पेशवा बालाजी विश्वनाथ का देहान्त हुआ था। आज महाराज को, नवीन पेशवा का निर्वाचन करना था। सभी की दृष्टि, स्वर्गीय बाला जी के ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव की ओर केन्द्रित थी। महाराज के सामने बैठे बाजीराव का तेजस्वी मुखमण्डल जितना ही गम्भीर था, उतना ही दीप्त भी।

सहसा महाराज की दृष्टि राज्य-प्रतिनिधि श्रीपतराव की ओर उन्मुख हुई—"आप कुछ कहना चाहते हैं?"

"महाराज!" राज्य-प्रतिनिधि थोड़ा महाराज की ओर झुका और तब उसका विनम्र किन्तु दृढ़ स्वर सभा-भवन में गूँज उठा—"मराठा-राज्य का एक अकिंचन सेवक होने के नाते, अनुरोध करने का अधिकारी हूँ कि आप अपने निर्णय पर गम्भीरतापूर्वक विचार अवश्य कर लें...."

"बाजीराव!"

"महाराज!" बाजीराव ने उठकर मस्तक नत किया—"आज्ञा?" उसकी सतर्क दृष्टि से यह छिपा न रहा कि श्रीपतराव की आँखों में प्रतिहिंसा के स्फुलिङ्ग नर्तन कर उठे हैं।

क्षणभर शाहू महाराज, बाजीराव के उन्नत मस्तक, सुदृढ़ भुजाओं

और प्रशस्त वक्ष-प्रदेश की ओर निहारते रहे और तब उनका स्वाभाविक गम्भीर स्वर फूट पड़ा—"हम तुम्हें पेशवा का रिक्तस्थान प्रदान करते हैं; साथ ही आशा करते हैं कि तुम इस महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व को अपने स्वर्गीय पिता के अपूर्व कीर्तिमान् से सदैव जाज्वल्यमान रखोगे...." उन्होंने अपने कण्ठ से बहुमूल्य मणिमाला उतार कर आगे बढ़ा दी। बाजीराव ने अपना मस्तक और नत किया, मणिमाला उनके कण्ठ में झूल उठी। शाहू महाराज ने सन्तोष से दीर्घ-निश्वास लिया। सभा-भवन, हर्षध्वनि से गूँज उठा। बाजीराव ने उड़ती हुई दृष्टि श्रीपतराव की ओर फेंकी।

"महाराज!" श्रीपतराव का स्वर विनम्र था परन्तु मुख पर आन्तरिक तमक स्पष्ट हो आयी—"बाजीराव से मेरा कोई व्यक्तिगत वैमनस्य नहीं मगर पेशवा का गुरुतर दायित्व सम्हाल पाने योग्य न तो उनके पास अनुभव है न व्यक्तित्व। युद्ध-क्षेत्र में वे शौर्य का प्रदर्शन करने में सफल भले ही हों परन्तु राजनीति का सञ्चालन करने के लिये...."

शाहू महाराज की मुद्रा गम्भीर हो आयी। उन्होंने शान्त-भाव से श्रीपतराव की बात काटी—"मेरा अपना विचार है, बाजीराव को समझने में आपको कुछ भ्रम हो गया है!"

"सम्भव है, महाराज!"

"मेरी परख धोखा नहीं खा रही है तो बाजीराव के व्यक्तित्व में वे समस्त गुण विद्यमान हैं, जो मराठा-राज्य की नींव को पाताल तक पहुँचा देने में समर्थ होंगे। समय और अवसर की प्रतीक्षा करें। मेरा विश्वास है, आपका भ्रम अवश्य दूर हो जायगा...." उनके स्वर में जितनी ही सहजता थी, उतनी ही गम्भीरता। श्रीपतराव चाहकर भी कुछ कह नहीं पाया। सम्पूर्ण राज-सभा ने मौन से महाराज के विचारों का समर्थन किया।

श्रीपतराव खिसियाया-सा अपने स्थान पर बैठ गया। उसके समर्थक, कतिपय सामन्तों के बीच असन्तोष की फुसफुसाहट को लक्ष्य कर शाहू महाराज ने किञ्चित तीव्र स्वर में कहा—"जिसे मेरे विचारों से विरोध हो, निस्सङ्कोच स्पष्ट करे!"

"नहीं-नहीं, महाराज!" श्रीपतराव ने अपने को प्रकृतिस्थ करते हुए कम्पित स्वर में कहा—"सभा का, आपके विचारों से पूर्णतया मतैक्य है...."

महाराज के अधरों पर मुस्कान तिर उठी। राज-पुरोहित ने मन्त्रोच्चार के बीच, बाजीराव को विधिवत् पेशवा-पद ग्रहण कराया। सभा कल तक के लिये स्थगित हुई।

दूसरे दिन, नये पेशवा को अपनी भावी-नीति प्रस्तुत करनी थी।

मित्रों और समर्थकों से घिरा बाजीराव सभा-भवन से बाहर आया तो सहस्रों की संख्या में सैनिकों और नागरिकों ने उन्मुक्तभाव से उसका अभिनन्दन किया।

शाहू महाराज और पेशवा बाजीराव की जय-जयकार से सतारा का चप्पा-चप्पा थिरक उठा।

ई० सन् १७२० का आरम्भ—महाराष्ट्र के भविष्य का स्वर्णिम-प्रभात बनकर आया था।

● ●

सम्पूर्ण महाराष्ट्र की दृष्टि पेशवा बाजीराव की ओर केन्द्रित हो रही थी। जन-जीवन में विचित्र-सी उत्तेजना व्याप्त थी। बाजीराव पूर्ण युवा था। युद्धक्षेत्रों में अपने अपूर्व शौर्य तथा दुस्साहसिक-प्रवृत्ति के कारण, जन्मजात सुभट मराठों के बीच, उसने लोकप्रियता भी प्राप्त

कर ली थी। अट्ठाईस वर्षीय पेशवा की भावीनीति की ओर महाराष्ट्र ही नहीं, भारत का सम्पूर्ण दक्षिणीप्रदेश शङ्कालु दृष्टि से निहार रहा था।

बाल-सूर्य की स्वर्णाभा से सतारा राजमहल का परकोटा मुस्करा रहा था। नीचे पथपर खड़े पेशवा बाजीराव ने अपने प्रिय घोड़े 'पवन' की सुपुष्ट रानों पर स्नेहपूर्वक थपकी दी और तब दृष्टि अनायास ही परकोटे की ओर उठ गयी। मुख से अस्फुट स्वर निकला—"जय दुर्गे!" और उछलकर घोड़े की पीठ पर बैठ गया—"पवन, चल अब...." घोड़े की नाक से गरगराहट निकली। झटके से अपने दोनों पिछले पैरों पर खड़ा होने का प्रयत्न किया उसने और तब राज-पथ पर उसकी सधी हुई टापों का सङ्गीत लहर उठा। पेशवा जैसे अपने-आप में खो गया था।

पथ जनाकीर्ण तो न था परन्तु पेशवा को मार्ग देने के निमित्त नागरिक सतर्क दीख पड़ते थे। नये पेशवा के प्रति श्रद्धा से भरे उनके हृदय से फिसलकर जब—"जय दुर्गे....जय दुर्गे...." स्वर फूटता तो पेशवा के अन्तस का कोना-कोना स्नेहिल हो जाता। रोमाञ्चित तन रक्ताभास्नात हो जाता।

"अप्पा!"

सामने से आ रहे अश्वारोही ने उतरकर पेशवा का अभिवादन किया—"मैं पूना से आ रहा हूँ राव! समुद्रतट के कुछ फिरङ्गी अफसर भी मेरे साथ आये हैं...."

"हूँ!" पेशवा ने जैसे सुना ही नहीं—"माता जी आदि...."

"सानन्द हैं!"

"अच्छा, तुम विश्राम करो...." और उन्होंने घोड़े को आगे बढ़ने का सङ्केत दिया—"अरे हाँ, तुम किसी फिरङ्गी की बात कह रहे थे न?" जैसे कुछ याद आ गया हो।

"हाँ, राव!" अप्पा ने कुछ और निकट आकर कहा—"वे मेरे

साथ ही आये हैं। आपके पेशवा बनने के उपलक्ष्य में वे अभिनन्दन करना चाहते हैं....”

“अभिनन्दन ?”

“हाँ !”

पेशवा क्षणभर मौन, विचारमग्न-से खड़े रहे फ़िर उन्मुक्तभाव से हँस पड़े—“अच्छा, तो उनके विश्राम का प्रबन्ध करो। मैं उनसे मिलकर प्रसन्न होऊँगा....” और स्नेहपूर्वक अप्पा के विशाल कन्धे पर हाथ रख वे आगे बढ़ गये। अप्पा खड़ा-खड़ा अपने शार्दूल-अग्रज की ओर विमुग्धभाव से निहारते रहे।

“अरे, अप्पा साहब, आप हैं !”

अप्पा ने चौंककर देखा और—“प्रणाम-प्रणाम....सकुशल तो हैं गोविन्द राव !”

“ईश्वर की कृपा है....” उल्लाहसना स्वर—“आपसे मिलने के लिये बहुत आतुर था। क्या अभी ही चले आ रहे हैं ?”

“हाँ !” अप्पा के मस्तक पर बल पड़ गये—“कोई विशेष कारण ?”

“आप पहले विश्राम कर लें....”

“नहीं, आप कहें !”

उसने आस-पास सतर्कभाव से निहारा और तब अप्पा की ओर झुककर धीमे स्वर में बोला—“सतारा में बाजीराव के पेशवापद प्राप्त करने से कुछ व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं....”

“हूँ !”

“अपनी कुचेष्टाओं में असफल होकर भी वे अपने मन की कुत्सा से विरत नहीं हो पाये हैं....” उसी समय दूर से एक अश्वारोही आता दीख पड़ा। उसके निकट आने के पूर्व ही गोविन्द राव झपटता हुआ एक ओर अदृश्य हो गया।

"जय दुर्गे, अप्पा साहब !"

"जय दुर्गे !" अप्पा अपने अश्व पर बैठ गये थे।

"अभी-अभी आप शायद गोविन्द से बातें कर रहे थे...." उसने अपने अश्व को आगे बढ़ाकर अप्पा की बगल में कर लिया—"पेशवा के अनुज को, इस प्रकार पथ पर अपने गुप्तचर से मन्त्रणा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं—क्यों ?"

"श्यामू जी !" अप्पा की भृकुटि बङ्क हो आयी। उन्होंने अपने अश्व की रास जोर से खींच ली—"व्यर्थ का व्यंग्य सुनने और सुनकर बर्दाश्त करने का आदी मैं नहीं !"

"जय दुर्गे !" और वह मुख पर विद्रूप का-सा भाव लिये आगे बढ़ गया।

अप्पा ने दाँतों से ओंठ काटे और अश्व बढ़ाते हुए। मुख से निकल गया—"जयदुर्गे, षड्यन्त्रों की नींव पर ईमारत खड़ी भले ही हो जाय परन्तु वह एक हलके से झोंके में ही धराशायी हो जायगी श्यामू जी !" और उनका अश्व, पवन में घुला-सा राज-महल की ओर बढ़ गया।

पेशवा के लिये निश्चित राजमहल के आवास में, चिमणा जी अप्पा ने आकर जल्दी-जल्दी नित्य-कर्मों से निवृत्ति पायी। जलपान के पश्चात्, आवास के बाहरी कक्ष में आये तो गोविन्दराव प्रतीक्षा में बैठा मिला। गोविन्दराव स्वर्गीय पेशवा बालाजी विश्वनाथ के अन्तरङ्गों में-से था और उनके कूटनीतिक-सलाहकारों में प्रमुख भी। वीर होते हुए भी वह विलक्षण विद्वान था, अनेक देशी-विदेशी भाषाओं का पारङ्गत। बाजीराव का सारा परिवार उसे आदर की दृष्टि से देखता था। स्व० पेशवा बालाजी विश्वनाथ, जब मराठाराज्य और मुग़ल-सत्ता के आपसी सम्बन्धों की सन्धि-योजना के साथ, दिल्ली गये थे तो गोविन्द भी उनके साथ ही था। और उस

ऐतिहासिक सन्धि की अपूर्व सफलता की प्राप्ति में उसकी विचक्षण-प्रतिभा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था—इस तथ्य से शाहू महाराज भी अनभिज्ञ नहीं थे।

"आपको अधिक प्रतीक्षा तो नहीं करनी पड़ी गोविन्द राव!" चिमणा जी ने सादर पूछा।

"नहीं तो, आप निश्चिन्त हो चुके?"

"हाँ!"

दोनों आमने-सामने आ बैठे। गोविन्दराव ने एक बार सतर्क-भाव से कक्ष में दृष्टि फिराई।

मतलब समझ चिमणा जी ने कहा—"आप चिन्ता न करें। हमारी बातें दूसरे कानों में न पड़ें, इसकी व्यवस्था मैं कर चुका हूँ...." वे खिसककर और पास आ रहे—"श्यामू ने आपको देख लिया है और मेरा खयाल है, उन सब को आपकी हर गति-विधि का...."

"नहीं, सो बात नहीं है!" गोविन्दराव ने बीच ही में टोकते हुए कहा—"उन्हें उतना ही मालूम है, जितना मैंने चाहा है। बाजीराव के पेशवा हो जाने से राज्य-प्रतिनिधि की आँखों की नींद उड़ गयी है। मैं स्वयं कल दरबार में उपस्थित था। शाहू महाराज के द्वारा हो रही अपनी उपेक्षा से उनके तेवरों में बल पड़ गये और उस बल को मैं भूलूँगा नहीं; भूलना भी नहीं चाहिये...."

"हूँ!"

"आपका यहाँ आ जाना बहुत आवश्यक था...."

"हूँ!" चिमणा जी की मुद्रा अत्यन्त गम्भीर हो आयी थी—"भाई साहब से आप मिले थे?"

"हाँ!"

"वे सतर्क तो हैं?"

"पर्याप्त!" गोविन्द राव ने एक लम्बी साँस ली—"आज उनको

पेशवापद से, राज्य की भावी नीति स्पष्ट करनी है। राज्य प्रतिनिधि रोड़ा अटकायेगा परन्तु...."

"परन्तु पेशवा उन रोड़ों को ढहाकर अपना मार्ग प्रशस्त कर लेगा गोविन्द राव!" पीछे से बाजीराव की आवाज़ आयी। दोनों ने चौंककर देखा—द्वार पर बाजीराव खड़े थे, ओंठों पर मुस्कान और शरीर पर ताज़गी की दमक लिये। वे धीरे-से आकर तख्त पर बैठ गये। चिमणा जी और गोविन्द बाजीराव की स्फूर्ति से निश्चिन्तता की साँस ले, उनकी ओर निहारने लगे।

• •

सभा-भवन मराठा-सरदारों तथा प्रतिष्ठित नागरिकों से खचाखच भरा था। वातावरण में प्रशान्ति थी, वैसी ही जैसी तूफान आने के पूर्व हवा। चारणों ने आकर शाहू महाराज का प्रशस्ति-गान किया तो क्षणभर के लिये वह प्रशान्ति भंग-सी हुई परन्तु पुनः पूर्ववत्। शाहू महाराज ने, पेशवा की ओर दृष्टिपात किया। पास ही बैठे राज्यप्रतिनिधि की आँखों में घृणा नाच उठी।

"पेशवा बाजीराव!"

बाजीराव ने उठकर महाराज का अभिवादन किया।

"महाराष्ट्र का भावी नीति-निर्धारण तुम्हें करना है। तुम एक वीर और सुयोग्य पिता के पुत्र हो। महाराष्ट्र को आशा ही नहीं, विश्वास है, तुम्हारे निर्देशन में वह सफलता का एक नवीन प्रतिमान स्थापित करेगा...." महाराज का स्वर आवेग से काँप रहा था।

"महाराज!" बाजीराव ने गम्भीर स्वर में कहा—"आज से कुछ वर्षों पूर्व, जब प्रातस्मरणीय छत्रपति शिवाजी ने महाराष्ट्र का बीजारोपण किया था तो उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण भारतवर्ष था, मात्र दक्षिण

के ये पठारी हिस्से नहीं। उनके इस महान् स्वप्न को हमने अपने वीरत्व-तेज से सदैव जाज्वल्यमान रखा....'' उन्होंने रुककर एकबार राज्यप्रतिनिधि और उसके समर्थकों की ओर निहारा।

"कहते चलो पेशवा बाजीराव, कहते चलो...."

"महाराष्ट्र का वह किसलय आज पुष्पित होकर अपनी स्वतन्त्र-सत्ता का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत कर रहा है। सदैव हमको लुटेरों की संज्ञा से विभूषित करने वाले, उस ज्वलन्तता का ओर आतङ्क से देख रहे हैं। मगर श्रद्धेय छत्रपति शिवाजी का वह स्वप्न, अभी अपनी पूर्ण साकारता से दूर है, बहुत दूर...."

"पेशवा-पद से बोलते हुए भावुकता को अपने से अलग कर लेना चाहिये बाजीराव!" सहसा राज्यप्रतिनिधि ने अपने स्थान से उठकर तीव्र स्वर में कहा—"महाराष्ट्र की स्वतन्त्र-सत्ता की ओर इस प्रकार शङ्कालु होने का कोई कारण मुझे नहीं दीख पड़ता।"

"आप भ्रम में हैं राजप्रतिनिधि—" बाजीराव ने शान्त स्वर में उत्तर देते हुए कहा—"शान्तिपूर्वक विचार करें, मुझे विश्वास है, आपका भ्रम दूर हो जायगा। मेरे कहने का तात्पर्य मात्र यही है कि अब महाराष्ट्र की सत्ता दक्षिण के सीमित दायरे में अपने को आबद्ध नहीं रख सकेगी—छत्रपति शिवाजी का वह महान् स्वप्न अब साकार होकर रहेगा। संसार की कोई भी शक्ति, महाराष्ट्र के बच्चे-बच्चे की बलि-दानी आत्मा, उनके लहू में छिटकती शौर्य और देशाभिमान की चिनगारी के समक्ष आने का साहस नहीं कर सकेगी। सारा भारत-वर्ष, भगवाध्वज की छत्रच्छाया में पावन हो उठेगा...."

"कैसे?"

"तलवारों से!"

"तो क्या आप महाराष्ट्र को, युद्ध की विनाशकारी झंझा में अपना अस्तित्व गवाँ देने की सलाह दे रहे हैं?" राज्यप्रतिनिधि का स्वर

तीव्रातितीव्र होता जा रहा था। शाहू महाराज को राज्यप्रतिनिधि की यह अड़ङ्गेबाजी भी नहीं रही थी; फिर भी वे कुछ बोले नहीं। बाजीराव की तेजस्विता, कसौटी पर कसी जा रही थी। सभासद औत्सुक्यावेग में डूबे थे।

"नहीं!"

"फिर?"

"उसे अपने कर्त्तव्य का बोध कराना चाहता हूँ, अपने संस्थापक के चरण-चिह्नों पर चलने की प्रेरणा देना चाहता हूँ। मुगल-सत्ता को परिस्थितियों से विवश होकर, हीन-सन्धि के लिये बाध्य भले ही होना पड़ा हो परन्तु इससे कोई अपरिचित नहीं कि मुसलमान आज भी हम मराठों को, हमारे महाराष्ट्र को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। हमारी नसों में हिन्दुत्व का लहू उबल रहा है, अगर उस उबाल को निरन्तर बल और गति न प्राप्त होगी तो एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब वह कायरता के शैथिल्य से कलङ्कित हो जाय। बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं, अपने पड़ोसी गुजरात प्रान्त को ही ले लीजिये। निज़ाम और मुगल शक्तियों से महाराष्ट्र की प्रभुसत्ता सदैव आतङ्कपूर्ण रहा करती है...."

"यह तो बचपने की-सी बातें हैं। महाराष्ट्र के पेशवा के मुख से ऐसे शब्दों की आशा न थी।" राज्यप्रतिनिधि हठपूर्वक मुस्कराया—"महाराष्ट्र का खजाना खाली होता जा रहा है, सेना में तनख्वाह न मिलने के कारण असन्तोष व्याप्त है और ऐसी स्थिति में मुगल-सत्ता से युद्ध...."

"खजाना खाली है!" बाजीराव, राज्यप्रतिनिधि के व्यंग्य से तिलमिला-से उठे—"ऐसा क्यों?"

"मुझसे यह पूछने का अधिकार आपको नहीं, बाजीराव!" कहकर उसने महाराज की ओर देखा—"महाराज, मैंने पहले ही आपसे निवेदन

किया था कि पेशवा-पद के लिये, मात्र तरुणोचित उद्धता ही आवश्यक नहीं, अनुभव और गाम्भीर्य भी अपेक्षित है...."

"फिर भी राज्यप्रतिनिधि, हमें पेशवा की नीति को गम्भीरता और शान्तिपूर्वक सुनना चाहिये। आवेश में आकर किसी बात का निर्णय कर लेना सङ्गत नहीं ...."

यद्यपि शाहू जी के स्वर में सरलता और समझाने का-सा भाव था तथापि राज्यप्रतिनिधि को अनुभव हुआ, उसमें भर्त्सना की ही मात्रा अधिक है। अपने आप पर ही खीझता हुआ बैठ गया वह। शाहू महाराज ने, आँखों में उत्साह की चमक लेकर पेशवा के दीप्त मुखमण्डल की ओर निहारा। बाजीराव ने अपना मस्तक नत कर लिया।

"अपनी बात जारी रखो, पेशवा बाजीराव !"

बाजीराव ने अपना मस्तक उठाया तो लगा जैसे सोया हुआ सिंह उठ पड़ा हो। मुद्रा स्वाभाविक रूप में प्रशान्त थी उनकी। क्षणभर पूर्व आ गयी उत्तेजना का लेश भी नहीं था। उनका गम्भीर स्वर पुनः सभा-भवन में गूँजने लगा—"महाराज, आदरणीय राज्यप्रतिनिधि का कहना है, महाराष्ट्र का राज्य-कोष रिक्त है परन्तु उन्होंने सम्भवतः इस रिक्तता के कारण की ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी। पिछले कुछ दिनों से, राज्य की शक्ति पूर्णरूपेण राजनीतिक-उलझनों में व्यस्त रही। ईश्वर की कृपा और हमारे प्रयत्नों से अब सभी उलझनें सुलझ प्राय गयी हैं। मुगल सल्तनत पर हमारी राजनीतिक-धाक जम ही चुकी है परन्तु इससे हमारी मूल शक्ति का ह्रास भी कम नहीं हुआ है। महाराष्ट्र के सम्मुख जब कभी ऐसी समस्या आयी, उसने पड़ोसियों और मुगलों से जबरन उसका समाधान भी प्राप्त कर लिया—यह महाराष्ट्र के पूज्य संस्थापक का ही निर्देश है। हमारा खजाना खाली है, उसे भरने के लिये, दक्षिण की ओर दृष्टि डालना मूर्खता है। श्रद्धेय महाराज और आदरणीय राज्य-प्रतिनिधि

को मैं बता देना चाहता हूँ, आज मुगल-सत्ता झंझावातों के बीच पड़ी निरन्तर पतन की ओर बढ़ती जा रही है। ऐसे सुअवसर से लाभ उठाना हमारा कर्तव्य होना चाहिये....''

पेशवा की ओजस्वनी वाणी से सभा-भवन का कोना-कोना गूँज रहा था। शाहू महाराज की नसों में प्रवाहित लहू उत्तप्त हो उठा और क्षण भर के लिये जैसे उनके मुख-मण्डल पर वह उत्ताप छा गया हो—राज्य-प्रतिनिधि ने देखा और समझा।

"बाजीराव !"

"आज्ञा, महाराज !"

"कहते चलो मेरे वीर, कहते चलो !"

"महाराज" बाजीराव का दृढ़ स्वर पुनः सभा-भवन में गूँजा—"इस समय महाराष्ट्र को अपने आन्तरिक-विग्रहों से पूर्णतया विरक्त होकर, मुगल-सत्ता पर सीधा आक्रमण करने के निमित्त अपने को....''

"सीधा आक्रमण !" राज्यप्रतिनिधि गरज-सा उठा—"क्या पेशवा का तात्पर्य यह है कि मुगल-सल्तनत से टकराकर महाराष्ट्र अपना अस्तित्व गँवा दे ?"

"नहीं !" बाजीराव के अधरों पर व्यङ्गमयी मुस्कान थिरक रही थी—"खेद है कि राज्य-प्रतिनिधि को बार-बार मेरे मन्तव्य के प्रति भ्रम हो रहा है। महाराष्ट्र के शक्ति-केन्द्र, उसके देशाभिमानी और वीर सैनिक हैं और इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं कि उस केन्द्र की प्रखरता आज निष्क्रियता की छाया से धूमिल हो उठी है। यह धूमिलता दिनानुदिन हमारे शत्रुओं को बल प्रदान करती जा रही है और इसका प्रतिकार सक्रियता से ही हो सकता है....''

"सक्रियता के परिणाम पर सम्भवतः पेशवा की दृष्टि नहीं जा पायी है...." राज्य-प्रतिनिधि ने तमककर कहा—"महाराज, महाराष्ट्र को

एकबारगी ही युद्ध की ज्वाला में झोंक देने वाली पेशवा-नीति का विरोध करना मेरा कर्तव्य है !" कहकर उसने बाजीराव की ओर आग्नेय-नेत्रों से देखा।

राज्य-प्रतिनिधि के रोषपूर्ण-विरोध से सभा-भवन में काना-फूसी होने लगी।

शाहू महाराज ने बिना कुछ कहे प्रश्नात्मक दृष्टि से बाजीराव की ओर निहारा।

बाजीराव क्षण भर के लिये मौन रहे, विचारमग्न-से; पुनः—"राज्य-प्रतिनिधि से मेरा निवेदन है कि वे अपनी योजनायें प्रस्तुत करें। महाराष्ट्र के भविष्यत् उत्कर्ष का उसमें रञ्चमात्र भी सङ्केत मिलेगा तो पेशवा प्रसन्नतापूर्वक उसका समर्थन करेगा...." उनका स्वर अत्यन्त गम्भीर था, अत्यन्त तीव्र था।

राज्य-प्रतिनिधि का मुख विजय की चमक से दिप उठा—"महाराष्ट्र की शासन-व्यवस्था इस समय विशृङ्खल हो रही है, इसके लिये हमें कुछ दिनों तक अपने को किसी बड़े युद्ध से विरत रखना होगा। साम्राज्य का विकास और विस्तार सुदृढ़ शासन-व्यवस्था से ही होता है। राज्य-कोष में धन का नितान्त अभाव है, उसकी पूर्ति के लिए हमें शान्ति और मैत्री का अवलम्ब ग्रहण करके...."

"कैसे ?" बाजीराव कुछ कहने ही जा रहा था कि शाहू महाराज पूछ उठे।

"राज्य के नागरिकों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाकर...."

सारे सभा-भवन में दबी हुई-सी हँसी की ध्वनि लहरा गयी। स्पष्ट था, आवेश और विरोध के जोम में, राज्य-प्रतिनिधि की विचार-शक्ति शून्य हो गयी थी। उसके तर्क अपने आप में ही उपहासास्पद थे। महाराष्ट्र की बंजर-पहाड़ियों पर, राज्य-कोष भरने के लिये, नागरिकों के जीवन-क्रम में परिवर्तन करके, उन्हें औद्योगिकता की ओर

उन्मुख करने का विचार प्रस्तुत करते समय, राज्यप्रतिनिधि की मनः-स्थिति स्थिर नहीं थी। वह स्वयं हतप्रभ रह गया।

बाजीराव ने राज्य-प्रतिनिधि की ओर बिहँसती हुई-सी दृष्टि डाली और—"मराठे जन्मजात पराक्रमी रहे हैं। प्रकृति ने उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तलवारों की धार पर चलने का आदी बना दिया। महाराष्ट्र-सूर्य का जब उदय हुआ तो उसके निर्माता ने सर्वप्रथम उसकी इसी प्राकृतिक अवस्था का अध्ययन किया था और तभी से मराठों ने अपना एक निश्चित पथ अपनाया—तलवार की धार से खेलता हुआ-सा पथ! महाराष्ट्र, खेती और उद्योगों के द्वारा किसान रह सकता है, शोषित रह सकता है परन्तु अखण्ड-साम्राज्य नहीं बन सकता...."

"अवश्य...." शाहू महराज के मुख से निकल गया।

राज्य-प्रतिनिधि के मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं; परन्तु उसने अपने को शीघ्र ही प्रकृतिस्थ कर लिया और—"बाजीराव को सम्भवतः यह नहीं मालूम है कि उनके पिता, स्वर्गीय पेशवा की क्या नीति थी...."

"मालूम है और सम्भवतः राज्य-प्रतिनिधि से कुछ अधिक ही। उनकी सन्धि-योजनायें शौर्य से ज्वाज्वल्यमान् रहा करती थीं और वे उसी लीक पर गतिशील होती थीं, जिसका सङ्केत प्रातः-स्मरणीय छत्रपति शिवाजी ने कर दिया था। परिणाम से महाराष्ट्र ही नहीं, सम्पूर्ण भारत परिचित है...." उसने घूमकर शाहू महाराज की ओर देखा—"महाराज, मेरा विचार है विवाद के लिये आज हम-सब यहाँ उपस्थित नहीं हुए हैं। विवाद में विचारों का महत्व नगण्य हो जाता है!"

"अवश्य!" शाहू महाराज राज्य-प्रतिनिधि की ओर उन्मुख हुए और स्वर में पुनः समझाने का-सा भाव लाकर बोले—"आप बाजीराव

को कहने दें। विवाद के लिये बाद में भी समय मिल जायगा....” और उन्होंने निश्चयात्मक कठोरता के साथ एकबार सभा-भवन में उपस्थित व्यक्तियों की ओर देखा। चारों ओर से पेशवा के समर्थन में आवाजें आने लगीं। शाहू महाराज ने प्रश्नात्मकभाव से राज्य-प्रतिनिधि की ओर देखा—उनकी उस दृष्टि में उपेक्षा की लपटें निकल रही हैं, राज्य-प्रतिनिधि ने अनुभव किया और तब जैसे सहम उठा वह।

“मुझे मान्य है, महाराज!”

“ठीक है, पेशवा को अपनी योजना प्रस्तुत करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये!” शाहू महाराज निश्चिन्त-से होते हुए, बाजीराव की ओर उन्मुख हुए।

बाजीराव ने अत्यन्त गम्भीर स्वर में महाराष्ट्र की भावी-नीति सम्बन्धी अपनी योजनायें, विशद रूप में समझाते हुए प्रस्तुत कीं। मराठा-राज्य के रिक्त कोष को भरने के लिये, मुगल-सल्तनत के सीमा-वर्त्ती प्रान्तों की ओर, घुड़सवारों की बाग मोड़ने के सुझाव पर, सभा-भवन उत्साह से भर गया। शाहू महाराज भी अपने को सम्हाल नहीं पाये। उनके मुख से फूट पड़ा—“तुम्हें मैं आज्ञा देता हूँ, बाजी-राव! महाराष्ट्र की विजय-पताका के तुम्हीं आधार-स्तम्भ हो!”

महाराष्ट्र के वीर सरदारों की तलवारें झनझना उठीं। अपमान और पराजय से हतप्रभ राज्यप्रतिनिधि श्रीपतराव का, महाराज शाहू पर सर्वोपरि प्रभाव था। आज युवा बाजीराव ने उसके उस प्रभाव को ठोकर मारी थी। राज्यप्रतिनिधि के आन्तरिक-द्वन्द्व से शाहू महा-राज अपरिचित नहीं थे। उनके चरित्र की विशेषता थी कि आदमियों की पहचान में धोखा नहीं खाते थे। सात वर्ष पूर्व जब उन्होंने बाजी-राव पिंगले को प्रधान-सचिव के पद से हटाकर, बालाजी विश्वनाथ को नियुक्त किया था, तब भी उनका कम विरोध नहीं हुआ था। परन्तु वे अपने निश्चय पर अटल रहे और जब अपनी सात वर्ष की पेशवाई

में, बालाजी विश्वनाथ ने न केवल आन्तरिक-विग्रहों को नष्ट किया अपितु महाराष्ट्र के चिरशत्रु, मुगलों को हीनतम संधि करने को बाध्य कर दिया तो विरोधियों के मुख स्वयं बन्द हो गये। पिता के समान बाजीराव ने कूटनीतिक-दक्षता तो नहीं पायी थी परन्तु वह विलक्षण वीर था, अप्रतिम दुस्साहसी था। उनके आत्मविश्वास ने ही, राज्य-प्रतिनिधि के विरोध को ठुकरा दिया, न चाहते हुए भी। महाराष्ट्र की बागडोर, तरुण और दुस्साहसी वीर बाजीराव के हाथों में सौंपते हुए उनको तनिक भी हिचक नहीं हो पायी। राज्यप्रतिनिधि अपने आप में ही फुँका जा रहा था।

इस महत्वपूर्ण विशेषता के होते हुए भी शाहू महाराज के व्यक्तित्व में वे त्रुटियाँ विद्यमान थीं, जिनका लेश भी उनके पूर्वजों में नहीं था। छत्रपति शिवाजी से लेकर ताराबाई तक की श्रृंखला में, वीरत्व और दुस्साहस कूट-कूटकर भरा था—प्रकृति प्रदत्त। परन्तु अपने जीवन का बहुत-सा महत्वपूर्ण-काल—महाराष्ट्र की वीरप्रसूता भूमि से बिलग, मुगलों के जनानखाने में व्यतीत करने के कारण वे इस गौरवमयी, परम्परागत विरासत से पूर्णतया च्युत हो चुके थे। यही कारण था कि अपने अदने-से-अदने विरोधी से संत्रस्त रहा करते थे।

सभा का कार्य-क्रम समाप्त हुआ। विजयोन्माद में, बाजीराव का युवा-हृदय तीव्रगति से स्पन्दित हो रहा था। अपने सहयोगियों और समर्थकों की भीड़ से घिरे जब वह सभा-भवन के बाहर आये तो लगा जैसे सम्पूर्ण सतारा ही नहीं, सम्पूर्ण महाराष्ट्र नव-जीवन के उन्माद में झूम उठा हो।

बाजीराव के जाने के उपरान्त, शाहू महाराज ने राज्य-प्रतिनिधि के विषण्ण मुख की ओर देखा और—"आप अशान्त दीख रहे हैं राज्य-प्रतिनिधि!"

सुनकर वह चौंका—"नहीं, नहीं, महाराज !"

"मेरे निर्णय पर आपको असंतोष है ?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। मौन रहा। सभा-भवन में शाहू महाराज के अंगरक्षकों, व्यक्तिगत सेवकों तथा राज्य-प्रतिनिधि के अतिरिक्त और कोई नहीं था।

"मुझे अपने चुनाव पर विश्वास है राज्य-प्रतिनिधि !"

"होना ही चाहिये महाराज !"

"क्यों, आपको कोई शंका है ?"

"नहीं तो, महाराज !"

शाहू महाराज संतुष्ट-से हो गये। आज बाजीराव की तेजस्वी वाक्-धारा ने उनके व्यक्तित्व पर छायी विलासिता और निष्क्रियता को विचित्र, स्फुरणकारी वीरत्व-तेज से ओत-प्रोत कर दिया था। शिराओं में लहू का वेग रह-रहकर तीव्र हो उठता। मानसिक-उत्तेजन ने उन्हें विह्वल बना दिया। वे उठकर महल की ओर जाने लगे तो राज्य-प्रतिनिधि उनके साथ था।

"महाराज, मुझे एक ही शंका अस्थिर कर रही है। अधिकार के मद में बाजीराव की वीरता, अराजक न सिद्ध हो !" चलते-चलते उसने धीरे से कहा। शाहू महाराज की आन्तरिक-दुर्बलता को वह खूब जानता था सो परिणाम के लिये उसकी आतुर-दृष्टि, शाहू महाराज की ओर केन्द्रित हो गयी। चोट कारी तो थी परन्तु शाहू महाराज विचलित नहीं हुए।

"नहीं !" उनका अत्यन्त गम्भीर स्वर था—"बालाजी विश्वनाथ के पुत्र के प्रति ऐसे विचार अशोभन हैं राज्य-प्रतिनिधि !"

"हो सकता है !"

"और...." कुछ कहते-कहते वे रुक गये।

"महाराज !"

"ओह, कुछ नहीं, कुछ नहीं...."

बाहर से सहस्रों कंठों का समवेत जयनाद आ रहा था—

'पेशवा बाजीराव की जय !'

'शाहू महाराज की जय !'

'हिन्दू पद-पादशाही की जय....'

वीर-प्रसूता महाराष्ट्र की मिट्टी उमग उठी थी, उसका कण-कण अँगड़ाई ले उठा था....

● ●

महाराष्ट्र का शासन-यन्त्र, राजा के हाथों से निकल कर सरदार-मण्डली के अधिकार में आ गया था।

शिवाजी महाराज के समय की मन्त्रि-परिषद्, प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ के काल में ही समाप्त हो चुकी थी। मण्डली-प्रथा का जन्मदाता बालाजी विश्वनाथ था; परन्तु उसका विकास बाजीराव के द्वारा हुआ। सरदारों को राज्य की ओर से जागीरें प्रदत्त थीं; जिस पर उनका अपना अधिकार होता था। हर सरदार को जागीर की आय से एक निश्चित राशि, राज्य-कोष में जमा करनी होती थी। युद्ध के समय उनका सक्रिय-सहयोग अनिवार्य होता था। इन सबके अतिरिक्त, सरदार-मण्डली अपने राजा के प्रति, भक्ति-भाव से अनुप्राणित रहती थी। महाराष्ट्र की शासन-व्यवस्था छिन्न होते हुए भी एकत्व-भावना से ओत-प्रोत थी।

महाराज शिवाजी ने महाराष्ट्र का जो स्वप्न देखा था और अपने उस स्वप्न की नींव को इतनी दृढ़ता से स्थापित किया था कि मुगल-सत्ता की हर चोट व्यर्थ सिद्ध होती और स्वप्न, साकारता के ओज से दीप्त होता रहा। वीरता और कर्मठता में, अपने पूर्वज

मुगल-बादशाहों से अप्रतिम, महान् आलमगीर ने, महाराष्ट्र से टकराने में अपने जीवन का ही होम नहीं किया, अपितु मुगल-सल्तन की कमर ही तोड़कर रख दी। महाराष्ट्र का उदय, मात्र एक जाति के उत्थान का प्रतिबिम्ब नहीं था—उसके मूल में एक महान् साम्राज्य का अस्तित्व भी हुंकार रहा था।

आलमगीर के अवसान से मुगल-सल्तनत की नींव हिली, हिलती ही गयी और एक दिन धराशायी होकर रही मुगलिया-इमारत। शिवा जी का अवसान, महाराष्ट्र के बिरवे के लिये धक्का था और उस धक्के में इतनी शक्ति थी कि मराठा-घुड़सवारों की टाप—जिन्हें आलमगीर आजीवन 'पहाड़ी-चूहा' कहता रहा, मुगल-राजधानी दिल्ली में अड़ गयी। आलमगीर के उत्तराधिकारी नपुंसक सिद्ध हुए और महाराज शिवाजी के भी; परन्तु मराठों और मुसलमानों में बहुत अन्तर था। महाराष्ट्र का बिरवा पल्लवित होता रहा, पुष्पित होता रहा और मुगल-वृक्ष की शाखायें टूटने लगीं, पतित होने लगीं।

● ●

बाजीराव ने दृष्टि उठाई—"और?" स्वर अत्यन्त गम्भीर था। आस-पास मराठा-सेना के कई उच्चाधिकारी बैठे थे। एक दीर्घ-उच्छ्वास का झोंका और—"चिमणाजी, और क्या कहा है उस म्लेच्छ ने?" वे उठकर खड़े हो गये। चिमणाजी अप्पा उनके पास आ गये।

"भाई साहब, राज्य-प्रतिनिधि से हमें विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है। आपके विरोध में मुँह की खाकर वह अपने आपको, महाराष्ट्र के प्रति अपनी आस्था को पूर्णतया भूल चुका है। शाहू महाराज पर अब भी उसका प्रभाव कम नहीं। निजाम के दरबार

में रहने वाले हमारे गुप्तचर ने स्पष्ट लिखा है कि निज़ाम महाराष्ट्र के लिये एक न एक दिन घातक सिद्ध होगा। निजाम ने यह दर्पोक्ति की है—शाहू महाराज को महाराष्ट्र का सिंहासन त्यागना होगा, उनके लिये मुसलमानों का हरम ही उपयुक्त है—"

"हूँ!"

"राज्य-प्रतिनिधि के दूत बराबर उससे सम्बन्ध बनाये हुए हैं। मेरा तो अनुमान है, वह स्वयं, निजाम के पास हो आया है। हमने गुप्तचरों के जाल बिछा दिये हैं, फिर भी...."

चिमणाजी की बातों ने वहाँ उपस्थित मराठा-सरदारों में गहरी उत्तेजना भर दी; परन्तु बाजीराव पूर्ववत् शान्त थे। उनके प्रशस्त ललाट पर उगती-मिटती रेखायें, आन्तरिक-उद्वेग का परिचय अवश्य करा रही थीं। पर्वत-मालाओं की गोद में मुस्करा रही, छोटी-सी घाटी पर दोपहर का सूरज तप रहा था। सामने की चोटी ने झुककर जैसे उस थोड़े-से स्थान को सूरज की तपन से मुक्ति दिला दी थी, जहाँ वे लोग विश्राम करने के लिये बैठ गये थे।

"पेशवा!"

बाजीराव ने घूमकर देखा, वृद्ध जीवाजी कदम ने उठकर उनके कन्धे पर अपना बलिष्ट पर कम्पित हाथ रख दिया था।

"दादा!"

"क्या सोचते हो?"

"सोचता हूँ, सोच रहा हूँ दादा कि हमें अपनी शक्ति बढ़ाने के पूर्व...."

"नहीं!" कदम का स्थिर स्वर था—"अपने पेशवा को विह्वल देखना हमें सह्य नहीं। कठिनाइयाँ बड़ी हैं, हम इससे अनभिज्ञ नहीं; परन्तु इसे भी खूब जानते हैं कि हमारा पेशवा, उनसे भी बड़ा है...."

"दादा !"

"तुमको मैंने अपनी गोद में खिलाया है बाजी !" आवेग ने स्वर की स्थिरता को कँपाकर रख दिया—"स्वर्गीय भाई साहब ने तुम्हें माँ की गोद में नहीं रण-क्षेत्र के कण्टक में, कठिनाइयों से संघर्ष-रत रहने की शिक्षा दी है...." उनकी आँखों में एक विचित्र-सी ज्योति कौंध गयी। हाथ ने पेशवा के कन्धे को थपका, जैसे सुप्त ज्वालामुखी को कोई भड़क उठने का आह्वान कर रहा हो।

"हाँ, दादा !"

"तो आओ, अब भोजन कर लिया जाय। आज के आखेट ने सचमुच हमें थकाकर रख दिया है। चिमणा जी, लगता है तुमने भी अभी भोजन नहीं किया ?"

"नहीं दादा !"

"तो आओ...."

और तब सब एक पंक्ति में बैठ गये। सेवकों ने, साथ में लाया गया भोजन परसना शुरू कर दिया। मराठा-सरदार शान्त-चित्त हो, भोजन की शाकाहारी सामग्री का अवलोकन करने लगे।

"पेशवा !"

"दादा !" बाजीराव ने हाथ का ग्रास मुँह में रखते हुए कदम की ओर देखा।

"मेरा ख़याल है, दिल्ली की झंझटों से घबराकर निजाम अब दक्षिण ही को अपना क्षेत्र बनाने का निश्चय कर चुका है। दिल्ली की अपेक्षा उसके पैर दक्षिण में अधिक मजबूती से पड़ेंगे, यह भी स्पष्ट है—क्यों ?"

"दादा !" चिमणा जी ने पेशवा को मौन देख कर कहा—"यह आज की बात थोड़े ही है। दिल्ली में उसका शरीर रहता था परन्तु आत्मा तो दक्षिण ही में डँटी रहती थी। समय ने उसका साथ दिया

और अब वह धीरे-धीरे अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को मार्ग से हटा चुका है। दक्षिण में, मुगल-सल्तनत को अगर कोई हड़प करना चाहे तो निजाम उसे अपना दुश्मन समझेगा !" चिमणा जी ने आखिरी वाक्य को, व्यंग्य की ऐसी चाशनी में पगा दिया था कि वातावरण हास्यमय हो उठा।

"दादा !" बाजीराव का स्वर गम्भीर हो आया। सब उनकी ओर देखने लगे—"निजाम को मैं खूब जानता हूँ। वह अपने समय का सबसे बड़ा मुसलमान सेनापति है और ऐसा धूर्त भी, जिससे पार पाना असम्भव न सही, कठिन तो है ही। वह हमारे मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा बन रहा है, यह गम्भीर चिन्ता का विषय है...." कहकर वे अपने आप में खो गये। क्षणभर पूर्व चिमणा जी ने अपनी व्यंग्यपूर्ण उक्ति से वातावरण में जिस हास्य की सृष्टि की थी, वह अनायास ही गाम्भीर्य के अतलतल में समा गया। चिमणाजी ने सङ्कोच से मस्तक झुका लिया। लग रहा था, पेशवा के समक्ष वे अपराधी प्रमाणित हो गये हों।

"आप...."

"मैं अतिवादी नहीं पेशवा !" कदम ने बाजीराव को बीच ही में रोकते हुए कहा—"सब कुछ होते हुए भी दिल्ली के महाप्रभुओं को, निजाम से तीव्र असन्तोष है, इसे हमें कभी नहीं भूलना है !" कदम क्षण भर के लिए रुके; फिर उन्होंने जैसे विषयान्तर करते हुए सहज स्वर में कहा—"स्व० बालाजी विश्वनाथ ने महाराष्ट्र के शासन में जिस सरदार-मण्डली का सङ्गठन किया था, उसे वे अवसर और समय न पाने के कारण सन्तोषजनक रूप में कस नहीं पाये। आज वह एकदम विच्छिन्न होकर, महाराष्ट्र को आन्तरिक-विग्रह की ज्वाला में भस्मसात करने को तत्पर हो रहा है।"

"हूँ !"

"पेशवा को, सबसे पहले, स्व० बालाजी विश्वनाथ का अधूरा कार्य पूर्ण करने की ओर ध्यान देना चाहिये...." और वे आसन से उठ पड़े। भोजन समाप्त हो चुका था। सब ने एक साथ ही आसन छोड़ा। मराठा-सरदारों के अश्व, पास ही में खड़े थे। बाजीराव के मानस में द्वन्द्व घुमड़ रहा था। मानसिक उथल-पुथल की छाया, मुद्रा पर स्पष्ट हो आयी थी। कदम ने देखा और तब उनके मुख से सन्तोष का एक दीर्घ निश्वास निकल गया।

दोपहरी झुकते-झुकते सरपट हो गयी थी। पहाड़ियों से आँख-मिचौनी-सा खेलता चारों ओर का सघन जङ्गल, सरपट पड़ी दोपहरी की सिन्दूरी-सुषमा में बहुत सुन्दर लग रहा था।

"भाई साहब!"

"हूँ!"

"क्या अभी आखेट के लिए जङ्गल में पैठना है?"

"हाँ-हाँ!" पेशवा के मुख से अनायास ही निकल गया, जैसे उन्होंने चिमणा जी की बात सुनी ही न हो—"चलो!" और वे अपने अश्व की ओर बढ़ गये, जो अलमस्ती में, टापों से पथरीली भूमि में छेदकर देने का प्रयत्न कर रहा था। सब घबराकर एक दूसरे की ओर देखने लगे। आज के आखेट में सब बुरी तरह श्लथ हो गये थे। एक पागल शेर को केवल तलवार से दो टूक करने में स्वयं पेशवा को कई घाव हो गये थे। फिर भी जङ्गल में आख़ेट के लिये घुसना—पेशवा की ओर देखकर, कदम के प्रभावशाली मुख पर मुस्कान की पालिश हो गयी। बाजीराव खोये-से अपने अश्व की गर्दन पर हाथ रखे, सामने जङ्गल की ओर देख रहे थे। मरते हुए शेर के बहके पञ्जे ने उनकी दायीं भुजा का माँस नोंच लिया था। यद्यपि जख़्म पर मरहम-पट्टी कर दी गई थी तथापि जोर पड़ने पर जब-तब पट्टी ख़ून से गीली हो जाती

थी। इतना सब होते हुए भी पीड़ा की रञ्चमात्र अनुभूति उनकी मुद्रा से प्रकट नहीं हो रही थी।

"पेशवा!"

"हूँ!" वे चौंके—"दादा, मैं तैयार हूँ...." और उन्होंने अपने को प्रकृतिस्थ-सा करने का उपक्रम करते हुए कहा—"दादा, आज आखेट में जो आनन्द आया...."

"पेशवा, कहाँ जा पड़े हो तुम?"

"मैं?"

"हाँ!" कदम ने धीरे से उनके कन्धे पर हाथ रख दिया—"आखेट के लिये इस समय क्या जङ्गल में धँसने का विचार कर रहे हो?"

"हाँ, क्यों नहीं दादा!" बाजीराव का स्वर जैसे झटका खा उठा—"क्या बात है?"

"पेशवा, तुम आपे में नहीं हो, जाने किस चिन्ता में....सन्ध्या हो रही है और तुम आखेट के लिये जङ्गल में—ऐसे जङ्गल में, जिसके दरिन्दों...."

"ओह!" कदम को बीच ही में रोकता हुआ उनका सम्हलता-सा स्वर—"दादा, सन्ध्या हो रही है, मुझे पता ही न था!" मस्तक झटक कर उन्होंने सामने पहाड़ियों की ओर निहारा और तब—"सचमुच सन्ध्या होने में देर नहीं। हमें अब वापस लौटना चाहिये....क्यों दादा?"

"हाँ!"

"अप्पा!"

"भाई साहब!" चिमणाजी जल्दी से उनके पास आकर खड़े हो गये—"आज आखेट में आप बहुत जख़्मी हो गये हैं। हमें जल्दी पूना पहुँचना है...."

"हाँ, पहुँचना तो है; पर अप्पा, आज आखेट में अपूर्व आनन्द

आया। दुख है, तुम नहीं थे....उस शेर को सुरक्षित पूना पहुँचाने की व्यवस्था हो गयी ?" प्रश्न दूर पर खड़े, पेशवा के अङ्गरक्षकों के नायक से किया गया था। नायक ने विनम्रभाव से अपनी स्वीकृति प्रकट की। बाजीराव उछल कर अपने अश्व की पीठ पर हो गये। सब ने उनका अनुसरण किया।

पहाड़ियों की ऊँची-नीची शृंखला में उलझा सूरज, निस्तेज हो रहा था।

● ●

बाजीराव पेशवा की महत्वाकांक्षी-दृष्टि जब अपने चारो ओर उठती तो उत्तर के मार्ग में, एक मजबूत रोड़ा बनकर निजामुल्मुल्क सामने आ जाता। घरू झमेले को सुलझाने में, बाजीराव को एक बार अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा लगा देनी पड़ी और उसका सन्तोषजनक प्रतिफल भी प्रकट हुआ। महाराज शाहू का पेशवा पर विश्वास बढ़ता ही गया। सरदार-मण्डली में भी अपना स्थान बनाने में पेशवा को देर नहीं लगी। फिर भी वे इससे अपरिचित नहीं थे कि सम्पूर्ण सरदार-मण्डली को वश में करने के लिये अभी बहुत कुछ करना है। सरदार-मण्डली के दो प्रभावशाली-नेता, कन्नाजी बान्दे और पिलाजी गायकवाड़—गुजरात में चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार प्राप्त कर चुके थे। परन्तु यह स्पष्ट था कि धूर्त और राज-नीति का पटु खिलाड़ी निजामुल्मुल्क की उनकी ओर तीखी दृष्टि थी। गुजरात पर मराठा-सरदारों के जमे हुए पैरों को वह मौका पाते ही उखाड़ फेंकेगा—सोचकर पेशवा अस्थिर-से हो जाते। तभी—

"आज तुमको देखकर मुझे जाने क्यों आश्चर्य हो रहा है बाजी !"

अपने पैरों पर झुके पुत्र की पीठ पर स्नेहमयी थपक देती हुई पेशवा-माता राधाबाई ने मृदु स्वर में कहा—"अस्वस्थ हो क्या ?"

"नहीं, माताजी !"

"तो ?"

नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर पेशवा, महल के बाहरी हिस्से के अपने विशेष कक्ष में चिन्तानिमग्न बैठे थे कि तभी माताजी को सामने देख, झटपट तख्त से उठ पड़े थे। माँ को तख्त पर बिछे मोटे मखमली गद्दे पर बिठाकर वे खड़े ही रहे—"माताजी, आपको यहाँ कष्ट करके आने की आवश्यकता भी क्या थी ? मुझे ही बुलवा भेजतीं...."

राधाबाई ने पेशवा को अपने पास बिठा लिया और तुरत ही वार्ता का रुख पलटते हुए गम्भीर स्वर में बोलीं—"बाजी, मुझे मालूम हुआ है कि तुमने तीन-चार वर्षों की पेशवाई में, महाराष्ट्र की विशृङ्खल शक्ति का अपूर्व सङ्गठन कर लिया है। परन्तु वत्स, मराठा-घुड़सवारों की तलवारों में स्वार्थ ने जो जङ्ग लगा दी है, उसे नजरअन्दाज किये बिना कोई सक्रिय-पग आगे बढ़ाना खतरनाक होगा, इसका स्मरण है न तुम्हें ?" यद्यपि वृद्धावस्था और वैधव्य की आँच में राधाबाई की मुख-श्री म्लान पड़ गयी थी तथापि वे आश्चर्य-जनक रूप से उत्साहमयी दीखती थीं।

"अवश्य, माता जी !"

"मुझे ऐसी ही आशा थी वत्स !"

"और आशा ?"

"हूँ !" उनके मुख से गुर्राहट-सी निकली—"बाजी, चार साल हो गये तुम्हारे पिता को स्वर्गीय हुए; परन्तु उनके मुख से निकले अन्तिम शब्द आज भी मेरे मन-प्राणों में गूँज रहे हैं...."

"माताजी !" बाजीराव विह्वल हो रहे थे।

"वत्स !" वे तीव्र स्वर में कह उठीं—"उनके अपमान का तुझे प्रतिशोध भी लेना है, इसे लगता है, शासन-व्यवस्था की व्यस्तता में भूल गया है। अपने पिता को तूने वचन दिया है बाजी !"

"मैं भूला नहीं हूँ....नहीं, कभी नहीं माताजी !"

"मुझे सन्ताजी जाधव का खून चाहिये बाजी !" उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल उठीं—"वह आजकल निजामुल्मुल्क का मन्त्री बना हुआ है—कुलकलङ्की कहीं का !"

"जाधव....निजामुल्मुल्क...." बाजीराव के मुख से अस्फुट स्वर निकला और वे सामने दीवार पर, पुष्पमालाओं से घिरे, अपने पिता, बालाजी विश्वनाथ के पूरे आकार के तैल चित्र की ओर निहारते रहे; फिर—"माताजी, जाधव निजाम के आश्रय में है ?"

"हूँ !"

"कब से ?"

"बहुत दिनों से !" मानसिक उत्तेजना से उनके मुख पर रक्त छलक उठा था—"तू शायद भूल गया है बाजी, पर मुझे याद है....खूब याद है...." उनकी आँखों से ज्वाला-सी फूट पड़ी। उनके काँपते हुए हाथों को बाजीराव ने अपने हाथों में ले लिया।

"माताजी, कार्य-व्यस्तता ने तुम्हारे पुत्र को कर्त्तव्य-हन्ता की संज्ञा दे दी थी परन्तु....परन्तु विश्वास रखो, तुम्हारे दूध का कलंकी नहीं हूँ। बाजी अपने पिता के अपमान का प्रतिशोध लेगा और शीघ्र ही जाधव का मस्तक तुम्हारे चरणों की धूल बनेगा। निज़ाम ही क्या अगर सारा संसार एक बार उस देश-द्रोही की हिमायत में खड़ा होगा तो भी उसे मेरे हृदय की प्रतिशोधाग्नि भस्म करके रहेगी...." और उन्होंने झुककर उनका चरणस्पर्श कर लिया। माँ की आँखों में स्नेहाश्रु उमड़ आये।

आवेग ने बाजीराव को बैठने न दिया। वे उठकर कक्ष में टह-

लने लगे। रह-रहकर उनके नथुनों से उच्छ्वास फूट पड़ता था और तब पेशवा-माता अनायास ही चौंक-सी पड़तीं।

"बाजी !"

"माताजी !" बाजीराव के पग ठमके; आँखों ने माँ की मुद्रा पर वैकल्य का आभास पाया—"माताजी, तुम्हें अपने बाजी पर विश्वास नहीं ?" स्वर काँप रहा था।

"ऐसा तू क्यों सोचता है बाजी !" पेशवा-माता को रोमांच हो आया—"मेरा मतलब तो...." कहते-कहते वे रुक गयीं, जैसे कंठ में कुछ अँटक गया हो।

"माताजी !" बाजीराव उनके चरणों के निकट आ बैठे। उनके आतुर हाथों ने चरणों का स्पर्श किया और—"अपनी मातृ-भक्ति की निस्सारता की कल्पना से तुम्हारा बाजी मर्माहत हो उठा है...."

"नहीं, वत्स !"

"तो ?"

"मेरा मतलब था, जाधव से हमारा प्रतिशोध पूर्णतया वैयक्तिक है और तेरा अपना वैयक्तिक-अस्तित्व, संपूर्ण महाराष्ट्र में सन्निहित हो चुका है। इसे तुझे कभी विस्मरण नहीं करना है। जाधव से प्रतिशोध लेने का अधिकारी बाजी है, पेशवा बाजीराव कदापि नहीं...." स्वर अत्यन्त गम्भीर हो गया था। सुनकर बाजीराव की मुद्रा पर चिन्ता की एक झीनी लहर लहरा गयी है—यह उनसे छिपा न रहा।

"माता जी !" पेशवा ने दूसरे ही क्षण अपने को सम्हाल लिया। आवेग ने धमनियों को उत्तप्त लहू से कँपा कर रख दिया—"जाधव से अपना प्रतिशोध स्वयं बाजी लेगा, पेशवा की छाया भी नहीं पड़ सकेगी उसपर। बाजी का व्यक्तित्व, पेशवा के रूप में महाराष्ट्र का है परन्तु वह...." कण्ठावरोध हुआ—"तुम्हारा पुत्र कायर नहीं....उसकी वीरता अपनी है, पेशवाई की विरासत नहीं !" अन्तिम वाक्य

हुँकार में डूबा था। वे तनकर खड़े हुए तो एकबारगी शरीर की नसें चटाख-चटाख कर उठीं। क्षणभर वे माँ की वत्सल-मुद्रा की ओर निहारते रहे; पुनः कमर से अपने पिता का सुप्रसिद्ध खड्ग म्यान से खींचकर मस्तक से लगा लिया—"तुम्हारा बाजी प्रतिज्ञा करता है, माँ दुर्गा की शपथ खाकर कि जाधव का मस्तक साथ लेकर ही तुम्हारा दर्शन करेगा...." और वे तत्क्षण ही घूम पड़े।

"बाजी !" राधाबाई हड़बड़ाकर उठ पड़ीं।

"माता जी, तुम्हारा बाजी प्रतिज्ञाबद्ध है !"

"नहीं-नहीं...."

"माता जी...." सुन पड़ा और उनके झपटकर आगे बढ़ने के पूर्व ही बाजीराव द्वार के बाहर हो गये थे। मुख से चीत्कार फूटने को हुआ परन्तु जाने किस अज्ञात शक्ति ने उसे कंठ में ही समाहित कर लिया। वे पुनः आकर तख्त पर धम्म से बैठ गयीं। लगा कि जैसे सारा महल तेजी से घूम रहे कुम्हार के चाक पर रखा हो। उद्वेग से मानस के तार-तार सिहर उठे। उन्होंने दोनों हथेलियों में अपना मस्तक भींच लिया।

"माता जी !" द्वार से आवाज आयी।

"कौन, बाजी !" वे चौंकी—"ओह, अप्पा, तुमने....तुमने...."

चिमणाजी अप्पा ने आकर उनका चरणस्पर्श किया और—"माताजी, भाई साहब को आपने कहीं भेजा है ?"

"हूँ !"

"कहाँ ?"

"वह निज़ामुल्मुल्क के राज्य में गया है !"

चिमणाजी अप्पा जैसे आसमान से गिरे—"माताजी, आपको क्या हो गया है ?"

"हूँ, बाजी वहीं गया है अप्पा !" उनका स्वर अत्यन्त गम्भीर

था—"तुम्हें आश्चर्य हो रहा है ?" उनके अधर स्मिति से रञ्जित हो आये थे।

"माताजी !" चिमणाजी रोमांचित हो उठे—"अकेले ?....ओह, मैं पागल हो जाऊँगा...."

"तुम्हें बाजी की शक्ति पर विश्वास नहीं अप्पा !"

"माताजी !" अप्पा के मस्तक पर स्वेद-कण झिलमिला उठे—"पेशवा बाजीराव...."

"अप्पा !" उनका स्वर तीव्र हो गया—"निज़ाम के राज्य में अकेले जाने का साहस बाजी ही कर सकता है। पेशवा बाजीराव के लिये यह नितान्त असम्भव है...." उन्होंने धीरे से उठकर चिमणाजी के कंधे पर स्नेहमयी थपक दी और डगमग पगों से द्वार की ओर बढ़ गयीं।

हतबुद्धि-से चिमणाजी उनको जाता हुआ अपलक निहारते रह गये।

● ●

पेशवा को अत्यन्त उद्धतभाव से कक्ष के बाहर आता देख, उनके अङ्गरक्षकों में सनसनी मच गई। प्रधान ने आगे होकर मस्तक झुकाया। पेशवा के पग ठमके और जब वे दूसरे ही क्षण, बिना कुछ बोले आगे बढ़ गये तो सबके-सब बेतरह घबरा उठे। प्रधान ने अपने को शीघ्र प्रकृतिस्थ कर लिया। वह पेशवा के सामने आ रहा—"स्वामी !"

"मेरा अश्व अविलम्ब तैयार करो प्रधान !"

"स्वामी, सेवक के लिये आज्ञा ?"

"नहीं, तुम सबकी कोई आवश्यकता नहीं !" और अनायास ही

आँखों में स्फुलिङ्ग नर्तन कर उठे। काँपता हाथ, कमर से लटक रही 'प्रसादिनी' की मूठ पर जम-सा गया—"मेरे पीछे आने का प्रयत्न नहीं होना चाहिये प्रधान !" स्वर में इतनी गम्भीरता थी कि प्रधान सहम-सा उठा। सङ्केत पाते ही अश्व-रक्षक ने पेशवा के प्रिय अश्व की बाग-डोर खोल दी। स्वामी को देखते ही अश्व का शरीर उत्साहाधिक्य से विचलित-सा हुआ और वह उनके सामने आकर खड़ा हो गया।

"स्वामी !" पेशवा को अपने ही में खोया हुआ पा, प्रधान ने अत्यन्त विनत स्वर में कहा।

"हूँ !" एक हुङ्कार और पलक झपकते ही अश्व अपने स्वामी को लिये मुख्य द्वार को पार करता दीख पड़ा। पेशवा की इस अप्रत्याशित मनःस्थिति ने देखते ही देखते सम्पूर्ण महल को आतङ्कित कर दिया।

● ●

पहाड़ों के बीच से गये सँकरे, ऊबड़-खाबड़ मार्ग को रौंदता हुआ अश्व उड़ा जा रहा था। स्वामी की मनःस्थिति से लगता था, वह मूक पशु पूर्णतया परिचित हो। और यही कारण था कि मार्ग की दुर्गमता, उसके पगों से कुचल-कुचल कर रह जाती थी। दस घण्टे तक की अनवरत यात्रा ने तो जैसे पराजय मान ली थी। न तो बाजीराव की मुद्रा पर थकन की कोई आभा थी और न ही अश्व की पगगति में शैथिल्य। दोनों अपने आप में ही डूबे थे। सन्ध्या का झीना अन्धकार क्रमशः गहन होता जा रहा था। निस्तब्ध पहाड़ियाँ टापों की ध्वनि से गूँज-गूँज कर रह जातीं। बाजीराव ने मस्तक को झटका दिया। उन्माद के उत्तप्त-रस में भीगी-सी आँखों ने अपने चारों ओर देखा।

"हूँ !"

अश्व के बढ़े हुए अगले दोनों पैर जहाँ के तहाँ रह गये। उसके नसापुटों से फुफकार-सी निकली, जैसे स्वामी की आज्ञा के लिए आकुल हो उठा हो वह, जैसे स्वामी के मुख से निकली हुङ्कार पर अनुमान लगा रहा हो।

"पवन!" बाजीराव का स्वर किञ्चित तरल हो आया—"थक गया है तू?"

उत्तर में पवन के नसापुटों ने एक तीव्र उच्छ्वास उगल दिया और उसके पग पुनः हवा से होड़ लेने लगे। बाजीराव के सूखे अधरों पर मुस्कान की तरलता छलक-छलक कर रह गयी। उनके उद्भ्रान्त मानस में पवन की अभिमानी-स्वामीभक्ति ने, विद्युत-लहर से स्वाभाविक स्थिरता ला दी थी। गर्दन पर स्वामी की स्नेहमयी थपक का अनुभव पाकर पवन झटके के साथ रुक गया। बाजीराव उछलकर नीचे उतर आये। दस घण्टों की यात्रा ने पवन के शरीर पर अपना पर्याप्त प्रभाव डाल दिया है, इसका अनुभव उन्होंने पहली बार किया।

पहाड़ियों को पीछे छोड़कर वे एक सुरम्य घाटी में आ गये थे। दूर पर, तारों की टिमटिमाहट में गोदावरी की धारा स्पष्ट दीख रही थी। चारों ओर सघन-जङ्गल—जिसकी भयङ्करता, रात की नीरवता और तारों की टिमटिमाहट में—विचित्र-सी सम्मोहकता में खिल उठी। उन्होंने पवन की पीठ पर हाथ रखा और धीरे-धीरे गोदावरी की धारा की ओर बढ़े। पवन उनका अनुसरण कर रहा था।

सहसा पीछे से सिंह की गर्जना आयी, जो देर तक निस्तब्धता के वक्ष को विदीर्ण-सी करती रही। पवन क्षण भर के लिये झिझका परन्तु दूसरे ही क्षण वह शान्त हो गया; परन्तु उसका अङ्ग-अङ्ग असाधारण रूप से सन्नद्ध दीखने लगा। स्थिति की विकटता के अनुभव ने बाजीराव को चौंकाया, उन्होंने घूमकर पीछे देखा। दायें हाथ की पाँचों उँगलियाँ 'प्रसादिनी' की मूठ पर जमक-सी गयीं। दूर पर झाड़

की झाड़ियों में खलबली-सी हुई और तारों के मधुर प्रकाश पर से छलकते हुए एक कद्दावर सिंह का शरीर दीख पड़ा। पवन की नाक से सराँहट-सी निकली। वह अपने अगले पैरों पर शरीर का पूरा बोझ दिये निस्तब्ध-भाव से स्वामी की ओर निहारने लगा।

परन्तु सिंह का ध्यान सम्भवतः उनकी ओर नहीं था। बाजीराव की तीक्ष्ण दृष्टि से छिपा नहीं रहा कि इस समय वह 'रसिकता' में उन्मत्त हो रहा है। थोड़े ही फासले पर खड़ी छाया ने स्पष्ट कर दिया कि सिंहनी अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही है। उनके अनुभवी मस्तिष्क में यह विचार दृढ़ होते देर नहीं लगी कि इस समय सिंह-दम्पति का पेट खाली नहीं और वे व्यर्थ के रक्तपात में प्रवृत्त होने का खयाल नहीं करेंगे। देखते-ही-देखते सिंह-दम्पति झाड़ियों को रौंदते हुए ओझल हो गये तो उन्होंने पवन को थपकी देकर, निश्चिन्त होने का सङ्केत करने के उपरान्त सामने मन्थर-गति से बह रही गोदावरी की ओर देखा। मन में जाने कैसी थकन भरती आ रही है—अनुभव हुआ और वे पास ही पड़े एक शिलाखण्ड की ओर बढ़े। पवन ने घूमकर आगे बढ़ते हुए अपने स्वामी की ओर देखा। जब वे उस शिलाखण्ड पर बैठ गये तो वह निश्चिन्त-मन से कगार पर उगी नन्हीं दूबों को अपनी जबान से सहलाने लगा।

सन्ता जी जाधव !....सन्ता जी जाधव !....

गोदावरी की सोयी-सी लहरियों पर तिरता हुआ स्वर बाजीराव के कर्ण-कुहरों से टकराया, टकराकर बिखर गया। बाजीराव ने अपने में रोमाञ्च का-सा अनुभव किया। चारो ओर घोर निस्तब्धता व्याप्त थी। रात की उस निविड़ता में, जङ्गल की भयङ्कर 'सजगता' भी जैसे क्षणभर के लिये घुल गयी हो।

"सन्ताजी जाधव !" मुख से अस्फुट स्वर फूट पड़ा—"प्रतिशोध की ज्वाला में भस्म होना सम्भवतः तुम्हें मालूम नहीं। आँखें खोलो

जाधव और देख लो, तुम्हारे सामने बाजीराव खड़ा है....हूँ, चौंकते हो, वही बाजीराव, जिसकी धमनियों में बालाजी विश्वनाथ का लहू—उत्तप्त लहू हुँकार कर रहा है....” उनकी पलकें पूर्ववत् ढँपी थीं। वे कब उस प्रशस्त शिलाखण्ड पर, दोनों हाथों का ढाँसना लगाकर पड़ गये, इसका अहसास शायद उन्हें नहीं हो पाया।

आकाश पर नवमी का चन्द्रमा मुस्करा रहा था और उसकी उस मुस्कान से पृथ्वी पर रजतवर्षा हो रही थी।

● ●

बाजीराव का पवन, गोदावरी के किनारे-किनारे, निजाम के राज्य में धँसा जा रहा था। मराठा-साम्राज्य का आधार—पेशवा बाजीराव, एकदम अकेले, उस शेर की माँद में घुस पड़ा था, जो अपने को मुगल-सत्ता का 'हृदय' मानता था। परन्तु पवन की पीठ पर मूर्तिवत् बैठे बाजीराव और पेशवा बाजीराव में महान् अन्तर था। प्रतिशोधो-त्ताप में पेशवाई पिघल कर बह गयी थी।

आधी रात की नीरवता पर पगाघात करता हुआ पवन उड़ा जा रहा था।

“कौन है, घोड़ा रोको!”

झटका-सा लगा। सारे शरीर में विद्युतगति से सजगता नाच गयी। सतर्क कानों ने अनुभव किया, पीछे कुछ ही फासले पर बीसों अश्वारोही आ गये हैं। पलक झपकते ही खतरा मूर्त्त रूप में सामने आ गया। वे इस समय, महाराष्ट्र की भूमि लाँघकर निजाम के अधि-कृत प्रदेश में खड़े हैं—अनुभव हुआ और तब अनायास ही विचलित हो उठे। तब तक चारों ओर लगभग पचीस मुगल सैनिक, एक हाथ

से घोड़ों की रास सम्हाले और दूसरे को तलवार की मूठ पर जमाये दीख पड़े।

स्वामी का सङ्केत पाते ही पवन के उठे हुए पग जहाँ के तहाँ स्थिर हो गये। गोदावरी का किनारा काफी पीछे छूट गया था। प्रतिशोधाग्नि की लपलपाहट में परिस्थिति की विकटता भस्म हो गयी। एक दीर्घ-निश्वास के साथ उन्होंने उनको देखा। दायें हाथ की उँगलियाँ प्रसादिनी पर जमी हुई थीं।

"कौन हो तुम लोग ?" स्वर अत्यन्त गम्भीर था उनका।

मुगल सैनिक सकपकाये। स्वर में अधिकार का जो ओज छलक रहा था, उससे वे क्षणभर के लिये विमूढ़-से हो रहे। परन्तु नायक की विमूढ़ता शीघ्र ही दूर हुई, उसने आगे बढ़कर किञ्चित तीव्र स्वर में पूछा—"मराठा मालूम पड़ते हो ? तुम्हें यह भी नहीं मालूम, आधी रात में चोरों की तरह सीमा पार करना...."

"किसकी सीमा ?"

"निजामुल्मुल्क की !" नायक ने तलवार म्यान से खींच ली—"हम तुम्हें हिरासत में लेने को मजबूर हैं। चुपचाप घोड़े से नीचे आ जाओ...." नायक की देखादेखी, अन्य सैनिकों ने भी अपनी तलवारें नङ्गी कर लीं। बाजीराव की आँखों में खून छलक आया। सुदृढ़ माँस-पेशियाँ कम्पन से थर्रा उठी। हलका-सा एँड़-सङ्केत पाकर पवन घेरे को तोड़कर उन्हें दूर पहुँचा देगा, इसका उन्हें विश्वास था; परन्तु उनका मार्ग इससे कण्टकमय हो उठेगा—यह निर्णय करने में भी उन्हें विलम्ब नहीं लगा। वे धीरे से पवन के नीचे उतर आये। नायक ने उनके और पास आकर, चाँदनी की झिलमिली में उनको और गौर से देखा—"कहाँ से आते हो ?"

"सतारा से !"

"सतारा से...." नायक जैसे आसमान से गिरा—"मतलब मराठों की राजधानी से ?"

"हाँ !"

"क्यों ?"

"आवश्यक कार्यवश...." उनका स्वर पूर्णतया शान्त था—"मुझे सन्ता जी जाधव से इसी समय मिलना है। क्यों मिलना है, इसे बताने से मैं इनकार करता हूँ !" सन्ता जी जाधव का नाम सुनकर वे सब विचार में पड़ गये हैं, यह बाजीराव से छिपा न रहा। जो वाक्य उनके मुख से निकल गया था, मस्तिष्क ने उसकी नियोजना न की थी। अनायास ही निकल पड़े शब्द का चमत्कार देख, वे और संयत-भाव से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे।

"सन्ता जी जाधव !" नायक ने कुछ सोचते हुए-से भाव में कहा—"वे तो....वे तो...."

बाजीराव चौंके—"क्या वे कहीं चले गये हैं ?" लगा जैसे वे निराश-से हो गये हों।

"नहीं जी !"

"तो ?"

"वे आज ही सीमा की चौकी पर आये हैं। हमारा खयाल है, वे कल सुबह औरङ्गाबाद जाने वाले हैं...."

"मैं उनसे मिलूँगा, चौकी किस ओर है, अगर बतला सको तो....हमारा उनसे मिलना बहुत ज़रूरी है। इसे कभी न भूलो कि अगर तुम सब मुझे रोकने की चेष्टा करोगे तो...."

नायक कुछ देर सोचता-सा रहा ; फिर अपने घोड़े की ओर बढ़ता हुआ बोला—"चलो, हमारे साथ ही तुम्हें चलना होगा...."

संतोष का एक दीर्घ निश्वास लेकर बाजीराव पास ही खड़े पवन पर आरूढ़ हो गये। उन्हें आगे करके नायक अपने साथियों के साथ

पीछे की ओर लौट पड़ा। कुछ ही देर में वे गोदावरी के किनारे बनी चौकी पर आ गये। थोड़ी दूर पर पाँच-सात तम्बू लगे थे। बाजीराव ने अनुमान से समझ लिया, उन्हीं तम्बुओं में वे सन्ताजी जाधव को पायेंगे और इस कल्पनामात्र से उनका हृदय उत्तेजना से आन्दोलित हो उठा।

"क्या आप इसी समय उनसे मिलेंगे ?" नायक का स्वर अपेक्षाकृत मृदु हो गया था—"वे शायद इस समय सो रहे होंगे, अगर आप सुबह मिलने में कोई नुकसान नहीं समझें तो...."

पवन से उतरते हुए बाजीराव ने अपने आगे के कार्यक्रम का निर्णय कर लिया था। नायक के भाव-परिवर्तन से यह स्पष्ट हो गया था कि इनपर जाधव का रोब पर्याप्त मात्रा में गालिब है; सो उन्होंने तुरत ही उत्तर दिया—"कोई बात नहीं, इतनी दूर का सफर करते-करते मैं थक भी बहुत गया हूँ। थोड़ा आराम करना चाहता हूँ.... मेरा घोड़ा भी...."

"ठीक है, मेरा खयाल है, हमारे हाथ का आप कुछ खायेंगे नहीं, अगर कहें तो जाधवजी के रसोइये-बरहमन को बुला दिया जाय...."

"नहीं, नहीं !" बाजीराव ने सहज-भाव से कहा—"बिना नहाये-धोये इस समय मैं कुछ खा भी कैसे सकता हूँ ? आप लोग कष्ट न करें, उनका रसोइयाँ, हमारा परिचित है। मैं खुद उसके पास चला जाता हूँ...."

"ठीक है, सबेरे आपसे भेंट होगी...." कहकर उसने आदाबअर्ज किया। अभिनादन का उत्तर देकर, बाजीराव पवन की रास पकड़े, धीरे-धीरे, सामने दीख रहे खीमों की ओर बढ़े। अपने शिकार को वे इतनी आसानी से पा लेंगे, इसकी कल्पना भी न थी। उनकी धमनियों का लहू रह-रहकर उबल-सा उठता था। क्रमशः बढ़ रही

उत्तेजना को बड़ी कठिनाई से शमन कर पा रहे थे। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि से यह छिपा न रहा कि संताजी अकेला नहीं। एक ओर बँधे घोड़ों की संख्या स्पष्ट बतला रही थी, उसके साथ कम से कम सौ-सवा-सौ सैनिक भी हैं। उनके पग ठमके। घूमकर देखा—सीमा-रक्षक सैनिक बहुत पीछे रह गये थे।

तब ?—

इतने सैनिकों के बीच, जाधव को....

विचारों में बाधा पड़ी। एक बड़े-से खीमें का दरवाजा उठा और अन्दर जल रहे शमादानों के प्रकाश में उन्होंने देखा, एक लम्बी-चौड़ी काया बाहर आ गयी। उन्होंने चटपट पवन को खींचकर अपने को आड़ में कर लिया। उस व्यक्ति ने अपने चारो ओर देखा, देर तक देखता रहा और फिर खीमें का द्वार गिराकर एक ओर टहलता हुआ बढ़ने लगा।

"बालाजी विश्वनाथ का छोकरा...."

बाजीराव के कान खड़े हो गये। वह पास आता जा रहा था। उसका स्वर और स्पष्ट हुआ—"उसे तो यूँ मसल दूँगा....मुग़लों की रोटियों पर पला शाहू....निष्क्रियता और अय्याशी में डूबा शाहू—बालाजी विश्वनाथ के बल पर कूदता था और अब....अब...."

वह और पास आया। बाजीराव ने अपने को और आड़ में किया। उनका शिकार सामने था—वही संताजी जाधव !! दायाँ हाथ प्रसादिनी पर पड़ा। मुसकों की मछलियाँ छलक-छलक कर रह गयीं। जाधव उनके सामने से होता हुआ, आगे बढ़ गया था। सहसा वह घूमा और बगल में दीख रहे एक किले के ध्वंसावशेष की ओर बढ़ने लगा। चलते-चलते बड़बड़ाता जा रहा था—"पूना....और वह विश्वनाथ का छोकरा बाजीराव मेरे पैरों की धूल...."

बाजीराव ने इधर-उधर देखा—तम्बुओं और सीमा-रक्षकों की

दृष्टि से जाधव ओझल हो चुका था। आवाज़ देने पर कोई सुन सकेगा, इसकी भी आशा नहीं थी। उनकी साँस धौंकनी की भाँति चल रही थी। 'प्रसादिनी' पर जमा हाथ रह-रहकर काँप उठता।

जाधव का दूर होता हुआ-सा अट्टहास—"हः-हः-हः,....कहा था, प्रतिशोध लूँगा....हः-हः-हः,....बालाजी विश्वनाथ, इस स्थान को, इस किले के ध्वंसावशेष को देख रहे हो न, यहीं पर तुमने जाधव पर तलवार का वार किया था पर....जानते हो, अब इसी स्थान पर तुम्हारे शूर कहे जाने वाले पुत्र बाजीराव पेशवा को मैं—तुम्हारा मित्र यह संताजी जाधव, खून से नहला कर पैरों से रौंद डालेगा....हूँ...."

पर जाधव की बात पूरी नहीं हो पायी। उसे लगा कि जैसे उसकी पीठ पर वज्रपात हुआ हो!—धक्का न सम्हाल सकने के कारण मुँह के बल ज़मीन पर गिर पड़ा वह। बाजीराव के पवन ने अपने आगे वाले दोनों पैरों को उसकी पीठ पर टिका दिया था।

"जाधव!" बाजीराव उछलकर पवन से नीचे आ रहे।

जाधव भी तत्क्षण ही उठकर खड़ा हो गया। गिरने से उसका ओंठ कट गया था। खून और आश्चर्यातिरेक से उसका चेहरा भयङ्कर हो रहा था।

"कौन, बाजीराव....पेशवा बाजीराव....तुम!"

"हाँ, जिसे खून से नहलाकर तुम पैरों से रौंदने वाले थे—वही बाजीराव!" और झनकती हुई प्रसादिनी चन्द्रकिरणों के झिलमिल प्रकाश में दमक उठी।

"पेशवा...."

"नहीं, केवल बाजीराव!" बाजीराव तड़प उठे—"एक सुसम्मानित मराठा-कुल में जन्म लेकर तू देश-द्रोही भले ही हो गया हो पर मेरा ख्याल है, कायर नहीं बना है सन्ताजी!"

"मैं कायर हूँ!" जाधव उबल पड़ा। उसने तुरत अपनी तलवार

खींच ली—"बाजीराव, इसे तुम भूलो मत कि इस समय पेशवाई की छत्रच्छाया तुमसे कोसों दूर है और इसे भी कि अपने को वीर कहनेवाला तुम्हारा पिता बालाजी विश्वनाथ...."

"चुप रह नीच !" बाजीराव ने उछलकर जाधव के सीने पर लात मारी। परन्तु जाधव उस भयङ्कर झटके को सम्हाल गया—"इस समय तेरे सामने पेशवा नहीं, बालाजी विश्वनाथ का पुत्र बाजीराव खड़ा है और वह अपने पिता के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये आया है !"

"प्रतिशोध !"

"हाँ !" बाजीराव का मुख-मण्डल आन्तरिक आक्रोश से आरक्त हो आया था। उनकी 'प्रसादिनी' चाँदनी के क्षीण प्रकाश में छिप रही थी। यद्यपि पेशवा बाजीराव को सहसा इस रूप में अपने सामने पाकर जाधव मन ही मन अत्यन्त आतङ्कित हो रहा था तथापि उसके मुख पर मन के आतङ्क की तनिक भी आभा नहीं लक्षित हो रही थी; साथ ही बाजीराव के इस दुस्साहस पर वह वह चकित भी कम नहीं था। दिल्ली की ओर से निराश होकर निजाम, अब दक्षिण के मालवा, गुजरात आदि प्रान्तों को अपने अधिकार की छत्रछाया में सुदृढ़ता प्रदान करने का दृढ़-सङ्कल्प हो गया था। अपने नये पेशवा के वीरत्वपूर्ण नेतृत्व में महाराष्ट्र जाग उठा था। शिवाजी के उस बिरवे का रूप, विशाल वृक्ष का आकार पाकर, दक्षिण ही नहीं सम्पूर्ण भारत पर छा जाने को अकुला उठा था....

"बाजीराव !" सहसा जाधव तीव्र स्वर में कह उठा—"तुम्हारे दुस्साहस की प्रशंसा करना चाहकर भी...." वह रुका तनिक, जैसे स्वर-प्रवाह में कोई अवरोध आ पड़ा हो, फिर उसी तीव्रता से—"महाराष्ट्र के महत्वाकांक्षी पेशवा में इतनी भी अक्ल नहीं है, जानकर खेद हुआ। तुम इस समय निजाम...."

"चुप रह !" बाजीराव बीच ही में तड़प उठे—"समय आने पर पेशवा और तुम्हारे आका निजाम में इसका निर्णय अवश्य हो जायगा...." आवेगाधिक्य से उनका स्वर रुद्ध-सा हो आया—"इस समय तो तुम्हारे सामने मात्र बाजीराव खड़ा है और उसे तुम्हारे मस्तक की आवश्यकता है, जिसे वह लेकर ही जायगा...." प्रसादिनी झनझना उठी। आघात सधा था परन्तु सन्नद्ध जाधव ने उसे एक ओर हटकर व्यर्थ कर दिया और विद्युतगति से घूमकर बाजीराव के मस्तक पर अपनी तलवार का वार किया। पगड़ी को काटती हुई तलवार अन्दर छिपे शिरस्त्राण से टकरायी—झन्न !

"जाधव !" एक तड़प के साथ ही जाधव के तलवार वाले हाथ को कन्धे के पास से पोंछकर प्रसादिनी लाल हो उठी।

"आह !" जाधव भहरा पड़ा।

प्रसादिनी पुनः लपलपाई। जाधव ने आँखें बन्द कर लीं। बाजीराव उन्मत्त-से हो रहे थे।

"कायर !" वे गरजे—"दुख है कि तलवार पकड़ सकने में तू असमर्थ हो गया है....तेरा मस्तक उतारने में अपनी प्रसादिनी और अपने पुनीत प्रतिज्ञा को कलङ्कित नहीं करूँगा। तेरा यह हाथ ही लिये जा रहा हूँ। पिताजी का तूने अपमान किया था और आज से तेरी पङ्गुता, उस नीचता को सदैव याद कराती रहेगी....अपनी जन्मभूमि की कोख में छुरा घुड़ेसने के प्रयत्न में तूने अपने में जो कुत्सा भर ली थी उसका प्रतिकार एक दिन स्वयं महाराष्ट्र करेगा, इसे भूलना नहीं...." कहते हुए उन्होंने झुककर उसके कटे हुए हाथ को उठाकर, पवन की जीन से लटक रहे चमड़े के झोले में रख लिया।

"बाजी !" जाधव कराहा—"मैं देश-द्रोही नहीं हूँ...."

"चुप रह !"

"नहीं बाजी, नहीं !" उसने बड़ी करुण-दृष्टि से बाजीराव की ओर

निहारा—"मेरे तीन पुश्तों ने महाराष्ट्र को अपने लहू से सींचा है और यह जाधव भी....नहीं, नहीं बाजी, मैं प्रतिहिंसा में पागल हो रहा था। तुम्हारे पिता बालाजी विश्वनाथ, कभी मेरे पिता के अधिनस्थ थे—एक मामूली सेनानायक....परन्तु जब पिताजी के उपरान्त उत्कर्ष की सीढ़ियाँ पार करते हुए बालाजी विश्वनाथ को मैंने उच्च शिखर की ओर बढ़ता देखा तो जल उठा...." अत्यधिक लहू निकल जाने के कारण जाधव क्षण भर के लिये शिथिल-सा हो गया। बाजीराव स्तब्ध-भाव से उसकी ओर टक लगाये खड़े थे।

"मैंने बालाजी का क्या अपमान किया था, मालूम है तुम्हें?" उसने बड़े आतुर-भाव से पूछा।

"नहीं!" बाजीराव के मुख से निकल गया।

"मुझे सन्तोष है तब!" उसके सूखे अधरों पर आन्तरिक सन्तोष का गीलापन तिर आया—"सम्भवतः तुम्हारी माताजी ने नहीं बताया है....बाजी....मैं सचमुच उस समय पागल हो उठा था....नहीं....तो नहीं तो....पर....अब तुमने....तुमने...." उसकी साँस टूटने-सी लगी।

"जाधव!"

परन्तु उनके लपककर कुछ करने के पूर्व ही, जाधव के काँपते हुए बायें हाथ ने बगल से एक पैनी छुरी खींचकर अपने कण्ठ में घोंप ली। लहू का फव्वारा फूट पड़ा।

"जाधव, तुमने यह क्या किया जाधव!"

"प्रायश्चित!"

"ओह!"

"तुम प्रतिशोध लेने आये थे बाजी....अपने पिता के अपमान का प्रतिशोध...."

"वह तो मैंने ले लिया था जाधव!" बाजीराव ने उसके पास बैठकर, लहू के फव्वारे पर अपनी हथेली रख दी, परन्तु घाव संघातक

था। जाधव प्रतिक्षण मृत्यु के करालगाल में खिंचा जा रहा था। लहू का वह प्रवाह रुका नहीं। बाजीराव के मस्तक पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आयीं।

"बाजी, सुन रहे हो न मेरे भाई...." उसकी पलकें मुँद गयी थीं, साँस घरघरा उठी थी—"तुमने अपना प्रतिशोध ले लिया और वह बाला जी के वीर पुत्र के योग्य ही था; मगर मुझे अपने आपसे प्रतिशोध लेना बाकी था....प्रतिहिंसा की आग में उत्तप्त मेरा पतन रात दिन....ओह, बाजी, तुम चले जाओ....सबेरा होते ही....औरङ्गाबाद से निजाम का पुत्र नासिर एक बड़ी सेना के साथ इधर आने वाला है....ओह, हो सके तो...."

"जाधव!"

परन्तु कुछ कहना चाहकर भी वह कह नहीं पाया और एक हिचकी के साथ ही उसका प्राण-वायु निकल कर जाने किस ओर चला गया। अनायास ही बाजीराव का हृदय हूक से व्याकुल-सा हो उठा और आँखों में विराट शून्य लिये वे निहारते रह गये निस्पन्द जाधव के शरीर की ओर। उसके इस भयङ्कर-प्रायश्चित ने उन्हें क्षणभर के लिये अवसन्न कर दिया था।

सहसा दूर से घोड़ों के टापों की ध्वनि ने उन्हें चौंकाया। निजाम के सैनिक पास आ गये थे। पास ही खड़ा पवन एक बार धीरे-से फुत्कार उठा, जैसे अपने स्वामी को सावधान कर रहा हो कि अब एक क्षण का भी विलम्ब खतरनाक होगा! वे उठकर खड़े हो गये। दृष्टि अब भी जाधव की लाश पर टिकी थी। पवन पुनः फुत्कारा। वे पुनः चौंके। दूर से आ रही घोड़े के टापों की ध्वनि क्रमशः पास आ रही थी। आकाश पर चाँद—मलिनता में डूब गया-सा चाँद, खामोशी से मुस्करा रहा था। सितारे निस्तेज हो रहे थे। टापों की ध्वनि और

पास से आयी। उन्होंने और विकल दृष्टि से जाधव की लाश को निहारा।

स्थिति प्रतिक्षण विकट से विकटतर होती जा रही थी। पवन उनके पास ही खड़ा था।

झटका-सा लगा और तब वे झुके दीख पड़े। खून में डूबी हुई जाधव की लाश को उठाकर उन्होंने पवन पर लाद लिया। देखते ही देखते अपने स्वामी को लिये पवन गोदावरी तट की ओर, हवा से बातें करने लगा। सीमा-रक्षकों को, भोर की मदिरालु झकोरों ने नींद की खुमारी से ढँक दिया था। जाधव की लाश को अपने आगे सम्हाले बाजीराव ने निजाम-राज्य की सीमा पार कर एक दीर्घ उच्छ्वास लिया तो क्षितिज का पूर्वी छोर सिन्दूरी हो गया था।

● ●

पेशवा-परिवार आशङ्का और उद्वेग में डूबा था। सबकी आतुर दृष्टि पेशवा-माता राधाबाई की ओर टिकी थी; परन्तु उनके अन्तस में कौन-सी ज्वाला धधक रही है—यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था। पेशवा के अप्रत्याशित रूप में गायब होने का समाचार, भिन्न-भिन्न रूप लेकर पूना के जन-जीवन में भी अकुलाहट भर रहा था। चिमणाजी ने माँ से प्रयत्न करके भी कुछ जान पाने में असफल होकर भी पेशवा की खोज में कुछ भी उठा नहीं रखा था।

अपने शयन-कक्ष में, स्वर्गीय पति के विशाल तैल-चित्र की ओर टकटकी बाँधे राधाबाई ने, आज तीन दिनों से न तो जल ग्रहण किया था न ही क्षणभर के लिये उनकी पलकें ही ढँपी थीं। क्षणिक-आवेग में आकर अपने ऐसे पुत्र—जो सम्पूर्ण धर्म-प्राण हिन्दुओं की आशा का केन्द्र बन रहा था, जिसे महाराष्ट्र अपना

आधार स्तम्भ मानता था—मृत्यु की विभीषिका में झोंकने का परि-ताप, अपनी भयङ्करता में समेट चुका था।

बाजी और निजाम !

निजाम और बाजी !!

"उफ्, मैंने यह क्या कर डाला नाथ !" अधर हिले तो सही परन्तु स्वर भीतर ही दब-पिसकर रह गया हो जैसे—"मेरी विवशता का अनुभव कर रहे हो न ? जाधव से अपने अपमान का प्रतिशोध तुम नहीं ले सके और इसे मैं जानती हूँ, प्रतिशोधाग्नि में तुम्हारे प्राण अब भी विदग्ध हो रहे हैं। तुम्हारी अन्तिम-कांक्षा भी तो यही थी.... बाजी को, उसकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराकर मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया परन्तु ओह...." उनकी आँखों से अविरल-अश्रुधारा प्रवा-हित हो रही थी।

"माता जी !"

"कौन, बाजी ! तू आ गया बाजी !" काँपते पग लड़खड़ाये और जब किसी की सबल भुजाओं ने उनके अचेत-से शरीर को सम्हाला तो मुख से अस्फुट स्वर निकल रहा था—"बाजी, वत्स, तू सचमुच जीवित निजाम-राज्य से वापस आ गया....मैं जानती थी....जानती थी...."

"माता जी !"

"बाजी !" वे अचेतन में ही कहती जा रही थीं—"सन्ता जी जाधव का मस्तक....वह देख तेरे पिता जी....ओह, वत्स, तूने मेरे दूध की, पिता के रक्त की लाज रख ली...."

"माता जी, माता जी !" वे चिमणा जी अप्पा थे। राधाबाई के मुख से निकले उन प्रलापी शब्दों ने उन्हें घबरा दिया था। बाजी-राव कहाँ गये हैं, यह समझते देर नहीं लगी—उनके सन्ता जी जाधव की खोज में, महाराष्ट्र के महान् शत्रु निजाम के राज्य में

अकेले जाने की कल्पना मात्र से उन्हें रोमाञ्च हो आया। थोड़े ही प्रयत्न में राधाबाई चैतन्य हो गयीं। अपने सामने खड़े चिमणा जी को देख उन्हें धक्का-सा लगा। चिमणा जी के मुख पर आन्तरिक आवेग, मुर्दनी बनकर छाया हुआ था।

"अप्पा !"

"माता जी, पूज्य राव क्या सचमुच निजाम के राज्य में गये हैं? क्या यह सत्य है माता जी ?"

"हाँ, अप्पा !"

"ओह, माता जी, यह आपने क्या किया ?" चिमणा जी का स्वर लड़खड़ाया, लगा कि जैसे उनके शरीर का अणु-अणु लड़खड़ा उठा हो—"आपने मुझसे क्यों नहीं बताया ? कम-से-कम आपको इतना तो समझना चाहिये था, इस समय पूज्य राव पर केवल आपका, हम सबका ही नहीं, सम्पूर्ण महाराष्ट्र का अधिकार है...."

"अप्पा !"

"माता जी, पूज्य राव का जीवन....ओह, मैं जा रहा हूँ...." सहसा ही उनका मुखमण्डल आरक्त हो आया—"अगर उनपर तनिक भी आँच आयी तो मैं निजाम के राज्य में आग लगा दूँगा...." वे क्या कह रहे हैं, इसका ज्ञान उन्हें नहीं था। कक्ष में घायल शेर की तरह फिरते समय, रह-रहकर उनकी उँगलियाँ बगल में झूल रही तलवार की मूठ पर जम जाती थीं। उसी समय नीचे कोलाहल मचा—"पेशवा की जय हो !" उछलकर वे द्वार की ओर बढ़े। राधाबाई मूर्तिवत् खड़ी रहीं।

सचमुच पेशवा बाजीराव आ गये थे। पेशवा-परिवार का आतङ्क जैसे मुस्कान में तिर उठा।

"राव !" अप्पा ने दौड़कर पवन को सम्हाला—"मैं तो....अपने पूज्य राव को...."

"पागल !" पवन से उतरते हुए बाजीराव ने मृदुस्वर में कहा—"माताजी कहाँ हैं, मुझे अविलम्ब उनका दर्शन करना है और हाँ, तुम सब को अपने राव की शक्ति पर इतना अविश्वास क्योंकर हुआ कि.... देखो, सम्हालकर...." पवन पर रखी जाधव की लाश को उतारने का उपक्रम करते सैनिकों से कह उठे वे—"यह सन्ता जी जाधव है, इसे पहचानते हो न तुम ?"

चिमणाजी स्तब्ध-मौन कभी सन्ताजी की लाश को, कभी पेशवा की ओर निहारते खड़े थे।

"अप्पा !"

"राव...."

"ओह, देखो, मैं माताजी के पास चल रहा हूँ। जाधव की लाश को सावधानी से उनके आँगन में पहुँचवाने की व्यवस्था करो...." और वे व्यस्तभाव से घूम पड़े। चिमणा जी अप्पा जाते हुए अपने अग्रज की ओर देखते हुए सोच रहे थे—स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ !

सम्पूर्ण पूना नगर अपने पेशवा के रहस्यमय-व्यक्तित्व में उलझा हुआ-सा दीख रहा था....

● ●

चरणों की ओर झुके हुए पेशवा बाजीराव को अपने वक्षस्थल से लगाते हुए राधाबाई का ममत्व तरल हो आया। अपने मस्तक पर माँ के आतुर अधरों का कम्पन अनुभव कर बाजीराव का अन्तस स्फुरण से विगलित हो उठा।

"वत्स !"

"माताजी, मैंने सन्ताजी जाधव से अपना प्रतिशोध ले लिया.... तुम्हारे पुत्र ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली...." कण्ठ की रुद्धता,

आन्तरिक-सन्तोष नहीं व्याकुलता का परिचय दे रही थी—"पर माताजी, जाने क्यों मैं अपने आप में पराजय का अनुभव कर रहा हूँ....सन्ताजी हारकर भी जीत गया माताजी...." उन्होंने जल्दी से अपनी आँखें; राधाबाई की ओर से फिरा लीं—भींग आयी थीं न ?

"बाजी !"

"माताजी, जाधव का पश्चात्ताप—ओह, वह भीषण-पश्चात्ताप मेरे लिये असह्य हो उठा था—महाराष्ट्र का कलङ्की सन्ताजी...."

"बाजी !" राधाबाई का स्वर सहसा तीव्र हो आया। आँखों में लाल डोरे झलक उठे—"उस नीच ने तेरे पिता का अपमान किया था....वह अपमान....तुझे स्मरण नहीं...."

"माता जी !"

"तू ने उसका मस्तक मेरे समक्ष प्रस्तुत करने का वचन दिया था बाजी !"

"हाँ !"

"तो ?"

"उसकी लाश बाहर आँगन में प्रस्तुत है माताजी !" बाजीराव ने अनुभव किया, उनकी भावुकता ने माताजी को अतीत-वीथिकाओं में ला छोड़ा है। वे क्षण भर को स्तब्ध-से रह गये। उसी समय दो सेवकों ने सन्ताजी जाधव की लाश, कक्ष के बाहर ला रखी। खून से भरी लाश, बड़ी वीभत्स लग रही थी। जाधव के प्राण निकले, दो दिन हो रहे थे सो लाश विकृत भी होने लग गयी थी। बाजीराव ने उस ओर से अपनी आँखें फिरा लीं। परन्तु राधाबाई की आँखों में जैसे विद्युत कौंध गया।

"बाजी !"

"माताजी !" बाजीराव का स्वर हौले-से काँप गया—"यही सन्ताजी जाधव है...."

"हूँ !" हुङ्कार-सी फूटी—"यही है वह नराधम, जिसने....जिसने एक दिन हमें विवश पाकर....उफ् !....नाथ, देखो, इस जाधव की ओर...." और वे दीवार पर टँगे स्व० पेशवा बालाजी विश्वनाथ के तैल चित्र की ओर आतुर-दृष्टि से निहारने लगीं, जैसे वह मूक चित्र सजीव रूप में उनके समक्ष हो—"तुम सदैव अपने अपमान की ज्वाला में विदग्ध होते रहे। इस जाधव ने, इसके नरकीट पिता ने और.... और....इसकी वह राक्षसी माँ...." बाजीराव ने लपककर उनके गिरते हुए शरीर को अपनी बाँहों में ले लिया। पास ही पड़ी चन्दन की चौकी पर उन्हें धीरे से लिटाकर देखा तो वे भावोद्वेग में अचेत हो गयी थीं।

द्वार पर चिमणा जी अप्पा के साथ बाजीराव के दोनों पुत्र सभीत खड़े थे। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि यह सब क्या है ! घटनायें इतनी अप्रत्याशित, भयानक और विचित्र थीं कि वे बेतरह घबरा उठे थे।

"अप्पा !"

"राव....माताजी अचेत हो गयी हैं...."

"हाँ, अप्पा !" बाजीराव का स्वर जितना ही गम्भीर था उतना ही विकल भी—"नाना, तुम जाकर अपनी माँ को यहाँ भेज दो...." उन्होंने अपने बड़े पुत्र की ओर देखा।

राधाबाई शीघ्र ही चैतन्य हुईं।

परिचर्या में व्यस्त अपने दोनों पुत्रों की ओर उन्होंने देखा, देखती ही रहीं।

"बाजी....अप्पा...." स्वर लड़खड़ा रहा था—"संताजी जाधव और इसके परिवार के द्वारा हमारा जो अपमान हुआ था, वह संभवतः तुम्हें मालूम नहीं। मेरे बच्चो, उस समय नितान्त अबोध जो थे तुम। तुम्हारे स्व० पिताजी के जीवन में स्थिरता नहीं आ पायी

थी। यह जाधव....'' उनकी आँखें पुनः द्वार की ओर मुड़ीं; परन्तु जाधव की लाश को अप्पाजी ने हटवा दिया था। द्वार पर घबराई हुई-सी बाजीराव की पत्नी काशीबाई खड़ी थीं। दोनों पुत्र पीछे खड़े थे। पेशवा-माता की दृष्टि उन तीनों पर पड़ी।

"आओ, बहू !"

"माताजी, आप अस्वस्थ थीं....'' काशीबाई आकर उनके पायताने खड़ी हो गयी। नाना और रघु भी एक ओर स्तब्ध-से खड़े, पेशवा-परिवार के समक्ष आ गयी विचित्र समस्या का समाधान ढूँढ़ रहे थे।

"मैं अब स्वस्थ हूँ बहू !'' राधाबाई ने एक दीर्घ निश्वास के साथ पुनः अतीत के उस शृंखला को जोड़ने की चेष्टा करनी चाही, जिसके टूट जाने से बाजीराव और अप्पा उद्विग्न हो रहे थे।

"माताजी, आप सम्भवतः पेशवा और अप्पाजी से कोई गम्भीर चर्चा कर रही थीं। मैंने आकर उसे भंग कर दिया, क्षमा चाहती हूँ। मैं बाहर आँगन में हूँ। आवश्यकता पड़ने पर तुरत प्रस्तुत हो जाऊँगी....'' कह कर उसने उद्विग्न-मन बैठे अपने पति की ओर कटाक्ष किया, जिसपर उपालंभ की एक मोटी परत पड़ी हुई थी। बाजीराव की आँखें उठ न सकीं।

तभी—"तुम बाहर क्यों जाओगी बहू ! बाजी, अप्पा और तुम्हारे में कोई अन्तर है क्या ? पगली, अपनों के समक्ष विनम्रता की अतिशयता कभी-कभी अपराध की संज्ञा पा जाती है, इसे हमेशा याद रखाकर....'' क्षणभर के लिये उनके स्वर में सहजता-सी दीखी परन्तु दूसरे ही क्षण वे पूर्ववत् गम्भीर हो गयीं—"बहू, आज तेरे शार्दूल पति ने अपने कुल के मस्तक से अपमान का बोझ उतार फेंका है....संताजी जाधव, हमारे कुल पर सचमुच बोझ था—ओह !....'' उनकी आँखों में रक्त छलक रहा था—"बाजी, तब तू

दस वर्ष का था और यह अप्पा तो निरा शिशु....उस समय....महाराष्ट्र पर स्व० राजाराम का शासन था....तुम्हारे पिता पूना के सूबेदार थे....एक दिन हम-सब ऐसे ही, मनोविनोद के लिये नगर से बाहर जंगलों में भ्रमण कर रहे थे कि...."

"कि ?...." बाजीराव के मुख से आतुर स्वर फूट पड़ा—"माताजी, आप रुक क्यों गयीं ?"

"वत्स !"

"हम सुनने के लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं...."

"अपने पचासों सैनिकों के साथ इस जाधव ने हमें घेर लिया.... हमारे साथ मुश्किल से उस समय चार-पाँच सेवक थे, जो तुम दोनों को सम्हालने को आये थे....तुम्हारे पिताजी को बहुत आश्चर्य हुआ.... जाधव-परिवार से हमारे बड़े मधुर-सम्बन्ध थे....वे जब तक अपने को सम्हालें, तबतक....हम सभी बन्दी बना लिये गये थे....औरंगजेब के एक सेनापति ने....उस अधम का नाम भी मुझे नहीं मालूम....अपनी किसी कुत्सित-अभिलाषा की पूर्ति के निमित्त हमें सपरिवार पकड़ मँगाने के लिये नीच जाधव को मिलाकर षड्यन्त्र किया था। सुना है, उस समय जाधव बादशाही-मदद से खुद सतारा की गद्दी पर बैठने का आकांक्षी हो गया था...."

"ओह !" बाजीराव के मुख से हुँकार-सी फूट पड़ी।

अप्पा का सारा शरीर आवेगाधिक्य से थरथरा रहा था। दाँत अधरों पर जमक गये थे। काशीबाई अवसन्न-सी हो रही थी। इस भीषण अतीत-चर्चा ने उसे पीड़ित कर दिया था।

"अपने को संयत करो मेरे बच्चो !"

"माताजी, फिर क्या हुआ ?" अप्पा अपने को जब्त नहीं कर पाये।

राधाबाई की आँखें ढँप गयीं—"वह मुग़ल सेनापति पूना के

पास ही कहीं टिका हुआ जाधव की प्रतीक्षा कर रहा था....” क्षणभर जैसे कंठ में स्वर अँटके-से, पुनः—“अचानक मराठा घुड़सवारों ने टोह पाकर उसपर आक्रमण कर दिया और वे सभी उस आक्रमण में मारे गये....जाधव की आशाओं पर तुषारापात हो गया परन्तु उसने फिर भी आशा न छोड़ी....और कई दिनों तक हम-सबको न जाने किस अज्ञात स्थान पर बन्दी रखा....” वे रुकीं। सबकी आतुर दृष्टि उनके मुख की ओर केन्द्रित थी।

“माताजी!”

“हाँ! मुझे खूब याद है....सहसा महाराज राजाराम का देहावसान हो गया....उस समय अधिकार के मद में चूर मराठा-सरदारों ने, जाधव-परिवार को शरण की खोज में दर-दर की ठोकरें खाने को विवश कर दिया....अपने स्नेही सरदारों के द्वारा हम सब बहुत पहले ही मुक्त हो चुके थे....इसके बाद घटनायें बड़ी तीव्र गति से घटीं....नाबालिग़ संभाजी को सामने करके महारानी ने शासन-व्यवस्था सम्हाली....तुम्हारे पिता अपने अपमान की ज्वाला में विदग्ध होते हुए भी जाधव से अपना प्रतिशोध न ले सके। महाराष्ट्र के शासन-यंत्र की विशृंखलता ने उन्हें इतना व्यस्त बना दिया था कि....फिर वे जाधव से अपना प्रतिशोध लेने के निमित्त अपने अधिकार का तनिक भी योग नहीं चाहते थे....व्यस्तता में ही उन्हें परलोक की यात्रा कर देनी पड़ी....वे एक क्षण के लिये भी इस बीच जाधव को विस्मृत नहीं कर पाये.... और....और अन्त समय में अपने पिता को दिये वचन को मेरे बाजी ने पूर्ण किया....ओह, नाथ!” उनकी दृष्टि दीवार पर लगे स्व० पति के चित्र की ओर घूम गयी—“देखो, तुम्हारे बाजी ने....ओह, नाथ, देख रहे हो न?....”

“माताजी!” बाजीराव ने टोककर उनके भावोद्वेग को झटका-सा दिया।

"बाजी, वत्स !"

"अन्त समय में जाधव को पश्चात्ताप हुआ था माता जी !"

"हूँ !"

"वह सदैव अपने जघन्य-कृत्यों के लिये अन्दर ही अन्दर घुलता रहा !"

"बाजी !"

"माताजी, मैंने उसे क्षमा कर दिया !"

सभी ने चौंककर देखा पेशवा की आँखें भर आयी थीं। राधाबाई ने धीरे से उनके मस्तक पर अपना काँपता हुआ हाथ रख दिया।

बल-परीक्षा

प्रथम पेशवा बाला जी विश्वनाथ की कूटनीतिक-सफलता ने धीरे-धीरे महाराष्ट्र के शासन-यन्त्र को अपने अधिकार में कर लिया था। राजा और सरदार-मण्डली की विशृङ्खलित-शक्ति पर पेशवाई-नीतिज्ञता शक्तिमान होती रही। बाजीराव ने जीवन का अधिकांश भाग अपने सुयोग्य-पिता की छाया में व्यतीत किया था। अनुभव और वीरत्व की आँच में तपा हुआ जब उनका व्यक्तित्व महाराष्ट्राकाश पर उदित हुआ तो शासन की बागडोर उनके हाथों में आते देर न लगी।

महाराज शाहू में अपने पूर्वजों के रक्त का उत्ताप तो था परन्तु वर्षों मुगलों के सान्निध्य में, बन्दी रहने के कारण उस पर ऐंद्रिक-कामनाओं एवं निष्क्रियता की मोटी परत पड़ गयी थी। जहाँ महाराष्ट्र-निर्माता छत्रपति शिवाजी, राज महलों के सुखासन से अधिक महत्व घोड़े की पीठ को देते थे, वहीं शाहू जी को राज-महलों से अवकाश ही नहीं मिलता था। छत्रपति शिवाजी का महान् स्वप्न—विरवा, विशाल-वृक्ष का रूप कभी न पाता, अगर बाला जी और बाजीराव का उदय न होता।

हिन्दू-पद-पादशाही—मुगलिया सल्तनत के लिये मात्र 'पहाड़ी-लुटेरों' का नारा ही नहीं था—वह उसके मस्तक पर पगाघात करने के निमित्त तत्पर हो गया था। पेशवा बाजीराव की आँखों के समक्ष दक्षिण की पहाड़ियाँ न थीं—दिल्ली का लाल किला था—सम्पूर्ण भारतवर्ष पर लहराता हुआ हिन्दू-पद-पादशाही का प्रतीक भगवा था।

महत्वाकांक्षा बाँध तुड़ा रही थी।

रक्त का उबाल महाराष्ट्र के चप्पे-चप्पे पर उन्मेष की वर्षा कर रहा था....

● ●

बाजीराव ने झुककर महाराज शाहू का अभिवादन किया और आगे बढ़कर राज्य-प्रतिनिधि के समक्ष खड़ा हो गया। उनकी आँखों की दीप्ति ने श्रीपतिराव को अप्रतिभ कर दिया।

"पेशवा को मुझसे कुछ कहना है?" अपने को प्रकृतिस्थ करता हुआ बोला वह—"मेरा विचार है, पेशवा बाजीराव को शिष्टाचार से अपने को विरत नहीं रखना चाहिये...." कहकर उसने महाराज की ओर देखा—"महाराज, न चाहकर भी मुझे कहने को विवश होना पड़ रहा है कि पेशवा की अनुभवहीनता महाराष्ट्र के लिये...."

"नहीं!" बाजीराव ने तड़पकर राज्य-प्रतिनिधि को रोका—"आपका खयाल गलत है। महाराष्ट्र की शक्ति के प्रति आपको भ्रम हो गया है। निकट भविष्य में ही इस भ्रम का परिमार्जन हो जायगा, इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ...."

राज्य-प्रतिनिधि के अधरों पर मुस्कान थी व्यंग्यमयी मुस्कान—"सम्भवतः पेशवा अब अपने उस दुस्साहस का वर्णन करने वाले हैं, जो अकेले निजाम के राज्य में घुसकर निहत्थे और अशक्त सन्ताजी जाधव का खून करके...."

"हूँ!" बाजीराव के मुख से गुर्राहट-सी निकली—"नहीं, वह मेरा दुस्साहस नहीं, कर्त्तव्य था और इसे भूलिये नहीं कि बाजीराव की भुजाओं में कर्त्तव्य-पालन की पर्याप्त शक्ति है, पेशवा-पद उसके समक्ष कोई महत्व नहीं रखता!" कहते-कहते उनका स्वर तीव्र हो

आया। उन्होंने प्रतिनिधि की ओर एक उपेक्षा की दृष्टि डाली और तब महाराज शाहू की ओर उन्मुख हुए—"महाराज, राज्य-प्रतिनिधि को व्यक्तिगत आक्षेप का अधिकार नहीं होना चाहिये...."

शाहू महाराज चाहकर भी कुछ बोल नहीं पाये। उनकी आँखों ने पेशवा का समर्थन अवश्य किया, जिसे राज्य-प्रतिनिधि ने एक झल्लाये हुए निश्वास के साथ लक्ष्य भी किया। वातावरण में असाधारण रूप से गम्भीरता आ गयी। दरबार में यद्यपि राज्य-प्रतिनिधि के समर्थकों का ही बाहुल्य था, तथापि पेशवा की तेजस्विता दरबारियों को चमत्कृत कर रही थी।

"पेशवा!"

"आज्ञा, महाराज!" पेशवा ने अपने को प्रकृतिस्थ कर लिया था; स्वर में स्वाभाविकता आ गयी थी—"मैं राजधानी से दूर रहकर भी, यहाँ की एक-एक बात की पूरी जानकारी रखने की चेष्टा करता हूँ...." लगा कि जैसे उन्हें किसी ने बीच ही में रोक दिया हो। सभा-मण्डली की आँखें उनके मुख की ओर केन्द्रित हो गयी थीं।

"पेशवा का यह कर्त्तव्य है बाजीराव!" शाहू महाराज के मुख से निकल गया।

"अवश्य!"

"और?"

"महाराज, इस समय अपने को अजेय समझने वाली मुगल-सल्तनत के नपुंसक अधिकारियों की आँखें आपकी ओर अँटकी हुई हैं, यह महाराष्ट्र के भविष्य का प्रोज्वल-सङ्केत है।"

"नहीं!" राज्य-प्रतिनिधि गरज उठा।

"क्यों?"

"वर्तमान समय का सबसे सुयोग्य सेनापति और शक्तिसम्पन्न व्यक्तित्व—"

"निजामुल्मुल्क से आपका तात्पर्य है सम्भवतः ?...." बाजीराव ने सहज-भाव से प्रश्न किया—"पेशवा ने महाराष्ट्र के इस सुयोग्य और शक्ति-सम्पन्न सेनापति का खयाल रखा है !"

"तो भी...."

महाराज शाहू ने प्रतिनिधि के तर्क पर किञ्चित चिन्ता की मुद्रा से पेशवा की ओर निहारा। पेशवा के अधरों पर मुस्कराहट थी—"महाराष्ट्र अपने इतिहास और इतिहास के प्रातःस्मरणीय निर्माताओं की वीरत्वपूर्ण-परम्पराओं को भूला नहीं है महानुभाव !" स्वर में मुस्कान की तरलता स्पष्ट हो रही थी—"याद कीजिये, महाराष्ट्र तब शिशु था, जब भारतवर्ष की सारी ताकत समेट कर औरङ्गजेब, उसे पीस देने के निमित्त दक्षिण में जम गया था। मेरा खयाल है, निजामुल्मुल्क और औरङ्गजेब की योग्यता और शक्ति का अन्तर आप बखूबी समझते हैं—परन्तु महाराष्ट्र ने, उसकी इस हिमाकत का कितना बड़ा मूल्य चुकाने को उसे विवश कर दिया, आपकी इस राजनीतिक-नपुंसकता के बल पर नहीं—अपने अन्तस के वीरत्व के बल पर। औरङ्गजेब ने दक्षिण में अपनी मूर्खता का जो मूल्य चुकाया, उसी का परिणाम है कि आज, दिल्ली के तख्तेताऊस पर शासक नहीं, विदूषकों का आधिपत्य है। मुगल इतिहास में, ऐसी कोई मिसाल खोजे नहीं मिलेगी, जब किसी बादशाह को, अपने वजीरों ही नहीं, साधारण सूबेदारों के प्रभाव से भयभीत होकर, हत्या का षड्यन्त्र रचने में अपने तख्त की सुरक्षा दीख पड़ती हो।" पेशवा की भेदक-दृष्टि प्रतिनिधि के हृदय तक गड़ी जा रही थी। क्षणभर रुककर पुनः—"महाराज शिवाजी, सोये महाराष्ट्र को जागृति का सन्देश देते हुए, अपनी तलवार की धार पर एक महान् साम्राज्य की सारी शक्ति को तोलने का आत्म-विश्वास रखते थे; आज तो महाराष्ट्र का एक-एक बच्चा, हिन्दू-पद-पादशाही की

प्रज्वलन्त-भावना से उन्मत्त हो रहा है....निजाम जैसे तुच्छ व्यक्ति की योग्यता और शक्ति का, आप जैसे उत्तरदायी व्यक्ति को गुणगान करता देखकर, मुझे ही नहीं, सम्पूर्ण महाराष्ट्र को खेद होगा।"

"हूँ!" प्रतिनिधि का मुख तमतमा आया था—"महाराज, अनेक बार निवेदन कर चुका हूँ। पेशवा को मेरा अपमान करने का अधिकार नहीं। मुझे यह असह्य है...."

"मैंने आपका अपमान किया?"

"अवश्य!"

"यह आपका भ्रम है...." पेशवा का स्वर शान्त था।

"भ्रम नहीं है पेशवा!"

"महाराज, वीरता राजनीति की थोथी सीमा में बन्दिनी कभी नहीं रह सकती। वीरता राजनीति को वीरोचित रूप में ही स्वीकार करेगी। मैं माननीय प्रतिनिधि को प्रमाणस्वरूप अपने इतिहास की एक ज्वलन्त घटना का स्मरण कराना चाहूँगा। महाराज शिवाजी विवश होकर जब अफजल खाँ से मिलने गये थे, वह भी राजनीति ही थी; परन्तु उस राजनीति में निष्क्रियता नहीं थी—कायरता नहीं थी...."

"लगता है, पेशवा ने दरबार में आने के पूर्व अपने अतीत का पारायण कर लिया है!"

"नहीं, आप भूल कर रहे हैं। वीरता, अपने गौरवमय अतीत को धमनियों में प्रवाहित रखती है!" प्रतिनिधि का व्यंग्य तीखा था; परन्तु पेशवा उससे रञ्चमात्र भी विचिलित नहीं हुए थे।

राज्य-प्रतिनिधि की हठवादिता से दरबार में अशान्ति व्याप्त हो गयी। महाराज शाहू को अब यह स्थिति असह्य प्रतीत हो रही थी। परन्तु खुलकर प्रतिनिधि का विरोध उनसे करते नहीं बन रहा था। उन्होंने धीरे से अपनी आँखें प्रतिनिधि की ओर घुमायीं।

"राज्य-प्रतिनिधि को व्यक्तिगत-आक्षेपों में नहीं पड़ना चाहिये...."
मुश्किल से कह पाये वे।

"मैं आक्षेप नहीं करता!"

"मेरा विचार है, आपको शान्त-चित्त से पेशवा की बातें सुन लेनी चाहिये...."

"जो आज्ञा!" वह महाराज के हस्तक्षेप से विक्षिप्त-सा हो गया था—"अगर असुविधा हो तो मैं जाने की आज्ञा चाहूँगा।"

"क्यों?" महाराज की भवें तन गयीं।

"मैं बैठा हूँ महाराज!" कहकर वह तनिक उठँग कर बैठ गया।

"पेशवा!"

"महाराज...."

"तुम्हारी भविष्यत् योजनायें?"

"अधिकाधिक शक्ति-संचयन!"

"और?"

"रिक्त-कोष को भरा-पूरा रखने का प्रयत्न!—द्रव्य ही शक्ति की जननी है। मालवा और गुजरात के प्रान्त, सदैव से महाराष्ट्र के कोष को भरने में अपना योग देते रहे हैं महाराज!"

"हूँ!"

प्रतिनिधि अपने को रोक नहीं पाया—"गुजरात में क्या मराठों को 'सरदेशमुखी' आदि का अधिकार नहीं प्राप्त है? पेशवा का मन्तव्य यह है कि महाराष्ट्र में जिस 'सरदार-प्रथा' की व्यवस्था स्व० बालाजी विश्वनाथ ने की थी, उसका अन्त कर दिया जाय और तब महाराष्ट्र घरू झगड़ों की ज्वाला में भस्म होकर रह जाय!"

"नहीं!"

"तब?"

"मैं इससे इनकार नहीं करता कि गुजरात में सरदेशमुखी आदि

का अधिकार मराठों को प्राप्त हो चुका है। परन्तु गुजरात जैसे धन-धान्यपूर्ण क्षेत्र से महाराष्ट्र को और अधिक भी प्राप्त हो सकता है। गुजरात को महाराष्ट्र का एक अङ्ग बनाकर हमें जो सुदृढ़ता मिलेगी, वह हिन्दू-पद-पादशाही के लिए अत्यन्त महत्वशालिनी सिद्ध होगी। मैंने पहले ही निवेदन किया था कि महाराष्ट्र ने यह निश्चय कर लिया है कि उसका क्षेत्र संकुचित नहीं होगा। हिन्दू-पद-पादशाही की ध्वजा सम्पूर्ण भारत पर फहरा देने के दृढ़ निश्चय से महाराष्ट्र का अणु-अणु आकुल हो उठा है। विश्वास है, पवित्र भारतभूमि पर अब अधिक दिनों तक म्लेच्छ-शासन का कलङ्क नहीं रहेगा। महाराष्ट्र का बच्चा-बच्चा अपने खून से उस कलङ्क को धो डालेगा!"

"पेशवा का स्वप्न आकर्षक है, इसमें कोई सन्देह नहीं!" प्रतिनिधि के स्वर में विद्रूप था।

"वह मेरा स्वप्न नहीं है प्रतिनिधि महोदय!" पेशवा गरज उठे। राज्य-प्रतिनिधि की अड़ङ्गेबाजी अब उनके लिये असह्य हो उठी थी—"वह स्वप्न महाराष्ट्र-निर्माता का था, वह स्वप्न कोटि-कोटि हिन्दुओं का है। सदियों की गुलामी में जिस हिन्दुत्व को अत्याचारियों ने कुचल दिया था, वह अन्दर-ही-अन्दर सुलग रहा है और वह दिन दूर नहीं, जब वह भड़क उठेगा, ज्वालामुखी बनकर...."

"हिन्दुत्व!" प्रतिनिधि के स्वर में आश्चर्य था, व्यंग्य में डूबा हुआ आश्चर्य—"तभी तो हिन्दुत्व के सबसे समर्थ प्रतिनिधि राजपूतों को, बादशाही-गुलामी में पड़ा देखा जा रहा है...."

"वह उसके कुचले हुए रूप की बाह्य-विवशता है। यह भी सम्भव है कि उसमें कुछ कायरों की भी संख्या हो; परन्तु राजपूताना की भूमि को अपने लहू से रङ्ग देने वाले राजपूतों का बलिदान सुलग रहा है और उस धुँधवाती आग को ज्वालामुखी बनाने का कार्य महाराष्ट्र करेगा!"

"अपने अस्तित्व की बाजी लगाकर ?"

"उसके अस्तित्व की नींव, ऐसी महानात्मा के वीर हाथों द्वारा पड़ी है कि ऐसा सन्देह वही करेगा, जिसकी धमनियों के लहू में आत्माभिमान का उत्ताप नहीं !"

राज्य-प्रतिनिधि पेचोंताब खाता हुआ दाँतों से ओंठ काटता, मौन रह गया। पेशवा की तेजस्विता के समक्ष हर बार पराजित हो कर भी वह उस पराजय को इनकार करने की चेष्टा करता था।

पेशवा बाजीराव ने शीघ्र ही अपने को शान्त कर लिया। महाराज की ओर उन्मुख होकर सहज गाम्भीर्य से कहते हुए वे प्रतिनिधि की कुटिलता विस्मृत कर चुके थे—"अपनी विस्तार-नीति को सफल बनाने के लिये यह अत्यावश्यक है कि अपनी सीमा को शत्रुओं की आशङ्का से सुरक्षित कर लिया जाय। गुजरात और मालवा पर जब तक मुगलों के पैर जमें रहेंगे, तब तक हम...."

"परन्तु पेशवा, गुजरात पर चौथ और सरदेशमुखी का अधिकार पिलाजी गायकवाड़ और बान्दे को प्राप्त है। 'सरदार-प्रथा' के नियमानुसार वे राज्य को निश्चत धन और सहयोग सदैव देते रहे हैं !" शाहू महाराज ने बाजीराव को बीच ही में रोकते हुए अपनी शङ्का प्रकट की।

"मैं इसे खूब जानता हूँ महाराज !"

"महाराष्ट्र के द्वारा, उनके इस अधिकार में हस्तक्षेप करने से, वे असन्तुष्ट न हो जायेंगे !"

"हम उनके अधिकार में तनिक भी हस्तक्षेप नहीं करेंगे महाराज ! हम तो गुजरात में उनके अधिकार को और बल-प्रदान करेंगे। चौथ और सरदेशमुखी का उनका अधिकार, कभी भी मुगलों के द्वारा अस्वीकृत किया जा सकता है। अपने बन्धुओं का अहित करने की कल्पना भी मैं नहीं करता। यह अवश्य है कि हमारे महान्-स्वप्न की

सिद्धि में अगर बलिदान की आवश्यकता दीखेगी तो उससे पीछे क़दम न रखूँगा !"

"परन्तु गुजरात, मालवा और दक्षिणी प्रदेशों पर अपने अधिकार की घोषणा करनेवाला निजामुल्मुल्क जैसा धूर्त...."

"हमारे विजय-मार्ग की दीवार बनेगा महाराज !" पेशवा ने आवेगपूर्ण स्वर में उनका वाक्य पूर्ण किया—"निजाम की यह दीवार महाराष्ट्र की टक्कर से खड़ी नहीं रह पायेगी...."

"ऐसा ही हो मेरे वीर !" शाहू महाराज पेशवा की तेजस्विता में बह-से गये।

बाजीराव ने लम्बी साँस ली। प्रतिनिधि के मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

● ●

दरबार से अपने निवासस्थान की ओर वापस लौटता हुआ श्रीपति-राव, दुर्दमनीय विचार-सागर में गोते लगा रहा था। उसके लाख प्रयत्न के बावजूद, महाराष्ट्र पर पेशवा का प्रभाव छाता रहा। शाहू महाराज की दृष्टि में, अब भी राज्य-प्रतिनिधि के लिये आदर का भाव विद्यमान है, यह उससे छिपा नहीं; परन्तु पेशवा के तेज में वह आदर-भाव किसी भी क्षण बह जायगा—यह शङ्का भी कम बलवती न थी।

तब ?—मानस के तार-तार सिहर उठते। धड़कनें अस्वाभाविक रूप से तीव्र हो उठतीं।

अपनी विशाल अट्टालिका के बाहरी कक्ष में आकर वह गद्देदार तख्त पर मसनदों के सहारे उठँग गया। सेवकों ने तख्त के सामने जलपान की सामग्री ला रखी; परन्तु वह अन्तर-द्वन्द्व में उभ-चुभ

करता हुआ, बाजीराव के पराभव की संयोजना में ही संलग्न रहा, डूबा हुआ-सा।

प्रधान सेवक गङ्गाराव ने अपने स्वामी को इतना उद्विग्न कभी नहीं देखा था। बेचारा घबरा उठा—"स्वामी!"

श्रीपतराव चौंका—"कौन गङ्गाराव, क्या है?"

"स्वामी, जलपान!—आज दरबार में आपको विलम्ब भी बहुत हो गया...."

"हाँ!"

"आप कुछ अस्वस्थता का बोध कर रहे हैं क्या?" स्वर. चिन्ता से बोझिल था। वह श्रीपतराव की सेवा में दस वर्ष व्यतीत कर चुका था। अपनी सतर्क सेवाओं और कर्त्तव्यनिष्ठा के कारण, स्वामी का सेवक ही नहीं, उसके सुख-दुख का सहयोगी भी अपने को मानने लगा था। श्रीपतराव का विश्वास भो उसे ही प्राप्त था और इसे वह अपना सौभाग्य मानता था।

कक्ष में क्रमशः अन्धेरा अपना स्थान बनाने की चेष्टा कर रहा था। बहुमूल्य साज-सज्जा से युक्त कक्ष में सूर्यास्त हो जाने के उपरान्त भी प्रकाश न हो पाया था।

"गङ्गाराव!"

"स्वामी!"

"क्या सन्ध्या हो चुकी?"

गङ्गाराव चौंक पड़ा। कक्ष में अभी प्रकाश नहीं हुआ है, इसका अनुभव हुआ तो चञ्चल-सा हो उठा वह—"मेरी ही असावधानी से अभी तक प्रकाश....क्षमा करें...अभी...."

"मेरा मतलब वह नहीं गंगाराव!" उसने अत्यन्त गम्भीर स्वर में कहा—"आज जाने क्यों अन्धकार ही भला लगता है। हाँ, महारानी का कोई सन्देशा तो नहीं आया था?"

"नहीं, स्वामी !"

"अच्छा, अभी सतारा से अन्यत्र जाने का उनका विचार तो नहीं ?"

"मैं यह कैसे कहूँ स्वामी !"

"ओह, हाँ !" वह तनकर बैठ गया—"देखो, आस-पास एकान्त है न ?" गंगाराव ने सम्मति-सूचक सिर हिलाया तो—"तुम्हें आज रात ही निज़ामुल्मुल्क के पास एक आवश्यक कार्यवश जाना है...."

"निज़ामुल्मुल्क के पास !" गंगाराव का स्वर कंपित था—"परन्तु अब मेरा वहाँ निरापद पहुँच पाना असम्भव है स्वामी ! पेशवा के अनुचरों को मुझपर सन्देह हो गया है। सीमा पर वाले कैम्प में आजकल स्वयं चिमणाजी अप्पा उपस्थित हैं !" अन्धेरे के कारण यद्यपि श्रीपतराव, उसकी मुद्रा के भावों को देख नहीं सका, तथापि स्वर से यह समझते उसे देर न लगी कि वह बुरी तरह भयभीत हो उठा है।

"अप्पा उपस्थित है वहाँ ? कहते क्या हो गंगाराव !"

"हाँ, स्वामी !"

"तो ?"

"जैसी आपकी आज्ञा !—सेवक किसी भी सेवा के निमित्त सदैव तत्पर है। अगर सेवा में मेरे प्राणों की आहुति की भी आवश्यकता पड़ी तो प्रसन्नतापूर्वक....आप विश्वास रखें स्वामी !" कहते-कहते उसका स्वर भर्रा उठा। मन ही मन वह अत्यन्त भयभीत हो उठा था जरूर; मगर भय की छाया मुख पर न आये, इसके लिये भरसक प्रयत्न कर रहा था।

"हूँ, यह बाजी-बन्धु अपने को समझते क्या हैं ?" उसने जैसे अपने ही से प्रश्न किया।

"महाराष्ट्र का भाग्य-विधाता !" गंगाराव अब बहुत कुछ सम्हल

गया था। अपने स्वामी की भाव-भंगिमाओं के उहा-पोह को आँखों से टटोलता हुआ वह कहता रहा—"महाराष्ट्र की संपूर्ण सैन्य-शक्ति पर इस समय चिमणाजी अप्पा का अंकुश है और राजनीति की बागडोर...."

"बाजीराव !" प्रतिनिधि के मुख से निकल गया—"बालाजी विश्वनाथ का यह पुत्र साँप की तरह विषैला है...."

"स्वामी !"

"गङ्गाराव !" स्वर तीव्र था और गम्भीर भी—"तुम्हें जाना ही होगा....पेशवा के हाथों में महाराज का दिलोदिमाग....हूँ, यह हमारे लिये अत्यन्त शोचनीय बात है। महाराष्ट्र का वेतनभोगी बना रहना मुझे अब सह्य नहीं। पेशवा की उफनती-उमंगों को कुचलने के लिये बस, एक ही रास्ता है....एक ही रास्ता...." स्वर की तीव्रता का स्थान कम्पन ने और गम्भीरता का रुद्धता ने ले लिया था—"महाराष्ट्र बाजीराव के तुच्छ हाथों में रह नहीं सकेगा....बाजीराव के साथ ही उसका भी पतन होगा...."

"स्वामी, यह तो देश-द्रोह...." गङ्गा ने सभीत कहा।

"गङ्गा !" चीख पड़ा वह—"देश-भक्ति का उपदेश तुमसे सुनने का कांक्षी नहीं हूँ। तुम्हें इसी समय हैदराबाद की यात्रा करनी होगी। मार्ग की व्यवस्था हो जायगी...." और वह उठकर तेज़ कदमों से अन्दर चला गया। किंकर्तव्यविमूढ़-सा गंगाराव खड़ा गहरी-गहरी साँसें ले रहा था।

● ●

पूना के पेशवा-महल में चिमणाजी अप्पा गहरी-गहरी साँसें ले रहे थे। पेशवा के विशेष कक्ष में गद्दी पर बैठे थे वे। हाथों में,

सतारा से भेजा गया बाजीराव का पत्र था, जिसे वे तीन-चार बार पढ़ चुके हैं। मुख पर आवेश, चिन्ता और निश्चय की आभा उग-मिट रही थी। कक्ष में निस्तब्धता थी। द्वार पर पाँच दीर्घकाय भील जवान, मुस्तैदी से पहरा दे रहे थे। अप्पा ने पत्र को पुनः सामने कर लिया—

'प्रिय अप्पा,

कुछ विशेष कारणवश मुझे राजधानी में ही रहना पड़ रहा है। मेरी अनुपस्थिति में अनर्थ की संभावना प्रत्यक्ष है। निजाम और राज्य-प्रतिनिधि की साँठ-गाँठ वाली खबर पर हमें अविश्वास नहीं करना चाहिये। मुझे पता लगा है, दोनों दुष्ट मिलकर निकट भविष्य में ही महाराष्ट्र के समक्ष कोई भयंकर समस्या खड़ी कर देंगे, इस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं महाराज सब-कुछ जानते हुए भी प्रतिनिधि को असंतुष्ट करने का साहस नहीं कर पाते। उनकी ऐसी निष्क्रियता हमारे लिये चिन्तनीय तो है परन्तु इससे हमें अपने महान् ध्येय से रञ्चमात्र भी विच-लित नहीं होना है। महाराज पर अपना अधिकाधिक प्रभाव होते हुए भी हमें हर क़दम फूँककर रखना है।

हाँ, कल अनायास ही महारानी ताराबाई के कूटनी-तिक सलाहकार मेहता से भेंट हो गयी। मुझे देखकर शैतान, सहम उठा। मेरा विचार है, हमारी ओर से निश्चि-न्तता प्राप्त करने के लिये निज़ामुल्मुल्क महारानी और संभाजी से हाथ मिलायेगा—हमारा कलंकी राज्य-प्रतिनिधि, व्यक्तिगत स्वार्थ के वशीभूत होकर सहयोग देगा, यह भी निश्चित है। उस स्थित का हमें डँटकर मुकाबला करना है

श्रौर मुझे विश्वास है, आवश्यकता पड़ने पर महाराष्ट्र का कण-कण देशाभिमानी मिलेगा।

अपने गुप्तचरों को सीमा पर विशेष सावधानी का आदेश दो। राज्य से कोई भी संदिग्ध व्यक्ति बाहर न जा सके, इस व्यवस्था को तुम अभी, इसी समय अपने हाथों सम्पन्न करने में लग जाओ। श्रीपतिराव के विशेष सेवक गंगाराव की याद तुम्हें होगी। वह निज़ाम और अपने मालिक की कड़ी को जोड़ने का कार्य कर रहा है। सावधान।

एक बात और—

बुन्देलखण्ड को क्या स्थिति है?—इसकी सूचना तुम्हें बराबर मिलती रहे—इसे याद रखो। बस।

तुम्हारा—राव'

पास ही रखे खरीते में पत्र को रखकर चिमणाजी ने अपनी आँखें द्वार की ओर घुमाईं तो एक मराठा-सैनिक को झाँकता पाया।

"क्या है, शङ्कर!"

"श्रीमन् पेशवा का दूसरा दूत!"

"ओह, बात क्या है?" सुनकर वे अस्थिर-से हो गये—"अभी-अभी तो मैं उनका पत्र पढ़ रहा था और....उसे शीघ्र भेज दो तुम...." कहकर उन्होंने, पास ही दीवार से लटकती अपनी तलवार की ओर एक बहकी दृष्टि डाली। राजनीतिक उलझनों से उन्हें स्वभावतः बड़ी अरुचि थी। समस्या का समाधान उन्हें दूतों के आवागमन पर नहीं, तलवार की धार पर सोचना युक्तिसंगत प्रतीत होता था। योग्य पिता से उन्हें विरासत रूप में मात्र एक ही वस्तु मिली थी और वह थी, वीरता। स्व० बालाजी विश्वनाथ को अपने छोटे पुत्र के मनोभावों का संभवतः पहले ही से भास हो गया था। उन्होंने जहाँ बाजीराव को, अधिकाधिक अपने निकट रखकर

राजनीति और वीरत्व—दोनों में पारंगत किया, वहाँ अप्पा ने स्वयं अपनी इच्छानुसार रणक्षेत्रों में तलवारों की झनझनाहट का संगीत सुना। मराठा-घुड़सवारों के बीच—अपनी दुस्साहसिक-वीरता के कारण उन्होंने सर्वोपरि महत्व प्राप्त कर लिया था। उनका धर्म-प्राण अन्तस, अपने पवित्र देश पर तुर्कों की काली छाया का अनुभव कर विदग्ध होता रहता। मुसलमानों को देखते ही धमनियों में लहू उबल उठता, आँखों से लपटें फूट पड़तीं और ऐसे समय बहुधा वे उचित-अनुचित का ज्ञान भी भूल जाया करते थे। दूत ने झुककर उनका अभिवादन किया; परन्तु उन्हें जैसे अभास ही न हो पाया। दूत ने कमर में अत्यन्त गुप्तरूप से रखे खरीते को चिमणाजी के पास, गद्दी पर रखा तो वे चौंक पड़े।

"ओह, तुम हो, पूज्य राव स्वस्थ सानन्द तो हैं?" जल्दी से पूछ बैठे।

"जी हाँ!" दूत ने विनम्र भाव से कहा—"मेरे लिये और कोई आज्ञा?"

"नहीं, जाओ, विश्राम करो!"

दूत अभिवादन के पश्चात् पीछे हटता हुआ बाहर चला गया। उन्होंने आतुर भाव से खरीते की मुहर तोड़ी। तीन-चार पंक्तियों का छोटा-सा पत्र था।

'मेरा अनुमान सत्य निकला। संभाजी, संभवतः महाराष्ट्र की सीमा पार करके निजाम के राज्य में पहुँच गये। तुम्हारी सन्नद्धता व्यर्थ गयी। खैर, अच्छा ही हुआ। हमारी महत्वाकांक्षा के मार्ग में पड़ने वाले, सबसे महत्वशाली अवरोध निज़ाम की शक्ति तोलने का समय अत्यन्त निकट समझो। राजधानी का वातावरण स्फोटक हो गया है। सावधान रहो।'

पढ़कर उनके नथुने से एक दीर्घ निश्वास निकल गया।

"पूज्य राव का कोई समाचार है क्या चाचा जी ?"

सामने नाना खड़ा था—पेशवा बाजीराव का युवा पुत्र। सारा शरीर साँचे में ढला हुआ-सा, सैनिक-वेशभूषा, मुख पर स्वस्थ-तारुण्य की तेजोमय आभा और रोम-रोम से फूटता हुआ अल्हड़-वीरत्व—चिमणा जी, क्षणभर विमुग्ध-से नाना की ओर निहारते रह गये।

"चाचा जी !"

"आओ, बेटा !"

नाना पास ही पड़े एक दूसरे आसन पर बैठ गया—"पूज्य राव का पत्र है न चाचाजी !"

"हाँ !"

"क्या ?"

"धूर्त निजाम का जाल महाराष्ट्र को फाँसने में लग चुका है। मराठा-घुड़सवारों और मुग़ल-सल्तनत की शक्ति बटोर कर दक्षिण में जम गये निज़ामुल्मुल्क की बल-परीक्षा...." और उन्होंने बाजीराव का पत्र उसकी ओर बढ़ा दिया। नाना पत्र को एक साँस में पढ़ गया।

"चाचाजी !"

"बेटा !"

"संभाजी—ओह, छत्रपति शिवाजी के वंशज—स्वार्थ की आँधी में बहते हुए महाराष्ट्र के पतन के अभिलाषी हो सकेंगे, इसपर आपको विश्वास होता है ?"

"होता है, बेटा !"

"पर...."

"सब कुछ संभव है, नाना !" दीर्घ उच्छ्वास के साथ, चिमणाजी की दृष्टि सामने दीवार से लगी—छत्रपति शिवाजी, संभाजी (प्रथम), राजाराम और शाहू जी की तस्वीरों पर केन्द्रित हो

गयी—"स्व० राजाराम की आत्मा को अपने पुत्र के इस कलंकी-स्वरूप से जो आघात लगा होगा, वह निस्सन्देह कल्पनातीत है। छत्रपति शिवाजी के देहावसान के उपरान्त संभाजी का बलिदान—महाराष्ट्र के अस्तित्व के लिये ठोकर थी, एक ऐसी ठोकर, जिससे वह सम्हल न सका....महाराष्ट्र-निर्माता का महान् स्वप्न टूट गया था—कम से कम मुग़ल-सम्राट औरङ्गज़ेब ने तो यही सोचा। परन्तु स्व० राजाराम के नेतृत्व में जब शीघ्र ही महाराष्ट्र का टूटा हुआ अस्तित्व पुनः मुग़लों की नींद हराम करने को उठ पड़ा था...." भावावेग में उनका सैनिक-हृदय पिघल-सा गया।

"चाचाजी!"

"बेटा!—महाराष्ट्र वीर-प्रसूता रही है मगर अब इस कथन को संभाजी ने अपनी कायरता से कलंकित कर दिया है।"

"जाने दें, चाचाजी!" नाना को अपने शेरदिल चाचा के स्वर में आज पहली बार इतनी आकुलता दीखी थी; सो उसने वार्ता का रुख पलटने के निमित्त कहा—"आज बुन्देलखण्ड से हमारा एक गुप्तचर आया है...."

"हूँ!"

"मुग़लों की शक्ति से लोहा बजाते-बजाते संभवतः अब वृद्ध महाराज छत्रसाल थकने-से लगे हैं...."

"मुझे मालूम है!"

"तो क्या हम उन्हें सहायता नहीं दे सकते?"

चिमणाजी के अधर अनायास ही, नाना के प्रश्न पर स्मिति से खिल उठे—"अभी वह समय नहीं आया है बेटा!" फिर भी स्वर में गाम्भीर्य की मात्रा आवश्यकता से अधिक थी।

"क्यों?" नाना का स्वर उद्दीप्त हो आया—"महाराज छत्रसाल छत्रपति शिवाजी को अपना गुरु मानते थे। उन्हीं के चरण-चिह्नों को

अवलम्ब मानकर वे, साधन के अभावों की उपेक्षा करते हुए, अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा में संलग्न हैं। हमारा कर्तव्य होना चाहिये...."

"ठीक है, ठीक है बेटा!" कहते हुए चिमणाजी उठ पड़े। नाना के तर्कों के समक्ष उन्हें निरुत्तर-सा होना पड़ रहा था—"तुम्हारा महाराष्ट्र, अभी अपने पैरों पर खड़ा ही हुआ है कि उसे पुनः भूमिसात करने के प्रयत्न हो रहे हैं। आओ, चलो, सेना की कवायद का समय हो चुका है...."

नाना को जैसे अनिच्छापूर्वक उनका अनुसरण करना पड़ा। उनके बाहर आते ही द्वार-रक्षकों ने कक्ष का द्वार बन्द कर दिया।

सन्ध्या झुकी आ रही थी।

• •

सतारा—महाराष्ट्र की राजधानी, शत-शत हिन्दू-प्राणों की आशा का केन्द्रबिन्दु—सतारा, अपने वैभव और सौन्दर्य के लिये, सम्पूर्ण भारत में ख्यात था। सदियों से मुसलमानी-सल्तनत के निर्मम-अत्याचारों से संत्रस्त-पददलित हिन्दू-धर्म महाराष्ट्र की ओर सकरुण निहार रहा था। इसका आभास सतारा में, देश के कोने-कोने से आने वाले आर्य-संस्कृति के उद्भट विद्वानों के जमाव से ही जाता था। काशी, मथुरा और प्रयाग के अनेक धर्माचार्यों ने तो अपना स्थायी-निवास ही सतारा में बना लिया था। राज्य की ओर से उनका समुचित सम्मान भी होता था। राजपूताना के पराभव के उपरान्त, हिन्दुत्व की ज्वालामयी-भावनायें, महाराष्ट्र में पल्लवित हो रही थीं।

जुलाई १७२७ की सूनी सन्ध्या। सतारा राजमहल, कन्दीलों के प्रकाश में जगमग-जगमग कर रहा था। आकाश मेघाच्छन्न था।

महाराज शाहू, अपने कतिपय विश्वासी-सलाहकारों एवं उच्च

राज-कर्मचारियों से, आवश्यकीय-दरबार के विशाल-कक्ष में किसी गम्भीर-समस्या पर विचार-विनिमय कर रहे थे। छत से लटकते भारी-भारी कन्दीलों और चन्दन की चौकियों पर रखे चाँदी के शमादानों ने कक्ष को आलोकित कर रखा था। बाहर पचासों मराठा-सैनिक नंगी तलवारें लिये सन्नद्ध खड़े थे।

पेशवा बाजीराव ने देखा, राज्य-प्रतिनिधि श्रीपतराव झुका हुआ-सा कुछ समझाने की चेष्टा कर रहा है और शाहू महाराज का मुख प्रतिक्षण आन्तरिक उद्वेग से म्लान होता जा रहा है।

आँखों में खून भर आया। दायें हाथ की पाँचों उँगलियाँ, 'प्रसादिनी' की मूठ पर जम गयीं।

"पेशवा !"

"आज्ञा, महाराज !"

"हमारे समक्ष निस्सन्देह बड़ी विकट समस्या आ पड़ी है। निज़ाम की धूर्तता ने हमें विमूढ़ कर दिया है...." उनका स्वर काँप रहा था—"लग रहा है, महाराष्ट्र-सूर्य, अपने ही हाथों अस्त...."

"नहीं !" बाजीराव की तड़प, बाहर से आनेवाली बादलों की गड़गड़ाहट में घुल-सी गयी—"जब तक हमारे हाथों में तलवार पकड़ने की शक्ति है, संसार की कोई शक्ति महाराष्ट्र-सूर्य पर अपनी कुटिल-छाया न डाल सकेगी। निज़ाम ने हिमाकत की है, एक ऐसी हिमाकत, जैसी बारूद के भंडार को चिनगारी छेड़कर करती है !" वे तनकर खड़े हो गये। नसों की तड़क ने सभा को स्तब्ध बना दिया।

"पेशवा...." शाहू महाराज चकित, विमूढ़-से उनकी ओर निहारते रहे—"संभाजी को अपने हाथों में करने के बाद, निज़ाम ने अपनी ताकत...."

"आप को महाराष्ट्र के स्वाभिमान पर विश्वास नहीं, जिसका मुझे आन्तरिक दुख है। आप के सुयोग्य-सलाहकार ने मेरा खयाल है, तुच्छ

निजाम की शरण में जाने की राय दी है। मुझे मालूम है, ऐसी राय उन्होंने आप को क्यों दी ....'' कहकर उन्होंने आग्नेय दृष्टि से प्रतिनिधि की ओर देखा।

शाहू अचकचाये और प्रतिनिधि अवसन्न-सा रह गया।

बाजीराव ने अपने आवेश को शीघ्र ही संयत कर लिया—''सम्भाजी को अपने पास बुलाकर वह धूर्त सोचता है, महाराष्ट्र का उबलता लहू शान्त हो जायगा—ठण्डा। यह उसका भ्रम है, इसे भी वह शीघ्र ही समझेगा। महाराष्ट्र को अपने वीर-पुत्रों के आत्माभिमान का गर्व था और है; परन्तु उसे अब अपने कुपुत्रों पर उतनी ही लज्जा भी होगी।'' कहते-कहते उनका तेजस्वी मुख-मण्डल सुर्ख हो उठा—''उसने घरू फूट डालकर आपको अपने दरबार में बुलाया है, इसलिए कि वह फैसला करे कि महाराष्ट्र का अधिकारी कौन है?—इस घोर अपमान को सहन कर लेना सम्भव नहीं महाराज....''

''तब?''

''उसे यह मालूम होना अत्यावश्यक है कि मराठे अपने अपमान के उत्तर में केवल प्रतिशोध लेते हैं और उस प्रतिशोध का मूल्य साधारण नहीं होता!''

''राजनीति के लिये सब सम्भव है, पेशवा!'' राज्य-प्रतिनिधि का स्वर विद्वेष की चिनगारियाँ छिटका रहा था—''शायद इसे आप भूल गये हैं कि किसी समय महाराज शिवाजी को भी मुगल-सल्तनत की शरण में आगरा जाना पड़ा था....''

''मुझे खूब याद है। राजनीति का महत्व वीरत्व के इङ्गित पर ही स्थिर रहता है। मिर्ज़ा राजा जयसिंह और इस निजाम में कितना बड़ा अन्तराल है, इसे आप स्वयं ही भूल रहे हैं। आगरा में जब महाराज शिवाजी का अपमान करने की चेष्टा की गयी तो उन्हें आलमगीर की अपरमित-शक्ति रोकने में असमर्थ सिद्ध हुई। याद कीजिये, महाराज

शिवाजी के उस अपमान से महाराष्ट्र ज्वालामुखी बनकर फट पड़ा और जिसके उत्ताप से आलमगीर का सारा जीवन ही नहीं, अपितु मुगलिया-इमारत की एक-एक ईंट झुलस कर रह गई...."

सभा में जैसे स्फोट हुआ। शाहू महाराज के म्लान मुख पर चमक थी, राज्य-प्रतिनिधि के मुख पर झुँझलाहट और क्रोध की रमक। बाजीराव ने अपनी 'प्रसादिनी' को झटके के साथ नग्न करते हुए उसी तड़पते हुए-से स्वर में हुंकार की—"निजामुल्मुल्क के इस अपमानका प्रस्ताव को महाराष्ट्र एक धृष्ट-चुनौती के रूप में ग्रहण करेगा महाराज !"

"पेशवा !"

"मैं सत्य कहता हूँ, निजामुल्मुल्क को महाराष्ट्र के प्रति जो भ्रम हो गया है, उसे पददलित करने के निमित्त महाराष्ट्र का बच्चा-बच्चा अपने को होम करने में, गर्व का अनुभव करेगा। महाराष्ट्र के राजा का अपमान कभी भी व्यक्तिगत नहीं होता, इसे मराठा-घुड़सवारों का शौर्य प्रमाणित करेगा—आप मुझे आज्ञा दें !" उनके सुदृढ़ पैरों का कम्पन स्पष्ट कह रहा था कि इस समय अन्तस का एक-एक कोना ज्वालामयी-हुँकारों से प्रतिध्वनित हो उठा है।

राज्य-प्रतिनिधि और उसके अनुयायियों के मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, जब कि अन्य मराठा सरदारों की उत्तेजना बाँध तुड़ाकर बह जाना चाहती थी। महाराज शाहू का हृदय, बाजीराव के वीरत्व-तेज से बिगलित हो उठा—"मुझे तुम पर विश्वास है पेशवा...." इससे अधिक वे कह पाने में असमर्थ सिद्ध हुए।

"महाराज, महाराज...." प्रतिनिधि का व्याकुल स्वर था—"महाराष्ट्र का अस्तित्व सङ्कट में पड़ जायगा...."

"नहीं, वह सदैव प्रज्वलन्त रहेगा !" महाराज के पहले ही बाजीराव तड़प उठे।

"महाराज, हम....हम....युद्ध की विभीषिका में भस्म हो जायेंगे...." प्रतिनिधि पागल-सा हो रहा था—"पेशवा ने हमारे सुख-सपनों को धूल-धूसरित करने का निश्चय कर लिया है...."

"वीरों के लिये धूल, विजय का सन्देश होती है महानुभाव !" बाजीराव के स्वर में स्थिरता थी और अधरों पर व्यंग्यमयी मुस्कान की लहर। प्रतिनिधि ने घूर कर देखा, लगा कि जैसे अगर सम्भव होता तो उनके शरीर का एक ही ग्रास बना डालता। अत्यन्त कातर भाव से उसने महाराज की ओर देखा, जो विह्वल-भाव से आगे बढ़ आये बाजीराव को अपनी भुजाओं में समेट लेने को आतुर प्रतीत हो रहे थे।

● ●

चिमणाजी अप्पा, अभी-अभी सतारा से आये पत्र-वाहक गुप्तचर को विश्राम करने का आदेश देकर पेशवा के मन्त्रणा-कक्ष में आये हैं। हाथ के पत्र को उन्होंने पुनः अपने सामने कर लिया। पेशवा बाजीराव ने लिखा था—.

'मेरे पिछले पत्र से तुम्हें विदित हुआ होगा कि सम्भाजी को अपने हाथों में करने के पश्चात् धूर्त्त निजामुल्मुल्क ने, महाराज के समक्ष प्रस्ताव रखा है कि उन्हें, उसके दरबार में उपस्थित होकर अपने और सम्भाजी के महाराष्ट्राधिकार को प्रमाणित करना होगा।....

राज्य-प्रतिनिधि का वास्तविक रूप धीरे-धीरे स्वयं स्पष्ट हो गया है। हमारे विश्वस्त गुप्तचरों ने पता लगाया है कि इस षड्यन्त्र में प्रतिनिधि का महत्वपूर्ण हाथ है। निजाम से बरार में एक बड़ी जागीर और कुछ अन्य उपहार का निश्चय कराके वह, अपने प्रभाव

से महाराज से इस निकृष्ट-प्रस्ताव को स्वीकार कराने षड्यन्त्र किया था....परन्तु मैंने उसकी सारी योजनाओं पर पानी फेर दिया है....

अब हमें निजाम को इस हिमाकत की सजा देनी है। अपने मार्ग के इस रोड़े से बल-परीक्षा कर लेने का चिर-प्रतीक्षित अवसर अन्ततः आ ही गया।

मैं शीघ्रातिशीघ्र पूना पहुँच रहा हूँ। तुम अपनी प्रासव्य सेना को बिल्कुल तैयार करने में पूरी शक्ति और तत्परता से लग जाओ। इतना ध्यान रहे, निजामुल्मुल्क अपने समय का सर्वश्रेष्ठ मुसलमान-सेनापति माना जाता है और इस समय उसकी सेना में, मुगल-सल्तनत के चुने हुए सैनिक और सुदृढ़ तोपखाने के अतिरिक्त मराठा-घुड़सवारों की अपनी निजी सेना के साथ सम्भाजी भी होंगे। हमारी यह कठिन परीक्षा-घड़ी है प्रिय अप्पा !

और हाँ, अपनी योजनाओं पर पानी फिरता देख, प्रतिनिधि चुप न रहेगा....महाराज, उस जैसे तुच्छ से न जाने क्यों, अब भी कम प्रभावित नहीं। शेष मिलने पर....

• •

हैदराबाद में निजाम का दरबार, दिल्ली-दरबार का प्रतिरूप ही प्रतीत होता था। दिल्ली की उलझनों, षड्यन्त्रों से परेशान होकर निजाम ने जब से दक्षिण को अपनी आशाओं का केन्द्र बनाया था, तब से हैदराबाद का रूप ही बदल गया था। उसके नाम के आगे अब भी, 'सूबेदारी' का विशेषण जुड़ा था; परन्तु वह अपने को हैदराबाद ही नहीं, मालवा-गुजरात तक का 'बादशाह' ही समझता। युग ताज का नहीं, शक्ति का है—इसे वह खूब समझता था। अपने पुत्र नासिरजङ्ग की देख-देख में उसने सेना की संख्या ही नहीं

बढ़ाई थी, उसकी सुयोग्यता पर भी कड़ी दृष्टि रखी थी। उसके सुदृढ़ तोपखाने में अधिकांश फ्रेंच तोपची थे, जिन पर उसे फ़क्र था....

महाराष्ट्र में, नये पेशवा के रूप में, जिस व्यक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, उसने निजामुल्मुल्क को विचलित कर दिया था। बाजीराव की आकाशचुम्बी महात्वाकांक्षा ने उसकी नींद छीन ली थी। इस तरुण मराठा-सेनानायक की वीरता का वह बहुत पहले से ही कायल था। बालाजी विश्वनाथ, जिस समय सैय्यद-बन्धुओं के माध्यम से, दिल्ली में डँटे मुगल-सल्तनत और महाराष्ट्र के बीच समझौता-वार्ता कर रहे थे, उस समय बाजीराव भी उनके साथ ही था। उसी समय निजाम को, उसे निकट से जानने का अवसर मिला था।

अपनी सजीली भव्य-दाढ़ी पर धीरे-धीरे मुश्क का इत्र मलता और सोने की निगाली से रह-रहकर खुशबूदार खमीरे का धुआँ खींचता हुआ वह विचारमग्न-सा पलङ्ग पर बैठा था। कमरे में झाड़ों की रङ्गीन-रोशनी ने अजब नूर बरपा कर दिया था। नीचे फर्श पर, ईरानी कालीनों पर तीन तातारी-बाँदियाँ बैठी, एक दूसरे की ओर विचित्र भङ्गिमा से निहार रही थीं—मौन पर तत्पर!

यही निजामुल्मुल्क का खासगाह था।

"नूरी!"

"हुजूर!" एक ने झुककर कोर्निश करते हुए कहा—"लगता है, आज आप ख़्वाबगाह में तशरीफ न ले चलेंगे। रात आधी से ज्यादा बीत चली है, आलमपनाह!"

निजामुल्मुल्क ने निगाली एक ओर करते हुए गम्भीर स्वर में पूछा—"इसकी फिक्र तुम्हें करने की जरूरत?" आँखें शराब के मद से सुर्ख हो रही थीं। बेचारी नूरी सचमुच सहम गयी। सहसा उसे कुछ ज़वाब न बन पड़ा।

"हुजूर...."

"हूँ !" निज़ाम ने तड़पकर कहा—"तुम सब जा सकती हो ! नूरी, तुम नहीं जाओगी...." सुनते ही अन्य दोनों झटपट उठकर, दरवाजे का मखमली परदा हटाती हुई, बाहर हो रहीं।

"हुजूर !"

"उस मराठा-शाहजादे के तवज्जह का काम तुम्हें सौंपा गया था न ? ठीक है, ठीक है....तुम अपने उस काम को बखूबी अंजाम दोगी, मुझे पूरा भरोसा है नूरी !"

"हुजूर, नाचीज़ के लिये, आपका यह नज़रेकरम फ़ख्र का बायस है...." नूरी का हुस्न जैसे अपने उस 'फ़ख्र' से निहाल हो उठा—"हुजूर, इन मराठों का दिल, रेगिस्तानी-बीरानियत में पगा होता है। उस छोकरे शहजादे को मेरी 'कोशिशें' खुदा झूठ न बोलावे, कोई खास...."

निजामुल्मुल्क की मनःस्थिति कुछ ऐसी हो रही थी कि नूरी की यह बकवास बहुत नागवार लगी। उसने उसे बीच ही में रोकते हुए हुकूमती-लहज़े में कहा—"बस-बस, अब तुम्हें इजाजत है। मैं तखलिया चाहता हूँ...."

"जो हुक्म !" नूरी ने झुककर कोर्निश की और जल्दी से बाहर चली गई। उसके जाने के बाद, निजामुल्मुल्क गावतकिये के सहारे लेट गया। रह-रहकर फूट पड़ने वाले निश्वासों की ध्वनि, उसके उद्वेग का परिचय दे रही थी।

बगल में रखे खरीते से उसने एक पत्र निकाला और तब आँखें उसकी इबारतों पर दौड़ने लगीं। पत्र सतारा से आया था। महाराष्ट्र के राज्य-प्रतिनिधि के खास मुन्शी का लिखा हुआ—

"....पेशवा के सामने मेरी एक भी नहीं चल पाती। जाने उस मरदूद ने महाराज पर कौन-सा ऐसा जादू कर दिया है कि मेरी बातें सुन ली जाती हैं, बस। अपने वादे के मुताबिक चुने हुए मराठा-

घुड़सवारों की छोटी-सी सेना के साथ, सम्भाजी को आप तक पहुँचने का बन्दोबस्त कर दिया है। मत पूछिये, इस काम में मुझे क्या कुछ नहीं करना पड़ा। चिमणाजी के सीमा-रक्षक सैनिकों को मिलाने में, आपके भेजे सारे रुपये खर्च हो गये। खुद मुझे अपने पास से सैकड़ों मुहरें खर्च करनी पड़ी हैं। अब आप शाहू महाराज के पास पैगाम भेजने में देर न करें।

पेशवा बाजीराव से डरने की कोई जरूरत नहीं। आपके सामने अभी वह बच्चा ही तो है। हाँ, मराठा-सरदारों पर उसने अपनी धाक जमा ली है—पर सम्भाजी को आगे करके बड़ी आसानी से उसके मन्सूबों को मरोड़ फेंकने में शायद कोई कठिनाई न होगी।

वैसे मेरी पूरी कोशिश होगी कि ऐसे ही सारा मामला तय हो जाय।....

इसके आगे उसने अपने 'स्वार्थ' की चर्चा की थी। जिसमें शायद निजाम को कोई दिलचस्पी न थी; तभी तो पत्र को पुनः खरीते में रख दिया गया।

बाजीराव !....

निजामुल्मुल्क की पलकें ढँप गयीं—मराठों की युद्ध-प्रणाली का उसने अनुभव किया था और उनकी विद्युत-सी तीव्रता से पूर्णतया भिज्ञ भी था वह।

शिवाजी और औरङ्गजेब की कहानी उसने सुन रखी थी। मराठा-घुड़सवारों ने जब, मुगल-सल्तनत की इतनी बड़ी ताकत को, घुटना टेकने को मजबूर कर दिया था....ओह, अब तो पासा ही पलट गया है!—आज के मुगल बादशाहों—(हाँ, बादशाहों—क्योंकि आज जो तख्ते-ताउस पर बैठा हुआ है, वह कल ही ज़मींदोज-कैदखानों की सड़न में लोटता नज़र आ सकता है!—इसका उसे व्यक्तिगत अनुभव

था।) में न तो अपने पूर्वजों के खून की गर्मी है; न ही उनका कोई व्यक्तित्व। और शिवाजी के समय का महाराष्ट्र आज....

बाहर से किसी की पदचाप सुन पड़ी। विचार शृङ्खला टूट गई। उसने अपनी आँखें—विचारों के समुद्र में डूबी हुई-सी आँखें, दरवाजे पर पड़े मोटे किमखाब के पर्दे पर टिका दीं।

दूसरे ही क्षण—"हुजूर, शाहजादा सलामत क़दमबोशी के लिये...." ईरानी द्वारा-रक्षक की आवाज आयी।

"इजाजत है!"

पर्दा हिला और अपनी सिपहसालारी वेश-भूषा में नासिरजङ्ग आदाब बजाता दीख पड़ा।

"अब्बा हुजूर, अभी तक ख़्वाबगाह में तशरीफ न...."

"आओ, नासिर!" निजामुल्मुल्क नें उसकी बात बीच ही में काटते हुए पास की पड़ी चाँदी की कुर्सी की ओर इशारा किया—"कोई नयी खबर?"

नासिर कुर्सी पर बैठ गया—"सतारा से हमारे आदमी वापस आ गये हैं...."

"अच्छा, शाहू ने क्या तय किया?" उसका स्वर अत्यन्त गम्भीर था।

"पेशवा लड़ने पर तुला हुआ है....हमारे आदमियों को शाहू ने कोई जवाब नहीं दिया....इतना ही नहीं, रास्ते में मराठों ने उन्हें बुरी तरह लूट भी लिया....बेचारे मुश्किल से अपनी जानें बचाकर भाग सके!"

"हूँ!"

"अब्बा हुजूर!"

"नासिर, चींटी को जब पर निकल आते हैं तो उसकी कज़ा बहुत पास रहती है...." और वह तनकर बैठ गया—"मुझसे टकराने का हौसला, इन शैतान मराठों को बहुत मँहगा पड़ेगा। बालाजी विश्वनाथ

के उस लौंडे को इसका अहसास बहुत जल्द हो जायगा...." कहते-कहते उसकी आँखें, भूखे और घायल चीते की जलती हुई आँखों-सी चमक उठीं। अपने पिता की योग्यताओं से नासिर अनभिज्ञ नहीं था; सो दर्पोक्ति का उस पर प्रभाव भी पड़ा। उसका युवा-हृदय तीव्रगति से धड़कने लगा और धड़कनें, उसके मुखपर उत्तेजना की लाली बनकर झलक उठीं।

"अब्बा हुजूर!"

"कहो!"

"क्या हमें सीधे पूना पर हमला कर देना चाहिये?"

"पूना पर?"

"हाँ। एकाएक हमारी पूरी ताकत का बोझ पूना सम्हाल न सकेगा। बाजीराव को उसी के घर में कुचल डालना, हमारी तौहीन का मुकम्मल बदला होगा, ऐसा मेरा अपना ख़याल है!"

निजाम के अधरों पर मुस्कराहट तिर उठी—"तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें नहीं निकलनी चाहियें नासिर! अच्छा, अब मैं सोऊँगा...." कहकर उसने उठने का उपक्रम किया।

जोश में आकर बहकने पर पिता से 'चेतावनी' पाकर नासिर हतप्रभ-सा हो गया।

उसी समय कहीं दूर से बन्दूक छूटने का-सा धड़ाका हुआ। निजाम ने चौंककर नासिर की ओर देखा। नासिर ने चटपट कहा—"बाहर बादल गरज रहे हैं, अब्बा हुजूर!" और वह जल्दी से आदाब बजाता हुआ बाहर चला गया। निजाम उसे जाता हुआ देखकर जाने क्यों, खुलकर हँस पड़ा।

आकाश मदोन्मत्त बादलों के 'कोलाहलपूर्ण संघर्ष' से जैसे फटा पड़ रहा था।

● ●

पूना में उत्साह का सागर उमड़ रहा था। सतारा से बाजीराव लौट आये थे। मराठा सेनापतियों के आगमन से, महाराष्ट्र-सेना में उत्तेजना का स्फोट हो रहा था।

पेशवा बाजीराव अपने आपे में नहीं थे। उमंगें बाँध तुड़ा रही थीं। पेशवा-पद प्राप्त होने के सातवें वर्ष में अन्ततः वह अवसर आ ही गया, जब महत्वाकांक्षा के लम्बे मार्ग में, सबसे बड़े रोड़े को कुचल देने को—बस, उनके संकेत की आवश्यकता थी। अपने वीर और स्नेही नायक की अध्यक्षता में, विगत सात वर्षों से मराठों की विशृङ्खल-शक्ति, एकत्व की ज्वालामयी भावनाओं की गरिमा से ज्वलन्त हो गयी थी। बाजीराव ने, अपने महत्वाकांक्षी-हृदय का कपाट खोलकर 'सरदार-मण्डली' का स्वागत किया था। और उस वीरत्वपूर्ण-उन्मेष में, कुछ ऐसा अधिकार था, कुछ ऐसा बल था कि आपसी-वैमनस्य, हिन्दू-पद-पादशाही की महान् कल्पना में घुल गया। व्यक्तिगत स्वार्थ, देशाभिमान की ज्वाला में भस्म हो गया। सोया हुआ-सा सह्यमाद्री जाग उठा था, उसकी उत्तुंग-शृंखलायें जैसे झूम-झूमकर गा उठी थीं—हिन्दू-पद-पादशाही की स्थापना का गीत! जन-जन के प्राणों में पेशवा का आह्वान-शब्द गूँज उठा था—'अरे बघतों काय! चला जोराने चाल करू न!—हिन्दू-पद-पाद-पादशाहीस आतों उशीर काय!'*

महाराष्ट्र की राजधानी सतारा ने जैसे अपना सारा ममत्व वीरत्व-राग से गुंजित पूना के चरणों पर निछावर कर दिया था।

---

* अरे, देखते क्या हो! शक्तिशाली बनो। हिन्दू-पद-पादशाही की स्थापना के लिये अब क्या देर है?

महाराष्ट्र के लगभग सभी चुने हुए विख्यात सेनानायकों तथा मराठा-सरदारों की मंडली के बीच पेशवा बाजीराव मंत्रणा-निमग्न थे।

एक वयोवृद्ध सरदार ने अपनी घनी-श्वेत मूँछों पर हौले-से हाथ फेरते हुए बाजीराव को सम्बोधित करते हुए अत्यन्त गम्भीर स्वर में कहा—"पेशवा को, आक्रमण के पूर्व मौसम पर ध्यान देना क्या आवश्यक नहीं प्रतीत होता !"

पेशवा ने सरल-स्मिति से वृद्ध का अनुमोदन करते हुए मृदु पर दृढ़ स्वर में कहा—"आपकी इस सामयिक-चेतावनी को हम सब श्रद्धा की दृष्टि से स्वागत करते हैं दादा भाऊ ! परन्तु सैनिक-धर्म को अङ्गीकार कर लेने के उपरान्त, अगर अपना हर क़दम मौसम के इशारे पर ही रखा जाय तो...." कहकर उन्होंने आशामयी दृष्टि से सरदार-मण्डली की ओर निहारा। सब की मुद्रा पर, आन्तरिक-उत्तेजना ने समर्थन का भाव छलका दिया था।

"वर्षा में सैनिक अपनी स्वाभाविक-क्षिप्रता का उपयोग नहीं कर पाते !" वृद्धत्व की विराटता, तारुण्य के समक्ष झुक-सी गयी थी; फिर भी चिर-अनुभव की ज्योति-शिखा दीप्त ही रही आयी—"पेशवा, तुम्हारे पिता मेरे अन्तरङ्ग थे। हमारी रक़ाबें सदैव एक दूसरे से सटकर ही रहीं। अनुभव पर तुम्हें विश्वास करना होगा और उसका सङ्केत तुम्हें हम जैसों से ही मिलेगा...."

"दादा !"

"मैं चलता हूँ अब !" ईषत् मुस्कान के साथ वे उठकर खड़े हो गये—"तरुणों के बीच मेरी उपस्थिति आवश्यक नहीं। तुमने महाराज शिवाजी के उस महान् स्वप्न को साकार करने का जो संकल्प किया है, वह...." आवेग ने उस वृद्ध का स्वर रुद्ध कर दिया था। भीगी-भीगी आँखों से एक बार अपनी ओर श्रद्धालु-दृष्टि से निहार रहे, मराठा-वीरों की ओर देख कर धीरे-धीरे कक्ष के बाहर हो

रहे। उनका रोम-रोम, बाजीराव और मराठा-सरदारों को आन्तरिक-आशीर्वाद से निहाल कर गया है, इसे सभी ने अनुभव किया। उनके चले जाने के बाद, देर तक स्तब्धता का साम्राज्य छाया रहा। सभी कुछ सोचते हुए-से अपने आप में डूब गये थे, खो गये थे।

"पूज्य राव !"

बाजीराव ने देखा, पन्द्रह वर्ष का एक कोमल-सुन्दर किशोर—अल्हड़ मुस्कान से रञ्जित मुख, सुकुमार पर सुदृढ़ देह—साँचे में ढली हुई-सी।

"नीरू, तू कैसे आया रे ?" बाजीराव ने उसे अपने पास की चौकी-नुमा खाली कुर्सी पर बिठाते स्नेहपूर्ण स्वर में कहा—"मैं समझ गया, दादा कदम ने तुझे भेजा है न ?" और तब सभी ने चकित-भाव से देखा पेशवा के मुख पर अपूर्व शान्ति की मोटी परत पड़ गयी थी।

"नहीं !"

"बुजुर्गों का स्वभाव बड़ा विचित्र होता है !" उन्होंने अपने स्वाभाविक गम्भीर स्वर में कहा—"एक ओर वे हम तरुणों के उफान को अपने अनुभव-दीप्त वृद्धत्व से रुद्ध करते हैं और दूसरी ओर उनका तेज रुद्धता में खो न जाय, इसलिये....खैर, नीरू, तुझे आखेट से फुरसत कैसे मिल गयी रे ?"

"मुझे तो हमेशा फुरसत रहती है राव !" उसके स्वर में विचित्र-सा तनाव था और किञ्चित आवेग का कम्पन भी—"आपने पिछले गणेशोत्सव पर कहा था कि आगामी अभियान में मुझे भी साथ रखेंगे सो...." और वह अपने आस-पास बैठे मराठा-सरदारों के भव्य-व्यक्तित्व से जैसे सहम-सा उठा। खून और तलवार के नशे में उन्मत्त हो रहे, मराठा-सरदारों में उसने अपनी उपस्थिति से, क्षणभर के लिये स्नेह का प्रलेप कर दिया था। सभी के अधरों पर मुस्कान थी।

"अवश्य, अवश्य !" पेशवा ने कहा और तब वे नीरू की ओर

से उदासीन-से हो गये—"शिन्दे, अपने राज्य से निजाम ने हमारे जिन प्रतिनिधियों को निकाल दिया है, वे सब पूना पहुँच गये ?"

"सब तो नहीं !" शिन्दे ने दृढ़ स्वर में कहा—"परन्तु उस दुष्ट ने हमारे प्रतिनिधियों का जो घोर अपमान किया है, वह भूलने योग्य नहीं है। उनकी अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति तक छीन ली गयी है। परिवार की स्त्रियों...."

"मैं इसे याद रखूँगा !" बाजीराव की आँखों में स्फुलिङ्ग छिटके—"और अपने एक-एक कर्मचारी के अपमान का उस नीच से अलग-अलग हिसाब लूँगा, विश्वास रखो !"

सरदार-मण्डली में पेशवा की इस हुंकार ने उत्तेजना की आग प्रज्वलित कर दी।

उसी समय सामने के द्वार से चिमणाजी अप्पा लपक कर आते दीख पड़े। पीछे-पीछे मल्हारराव होल्कर था। आते ही उन्होंने दृढ़ स्वर में कहना आरम्भ किया—"राव, हमें अब विलम्ब नहीं करना चाहिये। निजाम को इस समय दिल्ली से कोई सहायता नहीं मिलेगी और वह वर्षा की समाप्ति की प्रतीक्षा में पड़ा है....वर्षा की हमें परवाह नहीं करनी होगी...."

"हूँ !"

"राव !"

"कहो !"

"आपने अपने को तोल लिया है न ?" अप्पा के स्वर में आशङ्का स्पष्ट थी—"तोपों की आसुरी-मार के सामने तलवारों का जौहर...."

"जौहर का महत्व अपने स्थान पर अक्षुण्ण ही रहेगा अप्पा, तुम निश्चिन्त रहो !" स्वर तीव्र हो आया था—"होल्कर, तुम कब आये ?"

"अभी-अभी !"

"गुजरात से हमें कितना सावधान रहना होगा?"

होल्कर मौन रहा, जैसे सहसा उत्तर देने में हिचकिचाहट हो रही हो—"गायकवाड़ ने हमारा सहयोग करने से इनकार कर दिया है...."

"अच्छा! और?"

"मुगल सूबेदार श्रीहत हो चुका है...."

"और निजामुल्मुल्क?"

"मैं....मैं तो...."

"ठीक है, मेरा मतलब था, गुजरात में निजामुल्मुल्क को अपना पैर जमाने में त्र्यंबकराव और पिलाजी...."

"इसकी आशङ्का नहीं...."

पेशवा ने एक दीर्घ-निःश्वास लिया—"तो ठीक है। हाँ, उदाजी को मेरा सन्देश भिजवा दिया था न?" प्रश्न अप्पा से हुआ था। उन्होंने स्वीकारोक्ति में सिर हिला दिया।

सरदार-मण्डली में तब गम्भीर-चर्चा छिड़ गयी—भावी आक्रमण और युद्ध-नीति के सम्बन्ध में। पेशवा के पास उस समय प्राप्तव्य कुल सेना बीस हजार के लगभग थी। दूसरी ओर निजाम ने अपनी सेना के अतिरिक्त सम्भाजी के प्रभाव में आने वाले मराठों की एक अच्छी-खासी सेना का भी सन्नाह कर लिया था। परन्तु इन सबसे पेशवा और उनके अनुयायी मराठा-सरदारों के मन में रञ्चमात्र भी घबराहट प्रकट न हो पायी।

उन्हें सबसे बड़ी आशङ्का निजाम के तोपखाने से थी। मराठों ने अब तक स्थल-युद्ध में क्षिप्रगति, अप्रतिम घुड़सवारी और अजेय भुजाओं पर ही अपने को स्थिर रखा था।

समस्या विकट थी; परन्तु जब पेशवा ने उपेक्षापूर्वक इसे एक ओर डाल दिया तो सब चकित होकर भी नहीं हो पाये—अपने वीर पथ-निर्देशक की योग्यता पर उन्हें अपार विश्वास जो था। सभा की

समाप्ति पर जब पेशवा उठे तो अप्पा, नीराजी, होल्कर और शिन्दे उनके साथ थे। और सबने विदा ली।

सन्ध्या के झीने आँचल को, आकाश में घुमड़ रहे मेघों ने गहरी कालिमा से रङ्ग दिया।

● ●

अपनी सुसज्जित सेना के साथ पेशवा बाजीराव ने जब पूना छोड़ा तो मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। सब कुछ इतने चुपके-चुपके हुआ कि पूना के नागरिकों को भी इस अभियान का पता बहुत बाद में चला। पेशवा बाजीराव ने अपने सैन्य-सञ्चालन के समक्ष, महाराज शिवाजी और राजाराम के आदर्शों को साकार कर लिया था। सेना को अनेक भागों में बाँटकर, अपने पृष्ठभाग को सुरक्षित करने के उपरान्त, पेशवा ने अपने साथ केवल चार हजार चुने हुए घुड़सवारों के साथ निजाम के जालना प्रान्त में तूफान मचा दी। मुक़ाबले में, मुसलमानों की छोटी-सी सेना आयी, जो उत्साह के ज्वार में पड़कर विलीन हो गई। पेशवा बाजीराव इतनी तूफानी-गति से उसके राज्य में घुसकर, खून की होली खेलेगा, निजामुल्मुल्क को इसकी कल्पना भी न थी। बाजीराव ने शहर को खूब लूटा—हाँ, मराठा-सैनिकों ने नागरिकों का केवल धन चूसा—उनका एक बूँद भी खून न गिरे, इसकी यथाशक्य सावधानी बरती।

दूर, हैदराबाद के पास, अपनी सेना के साथ, आराम से भावी-युद्ध की योजना में निमग्न निजामुल्मुल्क को जब जालना के बुरी तरह लुट जाने की खबर मिली तब तक मराठा घुड़सवारों ने उस क्षेत्र से अपने को बीसों मील आगे बढ़ा दिया था। अपनी असावधानी पर वह बेतरह खीझ उठा। तुरन्त ही उसने अपने विश्वस्त सेनापति को, एक

बड़ी सेना के साथ, मराठों को परास्त करने के लिये रवाना कर दिया। उसका नाम इवाज़ खाँ था। इवाज़ अनुभवी था और वीर भी। बाजीराव इससे अपरिचित नहीं था।

मराठा-गुप्तचर, निजाम की एक-एक बातों की खबर पेशवा को पहुँचा रहे थे।

मराठे, कैम्पों—सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण कैम्पों में नहीं, अपने घोड़ों की पीठ पर ही सोने-खाने के अभ्यस्त थे। इवाज़ के अपनी ओर आने का समाचार पाते ही, पेशवा ने बाग मोड़ी और बाज की-सी गति से, निकट पड़ने वाले, सम्पन्न-प्रदेश माहुर पर झपट पड़े। इवाज खाँ मात खा गया। घबराया हुआ-सा जब उसने, अपनी विशाल सेना को माहुर की ओर घसीटा तो माहुर की लूट में आये समानों, मुहरों से लदे ऊँटों की व्यवस्था में लगे पेशवा ठठाकर हँस पड़े। उन्हें अपने प्रिय घोड़े की पीठ पर उछलकर बैठता देख, नीराजी, अश्व भगाता हुआ पास आ गया और—"राव भैया!"

"हाँ, नीरू!"

"अब?"

"अब हम माहुर छोड़ रहे हैं नीरू!"

"क्यों?" नीराजी का परेशान स्वर था—"पूज्य राव, अभी तो माहुर में...."

"जो बचा है, उसे हमें छोड़ना पड़ेगा नीरू!" पेशवा ने उत्तेजित भङ्गिमा में कहा—"इवाज़ सिर पर आ पहुँचा है...."

"तो?"

"हमें अपने को उसके सामने से अभी अलग ही रखना है...."

"क्या वह इतना भयानक है!" नीराजी के स्वर में जितनी ही आल्हड़ता थी, उतना ही आश्चर्य भी, सम्भवतः असन्तोष भी—"इवाज से डरकर...."

"नहीं रे पागल !" बाजीराव मुस्कराये।

मुहरों से लदे ऊँट, कीमती सामानों, गल्ले आदि से लदे खच्चर, पूना की ओर रवाना होने लगे थे। एक ओर पेशवा की घुड़सवार सेना तत्पर-भाव से, आदेश की प्रतीक्षा में पेशवा की ओर निहार रही थी।

दूर कहीं से प्रयाण का बिगुल बज उठा और अपने पीछे हलकी-सी धूल का धुआँ छोड़ते हुए मराठा-घुड़सवार औरङ्गाबाद की ओर उड़ चले। इवाज़ खाँ की सजीली फौज, उस समय माहुर से दस कोस के फासले पर पड़ाव डाले थी।

पेशवा बाजीराव की 'गोरिल्ला' युद्ध-नीति, निजामुल्मुल्क और उसके सुयोग्य सेनापतियों को पग-पगपर ठोकर मार रही थी।

अगस्त महीने की वर्षा तरुणाई के मद में, जैसे मुसलमान सैनिकों को हतबुद्धि करने का सङ्कल्प कर चुकी थी।

औरङ्गाबाद के एक उजाड़ पर विशाल प्राचीन किले के मैदान में, अपनी सेना के साथ, पेशवा बाजीराव ने विश्राम करने का निश्चय किया था। अपने को व्यवस्थित करने में उनको, दो-तीन दिन से अधिक नहीं लगा।

२८ अगस्त सन् १७२७ ई० की सन्ध्या। पेशवा बाजीराव अपने खीमें में आठ-दस प्रमुख मराठा-सरदारों के साथ बैठे, औरङ्गाबाद के नागरिकों की ओर से भेंट के लिये आये, प्रतिनिधियों का लिखित निवेदन, अत्यन्त गम्भीर भाव से सुन रहे थे। प्रतिनिधि हाथ बाँधे, एक ओर स्तब्ध-भाव से, पेशवा के निर्णय की आकुल प्रतीक्षा कर रहे थे। पास ही, भेंटस्वरूप आया, दस हज़ार अशर्फियों का विशाल स्वर्ण-पात्र रखा था।

"ठीक है !" पेशवा के मुख से निकला—"गरीब और अशक्त नागरिकों को लूटना और उन्हें कष्ट देना, कभी भी मराठों का अभिप्रेत नहीं रहा है। परन्तु मुझे खूब मालूम है, यहाँ के कुछ मुसलमान और

हिन्दू महाजनों के तहखानों में अकूत-धन व्यर्थ पड़ा हुआ है। मराठा-सेना के खर्च के लिये, उस व्यर्थ के धन का सदुपयोग होना ही चाहिये.... क्यों?"

प्रतिनिधियों के मुख से उत्तर नहीं फूट पाया।

पेशवा की आँखें उनके अन्तस में पैंठी जा रही थीं।

"मुझे उत्तर चाहिये!"

"हुजूर...."

"उत्तर!" पेशवा का स्वर अधिकाधिक कड़ा होता जा रहा था—"आप सभी मुसलमान हैं और इस जाति में हैवानियत और मक्कारी के कीड़ों का बिलबिलाना हिन्दुस्तान का चप्पा-चप्पा बखूबी महसूस करता आया है। मराठा-तलवारें बेबसों का लहू स्पर्श नहीं करतीं; परन्तु ऐसी बेबसी नहीं, जो मक्कारी और...." स्वर हुंकार में परिणत हो गया था।

प्रतिनिधियों के पैर काँप-काँप कर रह गये।

"तुम किसकी ओर से आये हो?" पेशवा के स्वर में आदेश की गूँज थी—"मेरी निगाहों से अपने को छिपाना सहज नहीं, खाँ साहबो!—अच्छा, तुम्हें तीन दिनों का समय दिया जा रहा है.... इस बीच, मराठा-घुड़सवारों के सामने, सभी छिपे हुए खज़ानों के दरवाजे खुल जाने चाहियें—वर्ना...."

प्रतिनिधियों को अब, पेशवा के सामने खड़ा होना संभव नहीं दीखा। झुककर कोर्निश बजाते हुए सब जल्दी से खीमें के बाहर हो रहे। पेशवा ने एक उपेक्षा की दृष्टि, अशर्फियों से भरे उस स्वर्ण पात्र की ओर डाली ही थी कि खीमें के दरवाज़े पर नीराजी खड़ा दीख पड़ा।

बाजीराव की मुद्रा पर क्षणभर पूर्व आया तनाव समतल हो चुका था। उनके पतले-अरुण अधरों पर स्वाभाविक स्मिति लौट रही थी। नीराजी पास आकर खड़ा हो गया।

"क्या है नीरू?"

"राव, अभी ही अप्पा साहब का हरकारा आया है। निज़ाम एकदम बौखला उठा है। माहुर में इवाज़ खाँ से मिलकर उसने संभवतः हमारे प्रदेश के किसी भाग पर आक्रमण करने का निश्चय किया है...." कहकर वह हाँफने लगा। ऐसा लगता था, जैसे समाचार पाते ही वह कहीं दूर से भागा आया है।

"कहाँ है वह दूत?" पेशवा का स्वर तीव्र था।

"वह तो....वह तो...." नीरू सकपकाया-सा—"पूज्य राव, मुझे क्षमा करें....वह अभी चार-पाँच कोस पीछे होगा....मैंने किसी तरह उससे...."

"तुम अपनी सीमा के बाहर जाने से बाज नहीं आते नीरू!" बाजीराव ने स्निग्ध स्वर में फटकारा—"देख रहा हूँ, तुम्हें अपने साथ रखकर मैंने बड़ी भूल की....ऐसे तो कभी तुम अपने को संकट में डाल दोगे और हम-सब को भी...."

"पूज्य राव, क्या मुझे पूना भिजवा देंगे आप?" स्वर में हताशा थी उसके।

"अवश्य!"

"मैं प्रतिज्ञा करता हूँ राव...."

"वह तो बीसों बार कर चुका है तू...."

"नहीं अब...."

"तू पूना चला जा नीरू! अपने उद्धत स्वभाव से मुझे सदैव चिन्तित बनाये रहता है। युद्ध—और सो भी, इस समय के युद्ध में किसी का कोई ठीक नहीं....अभी तेरी उमर ही क्या है रे पागल!" फटकार में तरलता थी और तरलता में स्नेहिल-अधिकार की चमक।

"मैं अपनी रक्षा स्वयं करने में समर्थ हूँ राव!" आन्तरिक उद्वेग

ने उसके भोले मुख पर रक्त छलका दिया—"मैं आपके साथ रहूँगा, मुझे कोई पूना नहीं भेजेगा, आप भी नहीं...."

उसी समय घबराये हुए-से गणोजी जाधव ने आकर दोनों को चौंका दिया—"राव, यहाँ के नागरिकों तक निज़ाम के दूत पहुँच गये हैं...."

"तो ?"

"सभी बेतरह उत्तेजित हो रहे हैं। शहर में वसूली के लिये गये हमारे आदमियों पर कई जगह गोलियों और तीरों से आक्रमण करने का भी प्रयत्न किया गया...."

"अच्छा !"

"अगर ये आक्रमण शीघ्र ही बन्द नहीं होते तो सेना को वश में रख पाना संभव न रहेगा। ऐसी स्थिति में मेरे लिये आपकी आज्ञा अनिवार्य है राव !" स्वयं उसका स्वर उत्तेजना से बुरी तरह काँप रहा था।

"पर हमें तो आज ही खानदेश छोड़ देना है जाधव !" बाजीराव के शब्दों ने खीमें में जैसे वज्रपात कर दिया। गणोजी जाधव और नीराजी—दोनों ही अचकचाकर उनकी ओर निहारने लगे—"इस बीच तुम्हें, नगर से अपने आदमियों को समेट लेना होगा—संभव है, आज भर का समय मिल जाय। हमारा लक्ष्य, निज़ामुल्मुल्क है, न कि ये निहत्थे नागरिक। मराठा घुड़सवारों को नागरिकों का क़त्लेआम करके या नगर को जलाकर क्या मिलेगा ?.... इससे हमें कोई विशेष लाभ या वीरता का प्रमाणपत्र नहीं ही मिलेगा.... समझ रहे हो न ?"

"हाँ !"

"तो जाओ !" बाजीराव ने दीर्घ निश्वास के साथ कहा—"और देखो, अप्पा के दूत के आते ही मेरे पास भेज दो। हमें आनन-फानन में अपना सम्पूर्ण कार्यक्रम स्थिर कर लेना है !"

गणोजी चला गया। गणोजी पर पेशवा को अपार विश्वास था। युवा होते हुए भी उसमें युद्ध सम्बन्धी ज्ञान की विलक्षण प्रचुरता थी। मराठा-घुड़सवारों के बीच उसके सम्बन्ध में चर्चा रहती—लड़ाई के मैदान में गणोजी, आँखें बन्द करके तलवार चलाता है!—संभवतः इस चर्चा में अतिशयोक्ति की मात्रा ही अधिक हो; परन्तु तीस-बत्तीस वर्ष की आयु में, उसके शरीर में लगभग सत्ताईस संघातक घाव लगे थे। उसके जाने के उपरान्त पेशवा गद्दी पर बैठे हुए जैसे अपने में ही खो गये। नीरू की उपस्थिति का भान भी उन्हें नहीं था।

कुछ देर बाद—"राव!" नीरू के कम्पित स्वर ने उन्हें झकझोर-सा दिया।

"ओह, नीरू, क्या बात है?"

"राव, मुझे पूना न भेजें!" और झुककर उसने उनके पैर पकड़ लिये—"मैंने आपके साथ ही, जीवन-पथ के अन्वेषण में लगे रहने का निश्चय कर लिया है पूज्य राव...."

बाजीराव को लगा जैसे अब वह रो पड़ेगा। अनायास ही उनके अधर स्मितरञ्जित हो आये—"तू निरा बच्चा ही है नीरू!" मुख से तरल स्वर निकल।

"बच्चा नहीं हूँ राव!" पेशवा के अधरों की मुस्कान से आश्वासन-सा मिला था उसे—"किसी दिन अपने को, आपके शिष्यत्व का प्रज्वलन्त प्रतीक बना पाऊँ—बस, वही दिन मेरे जीवन-पथ का पाथेय सिद्ध होगा...." कहते-कहते वह अत्यन्त भावुक हो उठा।

"यह सब दादा ने सिखा दिया है क्या?" पेशवा ने उसे अपने पास कर लिया। उनकी मुट्ठियों में पड़ी नीराजी की सुदृढ़-सुकोमल कलाई में कम्पन की लहरें दौड़ रही हैं, अनुभव हुआ तो—"नीरू, दादा के परिवार का तू नक्षत्र है और दादा ने मुझे अपनी स्नेहमयी-

छाया में, वह सब-कुछ दिया है, जो सम्भवतः स्वर्गीय पिताजी से भी नहीं मिला....नीरू, तेरे और नाना में कोई अन्तर मैं नहीं मानता...."

बाजीराव के चरणों पर झुके नीरू को, जब उन्होंने अपने वक्षस्थल से लगाया तो उनके विशाल नयनों में स्नेह की गरिमा दीप्त हो आयी। दीप्ति जितनी ही तरल थी, उतनी ही अपूर्व और प्रखर भी।

रणक्षेत्र के अस्थिर-जीवन में, पेशवा बाजीराव का वह स्वरूप—निस्सन्देह देखने वालों को चकित करने वाला था। बाहर मराठा-घुड़सवारों की सतर्कता मुखर-सी हो आयी थी। प्रयाण का बिगुल किसी भी क्षण बज सकता था न....

• •

अपनी और इवाज खाँ की सेना को सम्मिलित कर, पेशवा बाजीराव से युद्ध-नीति में ठोकर पर ठोकर खाकर झल्लाया हुआ निजामुल्मुल्क पूना पर आक्रमण करके, उसकी ईंट से ईंट बजा देने की योजना में लगा ही था कि समाचार आया—बाजीराव बुरहानपुर पहुँच कर क़हर बर्पा कर रहा है !....समाचार ले आने वाले दूत को हाथ की छड़ी का एक सच्चा हाथ बैठा। पास ही राजाराम का कलङ्की-कायर पुत्र सम्भाजी बैठा था। निजाम को आ गये इस क्रोध ने उसे घबरा दिया।

"यह शैतान, आदमी है कि जिन्न !" निजाम के स्वर से 'लाहौल बिलाकुव्वत' की ध्वनि आ रही थी—"समझ में नहीं आता कभी सुनता हूँ खानदेश है तो कभी गुजरात....मराठों की पूरी नस्ल...." जोश में आकर कोई गन्दा अल्फ़ाज निकल रहा था; परन्तु पास ही सम्भाजी बैठा है, यह भान होते ही तुरत ही सम्हल गया—"देख रहे हैं न आप !"

"जी हाँ !" सम्भाजी के मुख पर जैसे किसी ने स्याही फेर दी थी। आस-पास बैठे मराठा-सरदारों के लहू में उबाल आने को हुआ पर स्वामी की उस निष्प्रभ-सी 'हाँ' ने उन्हें शान्त कर दिया।

"बुरहानपुर लुट जायगा...."

"हमें भी अब पूना को लूटकर इसका भरपूर बदला चुकाना चाहिये किब्ला !" इवाज खाँ ने सहमी आवाज में कहा—"अप्पा शायद समन्दरी इलाके की ओर उलझा हुआ है....पूना को जलाकर राख कर देना कोई खास मुश्किल नहीं होगा....मेरा खयाल है...."

"तुम्हारे खयाल पर कुफ्र पड़े...."

"क़िब्ला !"

"इवाज खाँ, इसे भूल क्यों जाते हो कि बुरहानपुर के लुट जाने पर हमारे रीढ़ की हड्डियाँ छितरा पड़ेंगी और हम पूना की मुहिम पर अपने को घसीटें, तब तक वह शैतान हैदराबाद को तहस-नहस कर देगा। हमें तब गोदावरी के दरिया में डूब मरने को भी जगह न रहेगी...."

इवाज खाँ की हक्की-बक्की गुम। सम्भाजी की मुद्रा पर नैराश्य की छाया।

"तब ?" निजाम ने जैसे अपने ही से प्रश्न किया।

"तब !" इवाज और सम्भाजी के मुख से लगभग एक साथ ही निकला।

"हमें उस शैतान को रोकना ही होगा !" स्वर में निश्चयात्मक-दृढ़ता थी—"इवाज खाँ, आज ही कूच की मुनादी फिरवा दो फौज में...." और वह उठकर खड़ा हो गया।

निजाम की थकी और परेशान सेना में बाजीराव के नाम का आतङ्क-सा छा गया था।

पग-पग की पराजय ने निजामुल्मुल्क को बावला बना दिया था।

और अन्ततः वह क्षण आ ही गया, जिसके लिये पेशवा बाजीराव के हृदय—महान् और महत्वाकांक्षी हृदय में वर्षों से टुटन भर रही थी। ऐसी टुटन, जैसी बाढ़ की नदी की उन्मत्त लहरियों की ठोकर से बाँध की ईंटों में भर उठती है।

पेशवा ने गोदावरी के विस्तीर्ण तट पर, निजाम को घसीट कर अपनी सेना के सामने कर लिया। अपने समय के दो महान् महत्वाकांक्षी-व्यक्तित्व बल-परीक्षा के लिये आमने-सामने प्रस्तुत थे। शतरञ्ज की-सी चालों में शह पर शह खाया हुआ निजाम, विजय के मद में उत्साहित-उत्तेजित बाजीराव की सेना को देख, किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। सम्भाजी का कलङ्की अन्तस काँप उठा। अपने भविष्य के गहन-गह्वर में डूबने-उतराने लगा वह।

सेना थक चुकी है—बाजीराव के आतङ्क ने उसे सिहरन से भिगो दिया है—सैनिकों की हाथों में तलवार तनी तो है, पर काँप रही है—परिस्थिति की विकटता से अनुभवी और वीर सेनापति निजाम को लेने के देने पड़ गये थे।

पेशवा ने इधर-उधर बिखरी हुई सेना को समेट कर अपने को अजेय बना लिया था। तोपों की आड़ में पड़ी निजाम की विशाल सेना में अराजकता व्याप्त थी। और इसका लाभ उठाने में बाजीराव ने तनिक भी शिथिलता नहीं दिखाई। चुने हुए मराठा सेनापतियों ने चारो ओर से घेरा डाल दिया। बाजीराव के पवन के साथ, अपने मुश्की घोड़े पर नीराजी बिजली बना फिरता था।

निजाम की तोपें रह-रहकर आग उगल कर घेरा तोड़ने का प्रयत्न करतीं; परन्तु व्यर्थ। मराठा-घुड़सवारों का जन्मजात चापल्य, अपने को साफ बचा लेता।

दो दिनों की अनवरत तोप-वर्षा ने, मराठा-घुड़सवारों के सत्तर-अस्सी वीरों को अपनी चपेट में लिया, जब कि चपलगति में, तोपों की

दीवार लाँघ-लाँघकर, मराठा-घुड़सवारों ने निजाम के सैकड़ों सिपाहियों के लहू से अपनी तलवारें रङ्ग डालीं।

पेशवा घेरे को सङ्कुचित बनाते जा रहे थे। एक-एक दिन गुजारने के लिये निजाम को गहरी कीमत चुकानी पड़ रही थी।

कई सेनापतियों के बीच में बैठा निजामुल्मुल्क अपने भविष्यत् कार्यक्रम पर विचार-विमर्श कर रहा था कि घबराया हुआ-सा सम्भाजी आकर पास ही, कालीन पर धम्म से बैठ गया। उसका सारा शरीर पसीने से तरबतर हो रहा था। निजाम ने घूमकर उसकी ओर देखा—"जनाब की तबीयत नासाज़ मालूम होती है!" स्वर में सहानुभूति और स्नेह की चाशनी थी।

"मैं तो बुरा फँसा...."

"क्यों?"

"बाजीराव मुझे अपने हाथ में पाने के लिये सङ्कल्प कर चुका है और शायद आपको मालूम नहीं, आपसे मिलकर मैंने महाराष्ट्र के साथ जो विश्वासघात किया है, उससे महाराष्ट्र का चप्पा-चप्पा मेरी ओर खूनी आँखों से निहारता होगा। मराठों के मन में, मेरे लिये जो थोड़ी-बहुत श्रद्धा थी, वह घोर घृणा में परिणत हो चुकी है....ओह, अब तोपों का घेरा अधिक देर तक हमारी रक्षा न कर सकेगा...." कहकर वह कातर दृष्टि से निजामुल्मुल्क की ओर निहारने लगा। निजाम का मुखमण्डल अत्यन्त गम्भीर हो उठा था।

सेनापति स्तब्धभाव से कभी अपने स्वामी की ओर, कभी सम्भाजी की ओर निहारते रहे।

"आपको मुझ पर यकीन नहीं?" निजाम का स्वर गम्भीर था—"क्या यह सोचते हैं कि आपको बाजीराव को सौंपकर मैं...."

"सो नहीं, परन्तु...."

"मैं समझ रहा हूँ...." एक दीर्घ निश्वास के साथ निजाम ने

सम्भाजी को बीच ही में रोक दिया—"आपने हमारा साथ दिया है—अपने वतन और जाति को लात मारकर तो इसे भी याद रखिये कि एक सच्चे मुसलमान की तरह मुझे हमेशा अपने साथ पायेंगे। जीते जी पेशवा आपकी ओर टेढ़ी आँख से देख नहीं पायेगा....अगर यकीन कर सकें तो...." कहते-कहते निजाम के मुख पर सचाई का तेज-सा छा गया।

सम्भाजी की घबराहट बहुत कुछ कम हो गयी। आश्वस्त होकर उसने निजाम की ओर कृतज्ञ दृष्टि से देखा—"मुझे आप पर पूरा यक़ीन है...."

"शुक्रिया...."

उसी समय भारी तोपों ने कर्णभेदी रव के साथ सबको चौंकाया। हड़बड़ा कर सब उठ पड़े—"मालूम पड़ता है, पेशवा खुद मैदान में आ गया है....अरे-अरे...." निजामुल्मुल्क ने कड़कती आवाज में आदेश दिया—"अपनी सारी तोपों को एक जगह करके घेरा तोड़ दो!" सेनापति झपटते हुए बाहर चले गये। सम्भाजी के साथ निजाम खुद भी खीमें के बाहर चला आया। पेशवा बाजीराव स्वयं, मराठा घुड़सवारों के साथ, घेरे को तोड़ने के लिये आगे बढ़ आया था। निजाम की तोपों की प्रलयङ्कर अग्नि-वर्षा को वीरतापूर्वक लाँघते हुए, मराठा-घुड़सवार आगे बढ़े आ रहे थे। अपने सुप्रसिद्ध पवन पर, नंगी तलवार ताने बाजीराव को, निज़ाम ने बिजली की तरह चमकते देखा। आस-पास तोप के भयङ्कर गोले बरस रहे थे परन्तु उसे जैसे ध्यान ही न था।

"खूब!" निज़ाम के मुख से निकल गया।

मराठा घुड़सवारों की तलवार की धार में तोपों का घेरा टूट गया। निज़ाम की घबराई-थकी सेना बुरी तरह कटने लगी। एक-एक क्षण बहुमूल्य था। शीघ्र ही एक योग्य सेनापति की भाँति निजाम

ने अपनी सारी सेना को समेट, तोपों को आगे कर, आगे बढ़ना शुरू किया। अगल-बगल से मराठा-घुड़सवार मँड़राते हुए, एक-एक गज भूमि की भरपूर कीमत वसूल कर रहे थे। तोपों की भयङ्कर मार के आगे मराठों का आगे से प्रतिरोध जम नहीं पा रहा था।

आठ-दस घंटे के अनवरत घमासान के उपरान्त अन्ततः निजाम ने अपने को एक सुरक्षित स्थान पर कर लिया। युद्ध में उसने बुरी तरह पराजय पायी थी। पीछे छुटे हुए पचीसों तोपों तथा कीमती सामानों पर मराठों ने अपना अधिकार जमा लिया।

पेशवा ने उससे थोड़े ही फासले पर स्थित मुंगीशेव नामक ग्राम में अपना मोर्चा जमाया। मराठा-घुड़सवार शान्त नहीं बैठे। उनके गोरिल्ला-आक्रमणों से सन्त्रस्त निज़ाम ने जान छुड़ाने के लिये, पेशवा से सुलह करने का निश्चय कर लिया।

और सुलह का पैगाम लेकर आने वाले इवाज खाँ का पेशवा ने स्वागत भी किया। अपने साथ लायी भेंट को, स्वीकार करने का निवेदन करते हुए इवाज खाँ ने विनम्र स्वर में निजाम का मन्तव्य प्रकट किया। सुनकर पेशवा के अधरों पर मुस्कान थिरक उठी।

"मुझे इनकार नहीं खाँ साहब !" स्वर में स्वाभाविक पैनापन था—"हम तो लड़ना चाहते भी नहीं थे। हमारे घर में फूट डालकर खुद निज़ामुल्मुल्क साहब ने...."

"इसकी चर्चा न करें अब क़िब्ला !"

"हूँ !" पेशवा के स्वर में तीव्रता थी—"पूना को जलाकर राख कर देने की धमकी भी कम मजेदार न रही। हम तो उन्हें अनुभवी और बुजुर्ग मानते रहे हैं, ऐसा बचपने वाला ख़्याल उन्हें करते देखकर आप सच मानें खाँ साहब, बड़ी हँसी आई थी...."

पेशवा की व्यंग्योक्तियाँ इवाज़ खाँ को बेधती जा रही थीं; परन्तु परिस्थिति शान्त बने रहने को विवश कर रही थी।

"किब्ला, अब सुलह के लिये अपनी शर्तें...."

"ठीक है, ठीक है....आप आराम करें....जल्दी ही सब कुछ हो जायगा...." कहकर उन्होंने, इवाज़ खाँ के पीछे खड़े नीराजी से जिसके गर्दन और भुजा में पट्टियाँ बँधी थीं कहा—"नीरू, खाँ साहब के आराम की व्यवस्था कर दो....हाँ, अगर अप्पा आ गये हों तो उन्हें मेरे पास भेज दो....खाँ साहब, हमारे सम्भाजी तो सकुशल हैं?"

"जी हाँ, जी हाँ!" अपनी झेंप मिटाने के लिये इवाज़ तुरत नीराजी के साथ खीमे के बाहर हो रहा।

"क्या सोच रहे हो मल्हार राव!"

"हमें इस साँप को सदा के लिये कुचल देना चाहिये राव!" मल्हारराव होल्कर ने उत्तेजित स्वर में कहा—"पूना को राख बनाने का ख्याल करने वाला दुष्ट...."

"नहीं!"

"राव...."

"हमें अवसर की प्रतीक्षा करनी होगी। हमारी शक्ति संघटित नहीं। नींव में फूट के घुन लग रहे हैं और निज़ामुलमुल्क की हस्ती मामूली नहीं। इसे हमें कभी नहीं भूलना है कि हिन्दू-पद-पादशाही का लक्ष्य दक्षिण ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष है। मराठा घुड़सवारों की बाग दिल्ली की ओर मुड़ने में अभी बाधाओं का पहाड़ लाँघना बाकी है। निजाम को मटियामेट कर देने में हमें अपनी पूरी शक्ति व्यय करनी होगी, तब तक जानते हो, हमारी स्वतन्त्रता खतरे में पड़ सकती है...."

"तो?"

"हम सुलह करेंगे। इसके सिवा और कोई चारा नहीं। निजाम को हमने यह बखूबी मालूम करा दिया है कि अब मराठा-घुड़सवार 'पहाड़ी-लुटेरे' नहीं—वे एक स्वतन्त्र राष्ट्र के वीर सैनिक हैं, जिनकी

नसों में लहरता लहू तप्त है, ठएढा नहीं....” उनका प्रशस्त ललाट दिप-सा उठा था। आँखों में महत्वाकांक्षा की गरिमा ने विचित्र-सी चमक भर दी थी। मल्हारराव मौन रह गया।

उसी समय बाहर से चिमणाजी अप्पा ने खीमें में प्रवेश किया।

● ●

अक्टूबर के आरम्भ में पेशवा और निजामुल्मुल्क के बीच सन्धि हो गयी। पेशवा ने अपनी ओर से जो शर्त्तें पेश की थीं, वे विजेता के योग्य ही थीं। शर्त्तें निम्न थीं—

१—शाहू महाराज को महाराष्ट्र का एकमात्र शासक मानना।

२—चौथ और सरदेशमुखी के लिये, अपने आदमियों के साथ पेशवा के द्वारा नियुक्त आदमियों को भी रखना। उनकी सुरक्षा के लिये अपने राज्य में किला बनाने की व्यवस्था।

३—बकाया चौथ-सरदेशमुखी की पूर्ण अदायगी।

४—सम्भाजी को, सेना सहित पेशवा के पास पहुँचा देना।

तीन शर्त्तें तो निजाम ने स्वीकार कर लीं परन्तु अन्तिम शर्त्त के लिये, उसकी ओर से इवाज खाँ ने पेशवा से निवेदन किया—“पेशवा खुद बहादुर हैं और उन्हें इसपर खयाल करना चाहिये कि संभाजी ने हमारी ओर आकर अपने को बेसहारा बना लिया है। किसी भी हालत में उनकी इज्जत बरक़रार रखने और रक्षा करने का फर्ज....”

“फिर भी....”

“यह नहीं हो सकता जनाब!” पास ही बैठे चिमणाजी अप्पा अपने को जब्त नहीं कर सके, उनके मुख से गुर्राहट निकल पड़ी—“हमारी सबसे मुख्य शर्त तो यही होगी....”

इवाज़ खाँ ने कातर-दृष्टि से पेशवा की ओर निहारा—"आप कहिये न कुछ...."

पेशवा विचारमग्न हो गये थे।

"पूज्य राव !"

"अप्पा, निजाम के इस वीरोचित निश्चय का हमें सम्मान करना चाहिये...."

चिमणाजी कहना चाहकर भी कुछ कह न पाये। आस-पास उपस्थित सरदारों में सनसनी व्याप्त हो गयी। इवाज़ खाँ की धड़कनों का ज्वार उत्ताल ही होता जा रहा था। मराठों के प्रति शुरू से ही उसे घोर घृणा थी। उन्हें दुर्दान्त-हृदयहीन लुटेरों से अधिक उसने सोचा ही न था; परन्तु आज उसने पेशवा के व्यक्तित्व में जिस वीरत्व के दर्शन किये थे, उससे पूर्व-मान्यताओं पर कठोर आघात हुआ था।

"मुझे स्वीकार है खाँ साहब !" बाजीराव ने अत्यन्त गम्भीर स्वर में कहा—"परन्तु इतना याद रखना होगा, संभाजी के प्रति अगर कभी भी कोई असम्मान किया गया तो उसे महाराष्ट्र अपना अपमान समझेगा और उस समय हमारे सामने समझौता नहीं, प्रतिशोध होगा। निजामुल्मुल्क को मैं वीर समझता हूँ, इस नाते वे धोखेबाज भी नहीं ही होंगे, सो...." और वे शेष वाक्य पूरा न कर सके।

इवाज़ खाँ ने उठकर आदाब बजाया—"तो मुझे इजाजत है...."

"हाँ, जा सकते हो !"

अपने सहकारियों के साथ वह पेशवा के खीमें के बाहर हो गया। पचीस मराठा घुड़सवारों ने उसे सुरक्षित निज़ाम के पड़ाव के पास पहुँचा दिया। मराठों के मन में मुसलमानों के प्रति घृणा की जो आग सुलग रही है, इसका अनुभव कर पेशवा ने इवाज़ खाँ के लिये यह व्यवस्था कर दी थी।

महाराज शिवाजी के उपरान्त—आज पहली बार संभवतः मुग़लिया-इमारत की नींव ने, कम्पन का अनुभव किया था, मराठा-तेज से आतंकित होकर।

बल-परीक्षा में पेशवा ने विजय पायी थी। उनके अन्तस की उमड़ती हुई महत्वाकांक्षा को बल मिला था और तब उन्हें अपना पथ प्रशस्त से प्रशस्ततर होता दीखने लगा।

और—

अपने को संपूर्ण दक्षिण का एकमात्र अधिकारी समझनेवाला निज़ामुल्मुल्क पराजय की राख में अपनी महत्वाकांक्षा को लपेटे धीरे-धीरे हैदराबाद की ओर बढ़ रहा था।

बल-परीक्षा उसके लिये बहुत मूल्यवान साबित हुई थी।

बुन्देलखण्ड की ओर—
जीवन का नया मोड़ !

विरोधियों ने मुँह की खाई। निजामुल्मुल्क की पराजय ने पेशवा के व्यक्तित्व में ज्वलन्तता भर दी थी। महाराज शाहू को निजाम के चरणों पर झुक जाने की सलाह देने वाला श्रीपतराव बहुत दिनों तक अपना छोटा मुख, दरबार को न दिखला सका। महाराष्ट्र के जन-जीवन में, पेशवा बाजीराव के प्रति अपार श्रद्धा लहर रही थी। महाराज शाहू ने अपना रहा-सहा अधिकार भी, पेशवा के सुदृढ़ कन्धों पर डाल दिया। निजाम को पराजित करने के उपरान्त पेशवा ने सीधे सतारा पहुँच कर, शाहू को निजामुल्मुल्क से तय हुई शर्तें विस्तारपूर्वक समझायीं। निजाम से चौथ और सरदेशमुखी के अधिकार पाने के बाद, अब महाराष्ट्र को अपने कुछ सरदारों की ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया था। समुद्र की ओर से आने वाले विदेशियों से टक्कर लेते-लेते सुप्रख्यात मराठा-सरदार कान्होजी आंग्रे ने, इतनी शक्ति एकत्र कर ली थी कि महाराष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों में स्वतन्त्रता बरतने लगा था। गुजरात की भी लगभग यही दशा थी—इन प्रमुख समस्याओं पर कई दिनों तक पेशवा और शाहू में गम्भीर विचार-विनिमय होता रहा। शाहू ने राज्य की सारी व्यवस्था पेशवा पर छोड़, निश्चिन्तता की साँस ली। अधिकार और विजय से उमगा हृदय लिये पेशवा ने शीघ्र ही पूना की ओर प्रयाण किया।

१७२७ का वर्ष समाप्त हो रहा था....

● ●

आज कई मास पश्चात् बाजीराव ने अपने शयन-कक्ष में प्रवेश किया था। कक्ष सुगन्धित धुयें के सुकुमार छल्लों के स्पर्श से गमक उठा था। छत से लटकते झाड़ में से मधुर-प्रकाश कक्ष को आलोक से नहलाता हुआ शरमा-सा रहा था। वातावरण में रस की महक थी, माधुर्य की रमक थी।

क्षणभर के लिये बाजीराव स्तब्ध-से रह गये। द्वार पर उन्हें ठिठका देख, काशीबाई ने मुस्कानसने अधरों पर बिछलते स्वर में कहा—"पेशवा पवन की पीठ पर, रण-क्षेत्र में नहीं हैं...."

"ओह!" बाजीराव ने आगे बढ़कर पत्नी को बाँहुओं में भर लिया—"तुम तो दिनोंदिन अपने सौन्दर्य को और तीक्ष्ण बनाती जा रही हो रानी...."

"और आप?"

"मैं तो अब....देख नहीं रही हो,. तुमसे कितनी दूर जा पड़ा हूँ। पेशवाई ने तुम्हें मुझसे या मुझे तुमसे छीन-सा लिया है रानी! लगता है, युग बीत गये तुम्हें अपनी बाँहों में लिये...."

"नहीं!"

"क्यों?"

"इसलिये कि आपके चरणों पर लोटती विजय-श्री, मेरे सुहाग का प्रोज्वल प्रतीक है नाथ!" अपने को मुक्त कर, काशीबाई ने बाजीराव को धीरे से शय्या पर बिठा दिया। पेशवा विसुध-से उसकी ओर निहारते रहे। काशीबाई के कपोलों पर किसी ने जैसे गुलाल मल दिया हो—"ऐसे देखते हैं तो जाने क्यों मैं सहन नहीं कर

पाती....” कहकर वह पति के चरणों को अपनी गोद में रख, शय्या के नीचे फर्श पर बैठ गयी। बाजीराव ने खींचकर अपने पास बिठा लिया तो छल-से मोती का एक दाना—जो तरल था, तप्त था, हाथों पर गिरकर मिट गया। किसी ने झकझोर-सा दिया।

“रानी !”

“नाथ....”

“तुम्हारी आँखों में आँसू !” बाजीराव के स्वर में कम्पन था—“तुम्हें कोई दुख है रानी !”

“दुख तो कल्पना से भी परे है नाथ !”

“तो ?”

“ऐसे ही....” रानी ने चटपट आँचल में आँखों का गीलापन समेट लिया—“अपने इस स्वर्गीय-सौभाग्य पर जाने क्यों अविश्वास होता है और तब....”

“तब ?”

“मैं उन्मत्त हो उठती हूँ....”

“आशङ्का में ?”

“नहीं, सुखावेग में !”

“पगली—” बाजीराव ने दोनों हाथों के बीच करके उसके मुख को अपने पास कर लिया, क्षणभर तृषित-दृष्टि कुछ खोती रही, कुछ पाती रही और तब उस खोने-पाने पर एक ‘मुहर’ लग गयी।

दूर, कहीं से वंशी की टीसभरी-ध्वनि आकर, अर्द्धरात्रि की निविड़ता को मथने लगी थी।

“कौन है ?”

“साधक....” कहकर काशीबाई हँस पड़ी—“तलवार, लहू और लाशों का नहीं, हृदय का !”

“अच्छा !”

"हूँ !"

"क्या मेरे हृदय नहीं ?"

"उँहुक...."

"तो यह है क्या आखिर ?"

"वह तो मेरा है...." और तब दो उन्मुक्त ठहाकों ने कक्ष को तरङ्गित-सा कर दिया। अपने स्वामी के विशाल वक्षस्थल में सिमटी काशीबाई वैवाहिक-जीवन की स्वर्णाभा से अठखेलियाँ कर रही थी। और युद्ध की विभीषिका में निर्लिप्त बाजीराव के मन-प्राणों में स्फुरण भर गया था—कितना मादक, कितना विस्मरणकारी था वह स्फुरण !

निरभ्र आकाश पर ज्योत्सना मलिन हो रही थी, जब दम्पति रसमत्त-से हो निद्रादेवी की गोद में विस्मृत हो गये। पेशवा महल के पार्श्व में बने शिवमन्दिर के घड़ियाल घनघना रहे थे।

• •

पूना के बाजारों में सनसनी व्याप्त थी। कल ही तो बुन्देलखण्ड के महाराज छत्रसाल के भेजे दूत आये हैं और आज ही मराठा-घुड़सवारों में सरगर्मी दीख पड़ रही है। क्या बात है ?—किसी की समझ में नहीं आ रहा था। अपनी-अपनी समझ से सभी अनुमान लगाते परन्तु कुछ निश्चित नहीं हो पाता था।

"हमारा पक्का विश्वास है पटेल, इसबार मुग़ल बादशाह मुहम्मदशाह हमारे पेशवा के चरण पखारेगा....तुमसे सच कहता हूँ, अगर दिल्ली का तख़्तेताउस उठकर हमारी राजधानी में आ जाय तो...." पूना के प्रसिद्ध स्वर्णकार के युवा पुत्र ने तलवार की एक मूठ पर नक्काशी के लिये कलम सम्हालते हुए कहा—"पिताजी ने तख्तेताउस को नजदीक से देखा है...."

"अच्छा !" पटेल ने सिरपर पगड़ी रखते हुए कहा—"हमने सुना है, उसमें दो मन वजन के तो हीरे ही लगे हैं...." स्वर में जिज्ञासा थी—लोलुपतारञ्जित जिज्ञासा !

उसी समय एक घुड़सवार उछलकर दूकान के सामने उतरा और—"अरे भाई, कल तुम्हारे पिताजी को करधनी के लिये सोना दे गया था....वह तीन-चार दिनों में बनकर मिल जानी चाहिये...."

"अच्छा-अच्छा....पर आइये बैठिये ना ! अबे रमकिसना, सरकार के लिये चार मुश्की गिलौरियाँ तो बना...." बगल की पनवाड़ी की दूकान को आदेश देकर स्वर्णकार-पुत्र घुड़सवार के लिये आसन ठीक करने लगा।

"नहीं भाई, अपने को इतना अवकाश कहाँ। हमारे पेशवा की तो बात ही निराली होती है। अभी-अभी तो निजाम वाली मुहिम से आये हैं और अभी ही...." पनवाड़ी की दी हुई गिलौरियाँ मुख में रखता हुआ वह आसन पर बैठ गया—"इस बार तो लगता है, लम्बे सफर की तैयारी है...."

"क्या दिल्ली की ओर ?" पटेल अपनी उत्सुकता का शमन नहीं कर पाया।

"नहीं जी !" घुड़सवार ने मूँछों पर हाथ रखा—"पर भगवान शङ्कर की कृपा रही तो वह दिन भी दूर नहीं। आज हमारे पेशवा के नाम पर मुगलों की नींद हराम रहा करती है !"

"सो तो है !"

"हम तो मना रहे हैं कि एकबार पेशवा-प्रभु की आँखें दिल्ली की ओर घूम भर जायें, बाकी सब हम देख लेंगे। बाबर और अकबर के वंशज, हरम की दीवारों के भीतर तलवार भाँजते हैं...." घुड़सवार की व्यंग्योक्ति पर सबके सब अट्टहास कर उठे।

"हमने सुना है सरदार, महाराज बुन्देला ने पेशवा के पास दूत

भेजे हैं....” स्वर्णकार पुत्र ने धीरे से अपनी जिज्ञासा प्रकट की—“क्या इसबार, बुन्देलों पर ही लोहा बजेगा ?”

“राम-राम, कहता क्या है बे छोकरे !” घुड़सवार बिगड़ उठा—“महाराज बुन्देला के समान वीर, धर्मात्मा हमारा शत्रु होगा !—तू यह बे-सिर पैर की बातें सोच कैसे लेता है बेवकूफ !”

“क्षमा करें, मेरे कहने का तात्पर्य कुछ दूसरा ही था....” गिड़-गिड़ाता हुआ बोला वह—“अभी तो, मेरा अपना विचार है, निज़ाम वाले मोर्चे की खुमारी भी नहीं उतरी होगी....”

“मराठा-घुड़सवारों पर खुमारी नहीं आती लड़के !” उसके अज्ञान पर घुड़सवार मुस्कराया—“अब मैं चलूँगा । चार गिलौरियाँ खिलाकर व्यर्थ की बकवास में सिर चाट गया । अपनी छेनी-हथौड़ी की चिन्ता छोड़कर तलवारबाजी के सपने मत देखा करो बरखुरदार....”

“सरदार !”

“बस, चुपकर....”

“एक बात....” हाथ की कलम को एक ओर रखते हुए उसने गम्भीर स्वर में कहा—“मेरी नसों में भी मराठा-लहू दौड़ रहा है। तलवार का उपयोग अब वर्गविशेष का ही धर्म नहीं रह गया है। युग ने वर्ग-वैषम्य की इस खाई को पाटना आरम्भ कर दिया है। हमारे पेशवा में संस्कार ब्राह्मणों के भले ही हों परन्तु आज कौन नहीं जानता, क्षात्र-धर्म में उनका महत्व !” कहते-कहते वह जोश में आ गया। घुड़सवार चकित-भाव से निहारता रह गया ।

“शाबास !” पीछे से आवाज आयी। सभी ने अचकचाकर देखा, सामने चिमणाजी अप्पा खड़े थे । घुड़सवार ने सहमकर जल्दी से उनका अभिवादन किया।

“मुझे क्षमा करेंगे अप्पा साहब !” स्वर्णकार-पुत्र ने अस्फुट स्वर में कहा।

"नहीं-नहीं !" अप्पा ने आगे बढ़कर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया—"तुम्हारा कथन यथार्थ है स्वर्णकार ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

"जी, लक्ष्मण !"

"तुम्हें तलवार के उपयोग का शौक है ?"

"बहुत !"

"तो तुम पेशवा-महल में आकर मुझसे मिलना । डूबते हुए हिन्दू-धर्म को आज तुम्हारे सरीखे वीर-युवकों की ही तो आवश्यकता है । हमारे इस प्राचीन-कोढ़ वर्ग-वैषम्य ने ही देश को परतन्त्रता की बेड़ियाँ पहनायी हैं । व्यक्तित्व का प्रस्फुटन कर्म के संकेत पर होता है, जन्म के नहीं । सदियों से हमारे देश में, वीर-पूजा के एकमात्र अधिकारी कुछ विशेष जातियाँ ही रही हैं और इसीलिये रक्षा-व्यवस्था के भी वे ही अधिकारी माने जाते थे मगर अब...." अप्पा सहसा रुक गये ।

"मेरा यह परम सौभाग्य...."

"ओह, तुम्हारे इस सौभाग्य का अनुभव, जिस दिन महाराष्ट्र का एक-एक कण करने लगेगा, उस दिन हम म्लेच्छों के कलङ्की-शासन से मुक्त होकर रहेंगे मेरे भाई...." और वे लपककर पास ही खड़े अपने अश्व की ओर बढ़ गये ।

स्वर्णकार-पुत्र, पटेल और घुड़सवार एक दूसरे की ओर देखते हुए बाज़ार के जन-समुद्र में तिर-से रहे चिमणाजी अप्पा के अश्व की ओर निहारते रहे । 'अप्पा साहब, प्रणाम, अप्पा साहब जयशंकर....' जैसे जन-सागर में ज्वार आ गया हो—अभिवादन-शब्दों का !

• •

"तुम्हें क्या हो गया है रानी !" पेशवा के स्वर में विस्मय था—"एक वीर-पत्नी के मुख से ऐसे शब्द शोभ्य नहीं ।" उन्होंने उद्विग्नमना

काशीबाई की कलाई मुट्ठी में जकड़ ली। पास ही रघुनाथ राव, अपने लकड़ी के घोड़े पर बैठने का प्रयत्न कर रहा था। कक्ष में अस्तप्राय सूर्य की सिन्दूरी-सुषमा पसरी हुई थी।

"जाने क्यों, बुन्देलखण्ड के इस प्रयाण से मेरे प्राणों में सिहरन भर उठी है" स्वर में कम्पन था—"आपके न जाने से भी तो कार्य सम्पन्न हो सकता है....बुन्देलखण्ड....मेरे मन के वैकल्य को समझें नाथ !"

"ओह, रानी ! तुमने मुझे सदैव रण-यात्रा के लिये उन्मुक्त-उत्साह से उत्प्रेरित किया है। महाराज छत्रसाल का वह करुणा-बिगलित पत्र....उसकी एक-एक पंक्तियों में उनके कवि-हृदय का लहू....समझती क्यों नहीं तुम रानी ! एक वीर ने, मेरा आह्वान वीर समझकर किया है और तुम....तुम...." उनका कंठ रुद्ध हो गया।

"उफ् !" रानी ने दोनों हाथों से अपना मस्तक पकड़ लिया—"मेरे जीवन-रस को बुन्देलखण्ड झुलसा डालेगा, यह कल्पना करके मैं रोमांचित हो जाती हूँ...."

"पर यह कल्पना तुम करती ही क्यों हो ?"

"जाने क्यों ?" रानी ने जैसे अपने से ही प्रश्न किया—"ऐसा तो कभी नहीं होता था। ओह....नहीं-नहीं, मेरी दुर्बलता आपके मार्ग में बाधक कभी न बनेगी....कभी नहीं...."

"रानी !"

"नाथ, मैं प्रसन्न हूँ....सच, बहुत प्रसन्न ! अपने हृदय की इस कायरता को मरोड़ दूँगी....मैं वीर-पत्नी हूँ....आपके मस्तक पर विजय-तिलक मैं देख रही हूँ परन्तु....मेरा हृदय....उफ् !" और उसके पैर लड़खड़ाये, स्वर भी और जैसे व्यक्तित्व का एक-एक अणु भी, पेशवा ने झपट कर उसे अपनी बाँहों में सम्हाल लिया।

उसी समय—"बहू को क्या हो गया है बाजी !" द्वार से पेशवा-

माता राधाबाई का गम्भीर-स्वर आया। बाजीराव ने जल्दी से पत्नी को पलङ्ग पर लिटा दिया और माँ के चरणों पर झुक गये।

काशीबाई अचेत-सी हो रही थी। कुन्दन-मुख पर श्यामता छा गयी थी।

"माताजी !"

"बाजी, तुम दोनों में कुछ हुआ है क्या ?"

"नहीं, माताजी !"

"तब ?" राधाबाई ने पलङ्ग पर झुककर बहू के मुख पर दृष्टि डाली—"बहू....बहू !"

काशीबाई की बन्द पलकें झटके से खुलीं। क्षणभर टक लगाये देखती रही फिर—"आप....माताजी, आप...." लड़खड़ाता हुआ-सा स्वर—"ओह, माताजी, पेशवा चले गये....बुन्देलखण्ड....ओह !"

"तुझे क्या हुआ है बहू !"

"मुझे, कुछ तो नहीं !"

"बाजी !"

"माताजी...."

"देख, किसी को वैद्यराज को बुला लाने को भेज....मुझे बहू की अवस्था...."

सहसा काशीबाई के सारे शरीर में चेतना की विद्युत्लहर लहराई। उठकर पलंग पर बैठ गयी वह और—"अरे, माताजी आप....ओह !" और जल्दी से नीचे उतर कर चरणस्पर्श कर लिया।

पेशवा के मुखपर संतोष की चमक थी और राधाबाई के मुखपर आश्चर्य की सिकुड़न।

"तुझे क्या हुआ है बहू !"

"मुझे....माताजी....कुछ तो नहीं !" उसने अपने को प्रकृतिस्थ

करने का प्रयत्न तो किया परन्तु असफल रही। आन्तरिक उद्वेग मुख-पर स्पष्ट झलक रहा था—"मैं ठीक हूँ माताजी...."

"नहीं ठीक है!"

"माताजी!" अचकचा-सी गयी वह।

"मुझसे छिपाने का प्रयत्न व्यर्थ है बहू!" राधाबाई का स्वर गम्भीर था पर उसमें कम्पन की मात्रा भी कम न थी—"बाजी के बुन्देल-खण्ड के अभियान पर तुझे किसी अशुभ की आशंका है...."

"माताजी!" काशीबाई की बड़ी-बड़ी आँखों में अश्रु झलके—"अपनी इस दुर्बलता पर लज्जित हूँ....मेरे हृदय में यह क्या हो गया है माताजी...." उसने दोनों हथेलियों में अपना मुख छिपा लिया।

"बाजी!"

"माताजी...."

"तेरा जाना क्या बहुत आवश्यक है, अप्पा से यह कार्य न हो सकेगा क्या?"

"सो बात नहीं माताजी!" बाजीराव की आकुल-आतुर दृष्टि पत्नी की ओर स्थिर थी—"महाराज छत्रसाल ने मुझसे सहायता की याचना की है, मेरे नहीं जाने से...."

"पर बहू की दशा...."

"मैं ठीक हूँ माताजी!" काशीबाई ने उनकी बात को बीच ही में लोकते हुए अत्यन्त गम्भीर स्वर में कहा। मुद्रा पर क्षणभर पूर्व के वैकल्य का लेश भी न था। आन्तरिक आवेग की ज्वाला से उसकी दोनों आँखें दीप्त-सी हो आयी थीं—"महाराष्ट्र के महान् पेशवा के ज्वलन्त व्यक्तित्व को धूमिल होने का साधन बनूँ, इसके पूर्व अपना अस्तित्व समाप्त कर देना श्रेयस्कर समझूँगी। नारी पुरुष के पौरुष के लिये पाथेय होती है और इसी में उसकी सार्थकता निहित है।"

"बहू!"

"माताजी, आपके श्री-चरणों की छाया में मैंने यही तो शिक्षा पायी है...."

"हूँ !" राधाबाई के मुख पर गर्व और हर्ष की छाया थी—"बुन्देलखंड की तेरी तैयारी हो गयी है न बाजी ? महाराज छत्रसाल को मैं भलीभाँति जानती हूँ। हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान में उस नर-पुंगव ने जो कुछ किया है, कर रहा है, वह उत्तर भारत में वही महत्व रखता है, जो दक्षिण में महाराज शिवाजी का ! महाराष्ट्र और बुन्देलखण्ड दो नहीं हैं बाजी....बहू, तूने भी तो सुना है, महाकवि भूषण की ओजस्विनी-कविता में, महाराज शिवाजी और छत्रसाल की तुलनात्मक...." कहते-कहते वे थक-सी गयीं। वृद्धावस्था में तपा हुआ कंठ, आवेग के उस ज्वार को सम्हाल न सका।

बाजीराव के सुन्दर मुख और तिलकमण्डित उन्नत ललाट पर ओज लहर रहा था।

"शाहू महाराज से आज्ञा मिल चुकी है ?"

"हाँ, माता जी !" बाजीराव के स्वर में जोश का उफान था—"मराठा-घुड़सवारों के उत्साह का बाँध टूट रहा है। उत्तर-भारत का यह प्रयाण, हमारी भविष्यत्-महत्वाकांक्षाओं का प्रोज्वल प्रतीक होगा और आप इतना विश्वास रखें, बाजी कभी आपके पुनीत-दुग्ध को कलङ्कित नहीं होने देगा...." उन्होंने झुककर माँ का चरणस्पर्श कर लिया।

"मुझे विश्वास है बाजी !" पुत्र और पुत्रवधू की ओर स्नेह-बिगलित गर्व से निहारती हुई वे धीरे-धीरे कक्ष के बाहर हो रहीं। बाजीराव और काशीबाई, विसुध-भाव से उन्हें जाता देखते रह गये।

"नाथ !"

"रानी...." बाजीराव ने चौंककर पत्नी की ओर देखा—"तुम पुनः शङ्कित हो रही हो ?"

"नहीं, नाथ !"

"तो ?"

"क्या यह सम्भव नहीं कि इस बार मैं भी आपके साथ ही चलूँ। नारी का साहचर्य, पौरुष-पथ को रुद्ध नहीं करेगा, अपितु ज्योति ही प्रदान करेगा। नारी-जीवन की सम्पूर्ण सार्थकता क्या महलों की चहारदीवारी में ही...." स्वर में गाम्भीर्य था परन्तु आँखों में वैकल्य का तारल्य नर्तन कर रहा था।

बाजीराव ने देखा, देर तक देखते रह गये। अपने वर्षों के दाम्पत्य-जीवन में उन्होंने सम्भवतः प्रथम बार, काशीबाई के मधुमय-व्यक्तित्व में इतनी गम्भीरता लक्षित की थी। सहसा उनसे कुछ कहते न बन पड़ा। रानी के अन्तस के उद्वेग की अनुभूति ने उन्हें झकझोर-सा दिया—"रानी !"

"क्या सम्भव नहीं है नाथ !" उसके स्वर में एक विचित्र-सी झनकार थी—"हमारे देश का इतिहास, नारी के बलिदानी और ज्वलन्त नारीत्व के प्रमाणस्वरूप मुखर है नाथ !"

"मैं समझ नहीं पाता कि इस बार तुम्हें इतना सब सोचने की आवश्यकता क्यों पड़ रही है...." वे परेशान-से आकर वातायन के सामने खड़े हो गये—"लग रहा है, तुम किसी शङ्का में...."

"नहीं, नाथ !" काशीबाई ने अपना काँपता हुआ हाथ पेशवा के कन्धे पर रख दिया—"आपसे छिपाऊँगी नहीं, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे बुन्देलखण्ड में मेरी कोई बहुत बड़ी निधि लुट जाने वाली हो !—वह निधि क्या है, उसका रूप क्या है, इसे नहीं समझ पाने के कारण ही इतना उद्वेलित हो उठी हूँ...." और उसने धीरे से पति के कन्धे पर अपना उड़ रहा-सा मस्तक टिका दिया।

"तुम पागल हो...."

"काश कि सचमुच होती !" काशीबाई ने एक दीर्घ उच्छ्वास

लिया—"हाँ, यह हो सकता है कि यह सब कोरी भावुकता का ही परिणाम हो....यही होगा....सचमुच यही...." और झटके के साथ वह घूम कर कक्ष के बाहर चली गयी। बाजीराव स्तब्ध-से खड़े रह गये। कक्ष का एकान्त उन्हें काट खाने लगा। ऐसा लग रहा था, जैसे किसी ने उन्हें, निस्सीम-गगन से एकदम पृथ्वी की ओर फेंक दिया हो और वे तेजी से गिरे जा रहे हों....रघुनाथ राव दादी के साथ ही चला गया था। उन्होंने घबराकर चारो ओर देखा परन्तु वही एकान्त, वही घुटन....

"स्वामी!" उसी समय द्वार पर से परिचारिका ने विनम्र स्वर में कहा—"सभा-कक्ष में, सतारा से आये गोविन्दराव, दर्शन के निमित्त प्रस्तुत हैं, उनके लिये कोई आज्ञा?"

परिचारिका ने डूबते हुए को जैसे तिनके का सहारा उपस्थित कर दिया—"मैं अभी आ रहा हूँ....रघु को लेकर क्या माताजी चली गयीं?" वे द्वार की ओर बढ़ आये।

"हाँ, स्वामी!"

"और....?"

"वे भी उन्हीं के साथ चली गयीं स्वामी! सम्भवतः माताजी इसीलिये पधारी भी थीं—कुछ देर हुई नीराजी भी आये थे परन्तु वापस चले गये...." परिचारिका ने एक साथ ही इतना सब कह डाला।

"अच्छा!"

"कोई आज्ञा?"

"नहीं!" उन्हें इस समय परिचारिका की यह वाचालता भली न लगी—"अब तुम जा सकती हो...." वे घूमकर दीवार से लगे आदमकद आईने में अपनी भङ्गिमा का अन्वेषण-सा करने लगे। अभिवादन के पश्चात् परिचारिका चली गयी। और थोड़ी ही देर

बाद, जब वे सभाकक्ष में आये तो पूर्णतया प्रकृतिस्थ दीख रहे थे। सभा-कक्ष में नीराजी और गोविन्दराव के अतिरिक्त मल्हारराव होल्कर, विट्ठल शिवदेव चिंचूरकर आदि कई मराठा-सरदार भी थे।

सभी ने पेशवा का अभिवादन किया। पेशवा के मुख पर स्वाभाविक-प्रफुल्लता विराज रही थी। अपने लिये निश्चित पीठासनों पर बैठने के उपरान्त सभी कुछ कहने को आतुर-से लगे।

"आप कब आये गोविन्दराव !" पेशवा ने मौन भङ्ग करते हुए पूछा—"मेरा तो अनुमान था, आप इस समय मालवा में उपस्थित होंगे...."

"आपका अनुमान ठीक ही है; परन्तु यह जानकर सम्भवतः आपको आश्चर्य हो कि मैं इस समय सीधा बुन्देलखण्ड से आ रहा हूँ...."

सुनकर पेशवा के साथ ही और सभी भी चौंक पड़े।

"बुन्देलखण्ड !"

"हाँ !" गोविन्दराव ने वहाँ उपस्थित अन्य लोगों पर शङ्कालु-दृष्टि डाली।

"आप निस्संकोच कह सकते हैं !" आशय समझ पेशवा ने कहा—"क्या कोई विशेष...."

"हाँ, मालवा में ही सहसा मुझे पता चला कि बादशाह की ओर से शीघ्र ही मुहम्मद खाँ बंगश मालवे का सूबेदार नियुक्त होने वाला है। निजामुल्मुल्क इस समाचार से झुँझला सा गया है। और...."

कहते-कहते सहसा वह रुके। बाजीराव की मुद्रा गम्भीर हो आयी—"और हमारे कुछ मराठा बन्धु निजामुल्मुल्क के स्थान पर बंगश को नियुक्त करने में प्रयत्नशील हैं....खैर, देखा जायगा....आपने व्यर्थ ही कष्ट किया। ये सब बातें मुझे पहले ही मालूम हो चुकी थीं.... आप अब विश्राम करें....शीघ्र ही आप को दिल्ली की यात्रा करनी

है....” गोविन्द राव उठ पड़े। उन्हें यह समझते देर न लगी कि आगे जो कुछ कहना है, उसे पेशवा एकान्त में सुनना चाहते हैं। उनके जाने के बाद पेशवा ने मल्हारराव होल्कर की ओर देखा—“तुम्हारी सेना क्या बुन्देलखंड की यात्रा के लिये तैयार है?”

“एकदम!”

“बंगश को मैं खूब जानता हूँ। निजामुल्मुल्क की भाँति बुन्देलखण्ड को अपने सूबे में मिलाकर वह पैरों को मध्य-भारत में मजबूती से जमाने के लिये उसने अपने को बहुत शक्तिशाली बना लिया है। सय्यद-बन्धुओं का कृपा-पात्र होने के कारण, मुगल-सल्तनत का अपार कोष, उसके लिये खुला रहेगा, इसे भी हमें सदैव स्मरण रखना होगा....”

“अभी तक उसने मराठा घुड़सवारों से हाथ नहीं मिलाया है राव!” होल्कर ने तीव्र स्वर में कहा—“इस बार खाँ साहब को भली-भाँति मालूम हो जायगा....जनाब ने सोचा भी न होगा कि इतनी दूर से हम सहसा सिर पर आ पड़ेंगे....” अनायास ही उसका हाथ अपनी मूँछों पर जा पड़ा। कुछ दिनों पूर्व तक मल्हारराव और उसके परिवार ने मराठा-राज्य में सेवकों का काम किया था, परन्तु बाजी-राव की गुणग्राहकता ने उसे एकबारगी सेवकों की श्रेणी से खींचकर सरदारों की कोटि में बिठा दिया था। अपनी व्यक्तिगत-वीरता और दुस्साहसिक कार्यों के कारण, उसने मराठी-सेना में सम्मान भी पा लिया था। दोनों हाथों में तलवार लेकर, सैकड़ों के सिरों पर से अपने घोड़े को उड़ा ले जाने का साहस, होल्कर को क्रमशः सरदार-मण्डली के बीच शीर्ष स्थान बना लेने में, सहायक सिद्ध हो रहा था। पेशवा के लिये उसके हृदय में अपार श्रद्धा थी।

“अप्पा साहब भी चलेंगे राव!” नीरू ने धीरे से पूछा—“बुन्देल-

खण्ड में हम सबका चला जाना उचित होगा क्या ?" स्वर से उसके तारुण्य की अल्हड़ता छलकी पड़ रही थी।

पेशवा मुस्करा उठे—"और तू कहाँ जायगा रे ?"

नीरू चौंका—"राव, क्या....क्या मैं आपके साथ न चलूँगा ?" निराशा ने उसके स्वर में कम्पन ला दिया—"क्या अभी भी मैं आपकी परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सका हूँ ?"

होल्कर और शिवदेव भी मुस्करा पड़े।

"मैं सोच रहा हूँ, तुझे और नाना को गुजरात की ओर भेज दूँ....ठीक है न ?"

"राव...."

"बोल न ?"

"गुजरात में क्या रखा है ?"

"तब बुन्देलखण्ड में ही क्या ले लेगा! नहीं, तुझे इतनी दूर जाने की आज्ञा मैं कभी नहीं दूँगा। दादा भी संभवतः यही राय देंगे ?" उन्होंने मुख पर कृत्रिम गंभीरता लाकर उसकी ओर देखा।

"तो क्या आपने निश्चय कर लिया है ?"

"हूँ !"

"क्या मैं कमजोर हूँ, कायर हूँ राव !" झुँझला-सा उठा था वह—"मैंने आपके सामने अनेक परीक्षायें दी हैं, फिर भी आपको विश्वास नहीं। मेरा यह दुर्भाग्य ही तो है...." बाजीराव ने अनुभव किया, अगर उसे थोड़ा भी छेड़ा जायगा तो रो पड़ेगा।

"कौन कहता है रे !"

"आप ही तो !"

"पागल...."

"राव, आप यह कब समझेंगे कि अब मैं निरा बच्चा नहीं रहा !"

"ओहो, इसे तो मैं कभी का समझ गया हूँ कि तू एकदम बूढ़ा

हो गया है !" और पेशवा के साथ ही होल्कर तथा शिवदेव भी अट्टहास कर उठे। पेशवा ने तुरत ही हँसी रोक कर कहा—"अच्छा अब यहाँ से हट। माता जी कब से तेरी प्रतीक्षा कर रही हैं...." बड़ी मुश्किल से वह उठा और डगमग पगों से सभा-कक्ष के बाहर हो रहा। आँखों में स्नेह लिये पेशवा निहारते रहे, जब तक वह द्वार की ओट न हुआ।

"राव !"

"हाँ !"

"विचित्र स्वभाव है लड़के का...."

"हाँ, और असाधारण भी। दादा की परम्परागत-वीरता का अपूर्व प्रतिनिधित्व कर सकने के तत्व अभी से उसमें देखे जा सकते हैं। इतने अल्पवय में शारीरिक-शक्ति और दुस्साहसिक-प्रकृति में उसने जितनी ऊँचाई पा ली है, जानते हो न ?"

"हाँ, राव !"

एक दीर्घ निश्वास के साथ उन्होंने अपने को एकदम से मोड़ लिया। दूसरे ही क्षण वे जब अपनी सैनिक-व्यवस्था पर विचार करने लगे तो होल्कर को आश्चर्य हुए बिना न रहा।

उनके चरित्र की सबसे प्रमुख और महान् यही विशेषता थी। गंभीर से गंभीर परिस्थिति में अपनी स्वाभाविक-धीरता न खोने में, वे महाराज शिवाजी के दूसरे संस्करण-से थे।

महत्वाकांक्षा की आग में ज्वलन्त-से बने उनके नयनों के समक्ष रह-रह कर महाराज छत्रसाल का वह काव्यमय पत्र आ जाता था। विशेषकर उसका वह दोहा—

'जो गत ग्राह-गजेन्द्र की सो गत भइ है आज
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज....'

एक-एक शब्द अन्तस को सालते रहते थे। उमंगें ज्वालामुखी बनकर भड़क उठना चाहती थीं और वे भड़क कर ही रहीं....

फरवरी १७२६ का वह मास, महाराष्ट्र की देश-व्यापी महत्वाकांक्षा का प्रथम-चरण था....

● ●

१७२३ से निरन्तर ६ वर्षों तक, मुगल-सेनायें बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों से टकराती रहीं। सय्यद-बन्धुओं के पतन में, बादशाह का सहायक होने के कारण, मुहम्मद खाँ बङ्गश को सल्तनत की ओर से जो मान-सम्मान मिला था, उससे उस वीर-पठान के मन में; इलाहाबाद की अपनी सूबेदारी से बुन्देलखण्ड को मिलाकर, दूसरा रुहेलखण्ड स्थापित करने की कल्पना बलवती हो उठी।

महाराज छत्रसाल वृद्ध हो चले थे। पचास-वर्षों का दीर्घ काल उन्होंने मुगलों से जूझने में व्यतीत कर दिया था। औरङ्गजेब के जीवन की आखिरी घड़ियों में; भारत की तीन हिन्दू-शक्तियों ने, दो सौ वर्षों से अडिग खड़े मुगल-सलतनत को जर्जरित बनाकर छोड़ दिया था— मराठा, बुन्देला और सिख। इन तीनों में सिखों का अपना अलग धर्म होने के कारण, उनका प्रभाव-क्षेत्र सीमित था। परन्तु मराठे और बुन्देले हिन्दुत्व के हिमायती बनकर, मुग़ल-सल्तनत के हृदय पर आघात कर रहे थे। हिन्दू-धर्म पर इस्लामी जनून में औरङ्गजेब ने जो अत्याचार किये थे, उसकी महाराष्ट्र और बुन्देलखण्ड की प्रतिशोधी-जागृति पूरी कीमत वसूल कर रही थी। अन्त समय में औरङ्गजेब ने अपने इस्लामी-ज़नून के दुष्परिणामों से, सल्तनत की ईंटों का धँसकना देख लिया था। निस्सहाय-सा होकर उसने महाराज शिवाजी और वीर छत्रसाल से मैत्री स्थापित करने की चेष्टा करनी चाही; पर देर हो चुकी थी। उसके मरने

के बाद, सल्तनत की हिलती नींव लड़खड़ाने लगी और उसकी लड़-खड़ाहट को हिन्दू-जागृति ठोकरें लगाने लगी....

सल्तनत के सङ्केत पर मुहम्मद खाँ बङ्गश पूरी शक्ति से बुन्देल-खण्ड पर टूट पड़ा। हर मास वह बादशाह को समाचार भेजता, छत्रसाल से अमुक इलाका, अमुक किला छीन लिया—हमारी सेना बीसों कोस तक आगे बढ़ गयी है; परन्तु वर्षों के इस खरीतेबाजी का परिणाम शून्य ही निकला। बुन्देलखण्ड पर वीर छत्रसाल की ध्वजा वैसी ही फहराती रही। बुन्देलों की मार से संत्रस्त अपनी सेना की व्यवस्था में, करोड़ों रुपयों का होम वैसे ही बङ्गश करता रहा.... उसके पास साधनों की कमी न थी; परन्तु छत्रसाल की शक्तियों में थकन भरने लगी। उनकी अवस्था भी सत्तर वर्ष की हो चली थी।

अन्ततः निर्णायक-युद्ध का अवसर आ ही गया। बङ्गश की असफलओं से दिल्ली के महाप्रभुओं को असन्तोष होने लगा। सहायता की अजस्र-धारा रुद्ध पड़ने लगी। रुपयों की कमी से सेना में असन्तोष व्याप्त होने लगा। उधर बुन्देले, हर पग पर अपनी तलवारें चमका रहे थे। छत्रसाल की थकी हुई, निष्प्राण-सी हो रही शक्ति भी आखिरी दाँव लगाने को कटिबद्ध हो उठी थी।

पेशवा के पास सहायता की याचना करने के उपरान्त भी छत्रसाल की चिन्ता कम न हुई थी। इतनी दूर की यात्रा करके, पेशवा की सहायता समय पर मिल पायेगी, आशा न थी।

दोनों ही परेशान थे—परिस्थितियाँ उन्हें विमूढ़ किये थीं।

बङ्गश ने छत्रसाल से सुलह करने का निश्चय कर लिया। मुग़ल-हुकूमत के करोड़ों रुपयों का, हजारों सैनिकों का बलिदान करने के बाद बेचारे को सुलह के सिवा और कुछ न मिला।

सुलह के प्रस्ताव का छत्रसाल ने सहर्ष-स्वागत किया।

दोनों प्रतिद्वन्द्वी मिले, सन्धि की शर्तें तय हुईं। सुलहनामा तैयार किया गया।

बङ्गश ने स्वीकृति के लिये, अपनी ओर से विनम्र याचना के साथ बादशाह को पत्र लिखा। दिन पर दिन बीतते रहे, बीतते रहे। बादशाह की स्वीकृति की प्रतीक्षा में, बंगश जैतपुर के पास पड़ाव डाले मस्त पड़ा हुआ था। अपने बहुत-से सैनिकों को उसने छुट्टियाँ भी दे दीं। वर्षों की मार-काट के बाद, अपने खीमों में पठान-सरदारों के साथ बङ्गश, सुरा-सुन्दरी की आराधना में तल्लीन था।

पास ही छत्रसाल, बाजीराव की प्रतीक्षा में अपनी सेना के साथ पड़ाव डाले थे।

पेशवा पूना से बुन्देलखण्ड की ओर विशाल-सेना के साथ चल चुके हैं, यह समाचार मिल चुका था। उधर दिल्ली के महाप्रभुओं की ओर से गुप्तरूप से सन्देश आ रहे थे—अगर हो सके तो मुहम्मद खाँ बङ्गश को समाप्त कर दो, इससे बादशाह को प्रसन्नता होगी। छत्रसाल कुछ निश्चय नहीं कर पा रहे थे। इतने दिनों के दीर्घ-संघर्ष से बुन्देले टूट-से चुके थे न।

मराठा-घुड़सवारों के साथ उमड़ते हुए पेशवा अत्यन्त क्षिप्र गति से बुन्देलखण्ड के निकट पहुँच रहे थे। सुरा-सुन्दरी की उत्ताल-तरङ्गों से अठखेलियाँ कर रहा बङ्गश अचेत ही रहे, इसलिये रोज, छत्रसाल की ओर से बहुमूल्य उपहारों के साथ, बुन्देला-सरदार उसके पास पहुँच रहे थे।

एक दिन।

महाराज छत्रसाल के तृतीय पुत्र जगतराज, बङ्गश से मिलने आये। लखनऊ और काशी की विख्यात नर्तकियाँ, साक़ी का पार्ट अदा कर रही थीं।

बङ्गश नशे में चूर था।

"सरदार, आप भी शौक फरमायें....एकदम ईरान से, खासतौर से मँगाई है...."

"मुझे तो माफ ही करें खाँ साहब !"

"क्या कुछ धरम-करम की अड़चन है ?"

"वही समझ लें...."

"अच्छा-अच्छा !" कहकर वह अट्टहास कर उठा।

"दिल्ली से हुक्म आने में तो बहुत देर लग रही है खाँ साहब !" जगतराज़ ने मुलायम आवाज में कहा—"कहीं ऐसा तो नहीं कि बादशाह को सुलहनामे पर दस्तखत करने में कुछ एतराज़ हो ? अगर ऐसा हुआ तो...." कहते-कहते रुक गये वे।

"एतराज होगा !" बङ्गश ने मुँह सिकोड़ते हुए कहा—"मेरा नाम मुहम्मद बङ्गश है, मुगल बादशाह को अपने एक इशारे में राहेदोजख की ओर रागिब करने की ताकत रखता हूँ जनाबेआला.... आपने मुझे समझ क्या लिया है ? हुँहः !"

"सो तो है ही !"

"समझदार मालूम पड़ते हो !" बङ्गश पर नशा सवार था या वही नशे पर सवार था, कहना कठिन था—"इस मुहम्मदशाह को—अरे, वही, जो आजकल तख्तेताउस पर बैठता है, एक दिन....एक दिन मेरे इस जूते पर सिर रखना पड़ेगा और जानते हो, मैं उसे यूँ उछाल फेकूँगा...."

"इसमें क्या शक है, खाँ साहब...."

"निज़ाम का नाम तो तुमने सुना ही होगा....सुना है न ?"

"जरूर !" वहाँ के अत्यन्त उच्छृङ्खल-कुत्सित वातावरण से जगतराज का माथा भन्ना रहा था परन्तु बड़े प्रयत्न से अपने को जब्त किये हुए थे—"पेशवा ने उन्हें बुरी तरह...."

"ओह, हा-हा-हा....पेशवा....क्या नाम है उस काफिर का, बज्जी-

राव....ये साले मराठे शैतान भी कम नहीं होते कुमार साहब ! पर देखना, उसे यूँ मसल कर फेंक दूँगा....जिस दिन उसे पकड़वाकर अपने जूते पर शहद चटाऊँगा....लाहौल बिलाकुव्वत, तुमने तो सारा नशा ही किरकिरा कर दिया...."

"खाँ साहब !" जगतराज के अधरों पर व्यंग्यमयी मुस्कान तिर उठी—"पिताजी ने अर्ज किया है...."

"अर्ज किया है....क्या बात है, कहिये....कहिये....आज तबीयत में सरूर है, चाहे जो कहो, माबदौलत उसे कुबूल फरमायेंगे....नूरी, अमाँ, ओ मेरी हूर !"

"हम हिन्दुओं का त्यौहार होलिकोत्सव पास आ रहा है...."

"अच्छा !"

"अगर हमारी सेनायें आमने-सामने रहीं तो सम्भव है, कोई अप्रिय घटना घट जाय....अच्छा होता, हम त्यौहार मनाने के लिये थोड़ा पीछे हट जाँय....होली का त्यौहार तो आप जानते ही हैं...."

"तेवहार ! जनाब ने खूब फरमाया...." नशे में झूमता हुआ बङ्गश हँसा—"कसम कुरआन की, वह तेवहार है कि ज़लालत...." और उसने एक साथ ही कई जाम खाली कर दिये ।

"तो इसमें आपको कोई एतराज नहीं होगा न ?"

"नहीं जनाब, इसमें एतराज़ की क्या बात है...."

काम हो चुका था । जगतराज उठ पड़े ।

"तो चल दिये ?"

"हाँ !"

"अमाँ, आपने मेरी हूर का मन नहीं रखा, इसका मुझे सख्त अफसोस है...." कहते हुए उसने नूरी को अपने पास खींच लिया—"क्या लजीज चीज है....अमाँ, चखकर तो देखो....खुदा की क़सम...."

मगर तब तक वे बाहर चले गये थे।

नूरी उसके बाँहों में पड़ी अट्टहास कर उठी—"इन हिन्दुओं में दम नाम की चीज तो होती नहीं मेरे आक़ा! क्या खाकर पचायेंगे....क्या यही छत्रसाल महाराज का—"

"हाँ, था एक...."

"क्या उन्हें बहुत से हैं?"

"सुनता हूँ, बूढ़े मरदूद ने पचासों पिल्ले पैदा कर रखे हैं...."

"ताज्जुब है...."

"है भी तो मरदूद शैतान! जानती हो, एक बार अपने हाथी के सामने अड़ गया था....मैंने अपने नेजे का का भरपूर वार उसकी छाती पर किया....पर....दूसरे ही दिन सुना, भला-चङ्गा है...."

"आपके नेजे का वार खाकर भी बच गया....अल्लाह की क़सम, तब तो पूरा जिन्न ही है!"

बङ्गश के उन्मत्त हाथ, नूरी के अङ्गों से खेलते हुए सहसा खतरनाक हो उठे, बेचारी चीख पड़ी; पर उसने उस पर बिना ध्यान दिये पूर्ववत् बहकते स्वर में कहा—"मेरी हूर, कभी मैदानेजंग छत्रसाल की में तलवार—कुफ़्र है साले की तलवार—देख लो तो तुम्हारी आँखें अन्धी हो जाँय...."

और तब खीमें में वासना नग्नातिनग्न होकर ताण्डव कर रही थी।

दूर पर, एक खीमें में मुजरा जमा हुआ था। कोई कोकिल-कण्ठी कूक रही थी—

आग़ोश में आने की कहाँ तब है उसको
करती है निगह जिस क़दे नाज़ुक पै गिरानी
ऐ 'वली' रहने को दुनिया में मुक़ामे आशिक़
कूचये ज़ुल्फ़ है, आग़ोशिये तनहाई है....

शम्सउद्दीन वलीअल्लाह का क़लाम, फागुनी हवा पर तिरता हुआ, वातावरण में कम्पन भर रहा था।

सामने बुन्देला-खीमों में हलचल-सी मची हुई थी। बुन्देला-जवानों में खुमारी नहीं स्फूर्ति लहरा रही थी। पठान-सैनिकों पर मदहोशी का आलम गहरा ही होता जा रहा....

● ●

अपनी विशाल सेना को यथाशक्य तेजी से घसीटते हुए पेशवा बाजीराव, बुन्देलखण्ड से केवल २२ मील के फासले पर रह गये तो, पठानों की मदहोश आँखों में, आश्चर्य अंगारा बनकर दहका। मुहम्मद खाँ बंगश को, जब इस 'बला' की खबर दी गयी तो झुँझलाकर उसने अयूब खाँ नामक सेनानायक पर शराब की सुराही खींच मारी—"क्या बत्तमीज अल्फ़ाज़ है।"

चोट खाकर पहले तो वह बिलबिला उठा मगर अपने को सम्हालकर थोड़ा पीछे हटता हुआ बोला—"नहीं, किब्ला, पेशवा बाजीराव की बेइन्तहाँ फौज एकदम सिर पर आ गयी है...."

"क्या कहा ?"

"किब्ला, बात सही है...."

वह हड़बड़ाकर उठ पड़ा और बीसों दिनों के बाद, पहली बार अपने खीमे के बाहर, चारो ओर घबराये-से खड़े अपने सैनिकों के सामने आया। शराब की मदहोशी टूट गयी थी, बिखर गयी थी। भरी दोपहरी में, बंगश की खुली आँखों के सामने तारे नाच उठे।

आनन-फानन में चुनिन्दा-नायकों की गोष्ठी का आयोजन किया गया।

पेशवा बाजीराव हौवा बनकर पठानी-सेना में छाया हुआ था।

जासूसों की दौड़-धूप आरम्भ हो गयी। इस नयी बला में, बुन्देला-सेना की क्या मति-गति है—इसकी ओर किसी का खयाल ही न गया।

उधर पेशवा आँधी की तरह उमड़ा आ रहा था।

महाराज छत्रसाल के प्रतिनिधि अगवानी के लिये दौड़ पड़े।

देखते ही देखते २२ मील की दूरी लाँघ कर मराठा-सेना ने, मुहम्मद खाँ बङ्गश की मुट्ठी भर घबराई-आतङ्कित सेना को चारो ओर से घेर लिया।

बङ्गश के होश फाख्ता हो गये।

उस समय तो उसके आश्चर्य और भय की सीमा न रही, जब तोपों के सहारे वह मराठा-घुड़सवारों की दीवार को चीरता अपनी सेना को आगे बढ़ाने का कठिन-प्रयास कर रहा था—तभी पीछे पड़ाव डाले पड़ी बुन्देलों की सेना ने सहसा आक्रमण कर, पीछे छूटे खजाने, रसद तथा युद्ध सामग्रियों पर अधिकार कर लिया!

सामने अन्धकार छा गया। इधर मराठा-घुड़सवारों की बिजली की तरह चमक रही तलवारों से पठान-सेना बेतरह हलाल हो रही थी। एक-एक क्षण मूल्यवान् था। अपनी मूर्खतापूर्ण-अय्याशी पर खीझा हुआ बंगश जल्दी से हाथी से उतर कर घोड़े पर सवार हुआ। तोपों की दीवार ढह-सी गयी थी। आमने-सामने की लड़ाई में, पठानों की वही दशा थी, जो सिंह के सामने भेड़ियों की....

उसी समय—

दो-तीन सौ चुने हुए घुड़सवारों के साथ पेशवा बाजीराव, सामने के पठान और मुग़ल सैनिकों के सिरों को तलवार से पोंछते हुए बंगश की ओर बढ़ते दीख पड़े। अगल-बगल से मल्हारराव होल्कर, शिवदेव, नीराजी कदम गाजर-मूली की तरह संहार करते बढ़ रहे थे। बंगश की सेना में हाहाकार मच गया।

डेढ़-दो हजार पठान योद्धाओं को साथ लेकर बंगश के कई सेना-

नायक अपने स्वामी के रक्षार्थ लपके। अपनी वीरता पर बंगश को नाज था; परन्तु उसके अनुभवी-मस्तिष्क में यह कौंधते विलम्ब नहीं हुआ कि अगर जल्दी ही कोई उपाय न किया जायगा तो निस्सन्देह बची-खुची सेना के साथ ही उसका भी खात्मा हो जायगा। पेशवा की क्षिप्रता की झलक देखने का उसे यह पहला ही मौक़ा मिला था। वैसी विकट परिस्थिति में भी रोमांच हो आया। मुख से अनायास ही फूट पड़ा—'ग़ज़ब है!'

"होल्कर, बंगश पास ही है!" बाजीराव की तड़प थी।

"पीछे हटो....पीछे...." बंगश की घबराई पर तीव्र आवाज़। देखते ही देखते उसने अपनी सेना की बागडोर अपने हाथों में सम्हाल ली। गड़बड़ी में, क्षणभर के लिये दोनों ओर की तलवारें स्तब्ध-सी रहीं और तब पेशवा ने विस्मित दृष्टि से देखा, मराठा-घुड़सवारों के कठिन घेरे को तेज़ी से चीरता हुआ बंगश जैतपुर के विशाल-सुदृढ़ किले की ओर अपने को खींचे लिये जा रहा है।

उसी समय नीराजी अपना घोड़ा बढ़ाकर पेशवा के निकट आया। मस्तक और कंधे से लहू की धारा बह रही थी। पेशवा ने देखा—उसके सुकुमार मुखपर अपूर्व दृढ़ता विराज रही है। दायें हाथ में तनी हुई उसकी दुधारी तलवार से अब तक लहू टपक रहा था।

"राव....बंगश मैदान छोड़ रहा है...."

"हाँ, नीरू!" पेशवा का स्वर असाधारण रूप से गम्भीर था, शान्त था—"वह संभवतः किले में शरण लेने जा रहा है...." उसे आगे बढ़ता देख वे बोल उठे—"अरे, तू आहत हो गया है, कहाँ जा रहा है?"

"बंगश को रोकना होगा राव!" उसने व्यस्त-भाव से कहा—"उसके एक सरदार ने मेरे कन्धे पर अपने नेजे का वार किया है, मैं उसकी गर्दन उतारे बिना चैन न लूँगा...."

"पागल !" खून और लाशों के कीचड़ पर खड़े पवन पर बैठे पेशवा उसकी अल्हड़ता पर हँस पड़े—"युद्ध-क्षेत्र में व्यक्तिगत-प्रतिद्वन्द्विता पर ध्यान नहीं दिया जाता....चल पीछे हट....ओह, होल्कर, बंगश आखिर निकल ही गया, शैतान की तत्परता प्रशंस्य है...."

बंगश की सेना आँधी की तरह किले की ओर भागी जा रही थी।

"पीछा...." होल्कर ने हाथ से गाल के बहते रक्त को झटकारते हुए, जल्दी से कहा—"दुष्ट मेरी तलवार का वार बचाकर कैसे निकल गया, आश्चर्य होता है...."

"बंगश बहुत अनुभवी सेनापति है होल्कर, साथ ही तेज भी। पीछा करना व्यर्थ होगा, शिकार हाथ से निकलकर खतरनाक हो गया है....उसकी तोपें अब पीछा करने वालों को आसानी से अपना निशाना बना लेंगी....जाने दो, महाराज छत्रसाल ने उसके रसद-खजाने पर अधिकार कर लिया है....क़िले का घेरा डालने की व्यवस्था करो....देखता हूँ, कितने दिनों...." उसी समय दूर से पचीसों तोपों की गड़गड़ाहट आयी। पीछा करनेवाली मराठों की अग्रिम-टुकड़ी का सफाया हो चुका था।

"ओह, होल्कर !" पेशवा तड़प उठे।

मल्हार राव होल्कर का घोड़ा इसके पहले ही उड़ गया था।

पेशवा ने एक दीर्घ निश्वास लिया और तभी उनकी दृष्टि नीरू पर पड़ी, घावों से अत्यधिक खून निकलने के कारण वह मूर्च्छित-सा अपने घोड़े की पीठ पर झुका हुआ था। पेशवा ने लपक कर उसे सम्भाल लिया। स्वयं उनका सारा शरीर छोटे-मोटे घावों से लहू-लुहान हो रहा था।

सन्ध्या की कालिमा धीरे-धीरे आकाश से पृथ्वी पर उतरी आ रही थी।

● ●

पेशवा बाजीराव के घावों पर पट्टियाँ बँधी थीं; परन्तु महाराज छत्रसाल के आगमन का समाचार पाते ही वे खीमें के द्वार तक चले आये। उन्होंने झुककर महाराज को प्रणाम किया। वृद्ध बुन्देला-सरदार ने पेशवा को अपनी भुजाओं में भर लिया।

"मैं तो स्वयं आनेवाला था महाराज!"

"तो क्या हुआ बेटा!" महाराज की वाणी स्नेहार्द्र हो रही थी—बंगश जैसे ग्राह से मुझ गज का मोक्ष कराने वाले तुम मेरे लिये भगवान हो!"

पेशवा ने उन्हें सादर अपनी गद्दी पर बिठाया—"आप मुझे यह बहुत बड़ा सम्मान दे रहे हैं, जिसके योग्य आपका यह तुच्छ पुत्र कदापि नहीं!"

"नहीं वत्स!"

"मेरा तो यह कर्तव्य था महाराज!"

"वत्स!"

"आज्ञा दीजिये।"

"बंगश हीन-सन्धि कर के अपना मुँह काला कर चुका है परन्तु मराठों ने इसके लिये जो मूल्य चुकाया है अपने निस्वार्थ बलिदान से, उसे महाराष्ट्र की धरती कभी भूल न पायेगी...." वृद्ध महाराज का स्वर भावावेग में काँप रहा था—"तुम्हें देखकर, आज जाने क्यों पूज्य शिवाजी महाराज का स्मरण हो रहा है बेटा! आज से वर्षों पूर्व, जब उनके दर्शनों का सौभाग्य मिला था, तब उनके व्यक्तित्व के तेज में मेरा अस्तित्व खो-सा गया था....विश्वास करो, तुम्हारे समक्ष भी...."

"नहीं-नहीं, आप मेरे पितातुल्य हैं महाराज!" पेशवा उन्हें बीच ही में रोकते हुए श्रद्धा-भाव से थोड़ा झुकते हुए बोल उठे—"महाराष्ट्र केवल मराठों का नहीं, उस पर सम्पूर्ण हिन्दुओं का समान अधिकार है। मातृभूमि के लिये आपने, बुन्देलों ने, जिस अपूर्व आत्म-त्याग एवं शौर्य का परिचय दिया है, उसके समक्ष कोई भी देशानुरागी श्रद्धा से झुकेगा और मैं भी...."

"बेटा!"

"आज्ञा?"

"मैं तो अब थक चला हूँ...." जैसे वह कुछ कहते-कहते भी न कह पाये हों—"सचमुच थक गया हूँ बेटा!"

"महाराज...." पेशवा का स्वर जितना ही विनम्र था, उतना ही गम्भीर भी—"थकता है शरीर, आत्मा तो अथक्य ही होती है और आपकी आत्म-ज्योति से बुन्देलखण्ड का चप्पा-चप्पा प्रकाशित हो उठा है....उस प्रकाश को कभी थकन की कालिमा स्पर्श न कर सकेगी। आने वाला युग उसी प्रकाश को पाथेय बनाकर अपना मार्ग प्रशस्त करेगा...." उसी समय घबराये हुए-से, मराठा-सेना के वैद्यराज, द्वार पर दीख पड़े। पास ही पेशवा का एक व्यक्तिगत-सचिव भी घबराया हुआ खड़ा था।

"श्रीमन्त!"

"आइये, वैद्यराज!" पेशवा ने गम्भीर-भाव से सादर कहा—"बीमारी का प्रकोप शान्त हुआ?"

"नहीं, श्रीमन्!"

"तो?"

"कल सन्ध्या से अभी तक सत्तर घोड़े, सत्ताईस साड़नियाँ और लगभग...." सचिव ने चिन्तित भाव से कहा—"यहाँ का वातावरण,

मराठों के लिये मृत्यु की साक्षात् विभीषिका बन गया है। अब तक सेना के लगभग सात सौ जवान बीमारी में...."

"सात सौ !" महाराज छत्रसाल सुनकर बुरी तरह चौंके—"नहीं-नहीं, ऐसा तो...."

"दुःख है कि आपको विश्वास नहीं हुआ महाराज !" राजवैद्य अपने श्वेत केशों पर उँगलियाँ फिराते हुए बोले—"अगर सेना को इस स्थान से अविलम्ब हटाया न गया तो संख्या सहस्रों हो जायगी। श्रीमन् पेशवा को, शीघ्र ही कोई निर्णय करना होगा...."

पेशवा ने महाराज छत्रसाल की ओर देखा—"महाराज, अब हमारा कार्य तो समाप्त हो गया है...."

"तो ?"

"हमें लौटने की आज्ञा !"

"पर....क्या यहीं से बेटा !" महाराज ने आतुर भाव से कहा—"ऐसा कैसे होगा ! राजधानी में बिना तुम्हारे मैं प्रवेश करूँगा.... बुन्देलखण्ड का बच्चा-बच्चा तुम्हारे लिये पलक-पावड़े बिछाये...."

"उसे अभी रहने ही दें तो अच्छा हो महाराज !"

"ऐसा नहीं होगा बेटा !"

"हमारा समय, स्वागत-समारोहों में व्यतीत करने का नहीं महाराज ! परतन्त्रता की काली घटायें हम पर किसी समय वज्रपात कर सकती हैं। मैं आपका अपना हूँ और अपने के लिये यह...."

"जो भी हो, तुम अपने इस वृद्ध की बात काटोगे नहीं, मुझे विश्वास है बेटा !" महाराज ने एक दीर्घ उच्छ्वास के साथ कहा। स्वर में आन्तरिक-ममत्व छलका पड़ रहा था।

पेशवा चाहकर भी अस्वीकार न कर सके।

मराठा-सेना में बीमारी फैल जाने के कारण, सैनिकों के बीच अत्यन्त विकलता भर उठी थी, आये दिन सौ-पचास की संख्या की

कमी ने तो उन्हें आतङ्कित ही कर दिया था। पेशवा बाजीराव ने, आवेश में आकर अपनी सेना को, महाराष्ट्र से सैकड़ों मील दूर तक घसीट तो लिया था; परन्तु उनकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर, महाराष्ट्र में अनर्थ की सृष्टि करने की ओर शत्रुओं का ध्यान जा सकता है और तब ?—तब की कल्पनामात्र से रोमाञ्च हो आता था। फिर मुहम्मद खाँ बङ्गश का पुत्र, पठानों की एक बड़ी सेना के साथ, इलाहाबाद में डँटा है....बङ्गश उससे मिलकर नयी झंझट खड़ी करने से बाज नहीं आयेगा—आदि समस्यायें उन्हें अविलम्ब महाराष्ट्र की ओर प्रयाण कर देने को उत्प्रेरित कर रही थीं। यद्यपि मराठा-घुड़सवारों ने कायम खाँ को, उसके पिता बङ्गश की तरह ही दहशत दिला दी थी—तथापि....

"क्या सोच रहे हो बेटा !"

"महाराज, कुछ तो नहीं...." विचार-धारा टूट गयी—"आप के अनुरोध की अवहेलना करना हमारे लिए सम्भव नहीं परन्तु हमारा एक-एक क्षण बहुमूल्य है, इसका ध्यान अवश्य रखेंगे...."

"अवश्य, बेटा !" महाराज ने काँपते हाथ से पेशवा की कलाई पकड़ ली।

उसी समय बीमारी के भय से सन्त्रस्त मराठा-सेना को कूच का डङ्का बजवाकर तैयारी करने की सूचना दे दी गयी।

महाराज छत्रसाल की राजधानी—पन्ना, विजयी पेशवा बाजीराव के स्वागत में हर्षविह्वल-सी बाट देख रही थी।

मस्तानी

रात आधी से अधिक बीत चुकी है। चारो ओर सन्नाटा है। ओरछा नगर का बाहरी हिस्सा—दूर पर, चाँदनी से आँख-मिचौली खेलती पहाड़ियाँ, रजतोज्वल हो उठी हैं। वातावरण में रह-रहकर वीणा की झनकार थिरक उठती है। पेशवा बाजीराव स्थिर खड़े पवन पर विसुध-से बैठे, सामने दीख रही ईमारत के ध्वंसावशेष की ओर टक लगाये निगार रहे थे। वीणा की झनकार उसी ओर से आ रही थी।

सहसा पैरों ने पवन को सङ्केत-सा किया और तब वह एक उछाल के साथ उसी ओर को बढ़ गया। सन्नाटा टापों की आवाज से बिखर गया। एक झटके के साथ वीणा के तार चीत्कार कर उठे और तब सब कुछ शान्त था—मुखर था तो वही, बिखरा हुआ सन्नाटा! पवन रुका। पेशवा ने देखा, वे ईमारत के पास आ गये हैं। बगल में सैकड़ों वर्षों की वय वाला एक बरगद खड़ा-खड़ा जैसे ऊँघ रहा था। ईमारत पूर्णतया ध्वस्त हो गयी थी। आगे के हिस्से में दो कोठरियों की जीर्ण दीवारों को मिट्टी के गारे से सँवार कर रहने योग्य बना लिया गया था। टूटे दरवाजों के कपाट तो बन्द थे; परन्तु अन्दर जल रहे दीपक का क्षीण आलोक, छिद्रों से बाहर झाँक रहा था।

"मस्सो!"

"हाँ!"

"तार टूट गये?"

"हाँ !" उनींदा-सा, खोया-सा स्वर—"ये तार आखिर टूट क्यों जाते हैं अनु !"

किसी तरुणी के कण्ठ से फूटा खिलखिल, देर तक गूँजता रहा; फिर—"दरबार में, जब तुम नाच रही थीं तो काँटा सा पैरों में चुभ गया था, क्या भूल गयीं ?"

"हट !"

"और जब तुम आह करके फर्श पर बैठ गयीं तो....तो...."

"तो ?"

"वह मराठा....क्या नाम है उसका....वही....समझ रही हो न मस्सो रानी ! उठकर खड़ा हो गया था....मैंने देखा था, उसकी आँखें लाल हो रही थीं, जैसे उन बड़ी-बड़ी रतनारों में भी सुई चुभी हो...." वही खिलखिल वातावरण को भेदता-सा, झकझोरता-सा। क्षणभर मौन रहा। बरगद ने अँगड़ाई-सी ली, डालियों पर बसेरा बनाये, बीसों कपोतों ने, एक स्वर में विरोध किया। पवन खुरों से, पथरीली जमीन को खरोंच रहा था। पेशवा की आँखें ढँप चली थीं।

"अच्छा, अनु, बता तो उस मराठे-सरदार का 'क्या नाम है ?" मौन पुनः मुखर हुआ।

"मैं बताऊँ ?"

"हाँ !"

"मुहम्मद खाँ बङ्गश !" उन्मुक्त अट्टहास—कर्णकटु नहीं, कर्ण-मधु अट्टहास !

पेशवा ने अनुभव किया धड़कनें, अपने आवरण से टक्कर ले रही हों, बाहर छिटक पड़ने के लिये। रोमाञ्च हो आया। मस्तक स्वेद-कणों से भर उठा। वे कब पवन से उतर कर नीचे आये और

कब उस कोठरी के दरवाजे के सामने आ गये, इसका भान नहीं हुआ।

"अरे, बाहर कोई खड़ा है मस्सो!"

"कौन खड़ा है री?"

पेशवा के पैरों में कम्पन भर उठा। वे यहाँ क्यों आ गये हैं?—समझ नहीं पाये तो वापस होने के लिये पैर मशीनवत् घूमें कि द्वार खुल गया और हाथ में दीपक लिये अनु ने झाँका—"कौन है?" स्वर में भय नहीं था। पेशवा के मुड़े पैर पलटे नहीं, वे पवन की ओर धीरे-धीरे बढ़ते गये।

तभी—खट्ट! पास ही एक कच्चा अमरूद गिरा। निशाना सम्भवतः चूक गया था।

"मस्सो, देख तो....तेरा वही बङ्गश आया है! मरदूद, आती क्यों नहीं....देख तो सही...."

पेशवा ने सुना पर रुके नहीं। लगा कि द्वार पर कोई और भी आ गया है।

"तेरे मुँह में कीड़े पड़ें हरामी!" धीमा-सा स्वर—"होगा कोई....जल्दी से दरवाजा बन्द कर....कोई मराठा मालूम पड़ता है....जनम के डाकू होते हैं, इनका क्या विश्वास!"

सुनकर पेशवा को लगा जैसे किसी ने कसकर कलेजे पर घूँसा मारा हो। तिलमिला उठे। घूमकर देखा तो देखते ही रहे—दो समवयस्क तरुणियाँ खड़ी-खड़ी देख रही थीं। एक ने अपने हाथ के दीपक को, दरवाजे के पास ही जमीन पर रख दिया और—"ओह, आप....आप....पेशवा....इस समय...."

"मुझे क्षमा करना देवियो!" पेशवा ने वहीं से कहा—"मेरे यहाँ आने से आपको कष्ट हुआ परन्तु इसमें मेरा दोष नहीं था। मार्ग से अपरिचित होने के कारण...."

"गलत रास्ता पकड़ लिया !"

"नहीं, पर...."

"यह पर-वर का मतलब तो हम गँवार क्या समझें जनाबे-आला !—हाँ, मेरी बहन मस्तानी की वीणा आपके आने से गूँगी हो गयी है। अगर आप उसे ठीक कर दें....पर नहीं, यह आपके बूते की बात नहीं। अरे, मस्सो ! भाग गयी ! सिड़ी कहीं की...." पेशवा ने इतनी चपलता कहीं नहीं देखी थी। मस्तानी अन्दर भाग गयी थी। पेशवा बाजीराव की धमनियों में, लज्जा की लहर लहरा गयी। एक-बारगी उनके मुख पर जैसे सारे शरीर का लहू खिंच आया। एक ही उछाल में वे पवन की पीठ पर हो रहे और देखते ही देखते पवन, पवन-सा उड़ गया। टापों की आवाज देर तक निस्तब्धता में गूँजती रही।

अनु अधरों पर मुस्कान लिये दरवाजे पर खड़ी, सामने पहाड़ियों में कुछ खोज रही थी कि—"वह चला गया री अनु ! अब खड़ी-खड़ी ऐसे देख रही है, जैसे बेचारे को खींच ही लायेगी...." कहते हुए मस्तानी ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

"नहीं मेरी रानी !" अनु ने उसे अपनी भुजाओं में बाँध लिया—"मुझ बेचारी में भला ऐसी ताक़त कहाँ ? अगर ऐसा होता तो मुआ, इस तरह भाग न जाता ! पहचाना, कौन था ?"

"होगा भी...." मस्तानी ने अजीब ढङ्ग से मुँह बिचकाया—"इन मराठों की आदत सचमुच अच्छी नहीं होती री ! आधी रात की बेला में इस तरह चोरों की तरह चक्कर काटना....भले आदमियों का काम थोड़े ही है !"

"खूब, खूब कही भाई !" किसी ने बाहर से कहा। दोनों ने चौंककर देखा तो पैंतीस-चालीस का एक प्रौढ़ आता दीखा—"क़सम खुदा की, हमारा ख़याल है कि गुफ्तगू पेशवा बाजीराव के बारे में

ही हो रही है....” मस्तानी अन्दर चली गयी। झुँझलाई हुई-सी अनु ने दरवाज़ा भेड़ना चाहा कि वह बीच में आ रहा—“गुस्ताखी मुआफ़ हो अनवरी बेगम, नाचीज़ से इतनी नफरत है तुम्हें कि....”

“चले जाओ यहाँ से !”

“अरे-अरे, ज़रा यह तो सोचो अनवरी कि मैं तुम्हें देखने भर के लिये सात कोस से आ रहा हूँ....”

“अरे, आने भी दे अनु !” अन्दर से मस्तानी ने कहा—“थक भी तो गया होगा बेचारा....”

“तुमने ठीक कहा मस्सो बहन !” उसने चापलूसी के भाव से कहा—“खुदा जानता है, पैरों में छाले पड़ गये हैं !” और धीरे से अनवरी को एक ओर करता वह भीतर आ रहा। मस्तानी तख्त पर वीणा के टूटे तारों में उँगलियाँ उलझाये बैठी थी। भनकती हुई अनवरी आकर उसके पास ही बैठ गयी। वह भी सहमता हुआ-सा तख्त के एक किनारे बैठने को हुआ कि—

“उधर बैठो, उधर !” अनवरी ने तड़प कर कहा—“शरम भी नहीं आती....चढ़े चले आ रहे हैं ! मस्सो, तुम्हारे ही कारण यह सब होता है....किसी दिन पछताओगी, कहे देती हूँ....”

“मैं चला जाता हूँ....”

“नहीं जी, तुम बैठो, इसके दिमाग़ में तो कीड़े पड़ गये हैं। हमेशा बिलबिलाती रहती है मूज़ी !” मस्तानी ने पास ही पड़े मोढ़े पर बैठने का इशारा किया। कनखियों से, अनवरी की ओर देखता बेचारा बैठ गया।

“उस्ताद नहीं हैं क्या ?”

“नहीं !” मस्तानी बोली—“वे महाराज के यहाँ हैं, तुम्हें नहीं मालूम क्या मियाँ नजीर खाँ साहब !”

“हाँ, आँ, याद आया....”

"वाह, खूब याद आया !" अनवरी ने व्यंग्यात्मक भाव से मुँह बना कर कहा—"चोचलेबाजी छोड़कर जल्दी से यह बताओ कि जनाब का यह तशरीफ का टोकरा यहाँ क्यों आया है ?"

"खुदा क़सम...."

"बेचारे खुदा को तो बख्शे रहा करो, हर बात में 'खुदा की क़सम'—मर्सिया सुनने नहीं बैठे हैं हम, जो कुछ कहना है साफ़-साफ़ कहो और जल्दी से यहाँ से यह तशरीफ का टोकरा उठाकर चलते बनो !"

"हाँ-हाँ, उस्ताद ने अपना हुक्का मँगाया है...." घबराया-सा कह उठा वह—"नहीं-नहीं, पीकदान ही दे दो....ओह, खुदा की क़सम.... बधना मँगाया है...." बेचारा सचमुच परेशान हो गया था।

अनवरी की भौंहे वक्र हो आयीं। मस्तानी को दया आ गयी बेचारे की दशा पर।

"मस्तो बहन !"

"घबराते क्यों हो नजीर खाँ !"

"मैं चला जाता हूँ...."

"लगता है पहले क़ब्र खुदवा कर आये हो !" अनवरी बफर उठी—"लुच्चई की भी कोई हद होती है। उस्ताद ने हुक्का मँगाया है....पीकदान ही दे दो....नहीं तो बधना ही सही....मेरा बस चले तो ऐसे सिरफिरों को जूतियाँ लगाकर ठीक कर दूँ। अच्छा, अब आप यहाँ से अपना जनाज़ा उठाइये, नहीं तो ठीक नहीं होगा....उधर मत देखो, बस उठ जाओ...."

अनवरी की मुद्रा देख, बेचारा सचमुच खड़ा हो गया। दुबला-पतला शरीर बेतरह काँप रहा था—"मस्तो बहन, आज पेशवा हुजूर ने, मुझसे तुम्हारे घर का पता दरयाफ्त किया था....खुदा उन्हें जन्नत बख्शे....पाँच मुहरें इनाम में पायी हैं इसके लिये...."

सुनकर मस्तानी और अनवरी दोनों ही चौंकी।

"झूठा कहीं का!"

"खुदा की क़सम...."

"झूठ बोलेगा तो कब्र में कीड़े भी तुझपर लानत भेजेंगे नजीर, इसे याद रख लो!" अनवरी ने कहा—"अच्छा, अब बैठो मत, चुपचाप चल दो। पाँच मोहरों के अमीर हो...."

"कहो तो उसे तुम्हारे क़दमों पर...."

"मिट्टीमिला कहीं का!" अनवरी गुस्से से चीख उठी। पैरों से जूती निकालकर उसने खींच कर मारी पर होशियार नजीर ने बड़े कौशल से वार बचाया और तेजी से दरवाजे के बाहर हो रहा। अनवरी उसके सात पुश्तों को 'बुरी तरह स्मरण' कर रही थी। जूती दरवाजे के बाहर चली गयी थी, जो बड़ी मुश्किल से मिली। आकर हाँफती हुई तख्त पर बैठ गयी। दरवाजा उसने बन्द कर दिया था।

"जाने भी दे!"

"तुम्हारा सिर!"

"मेरे सिर में लगा ले दस जूतियाँ—बस, अब गुस्से को थूक दे...." और उसने उसकी पसलियों में गुदगुदी कर दी। हँसते-हँसते दुहरी हो गयी वह।

थोड़ी देर बाद—

"अनु!"

"हूँ!"

"पेशवा ने नजीर को पाँच मुहरें क्यों दीं?"

"जा के पूछ न, बेचारा आया भी तो शरमा कर भीतर भाग आयी....अब तङ्ग न कर भाई, सोने भी देगी कि नहीं?" अनवरी ने जम्हाई लेते हुए अलसाये स्वर में कहा।

"यह भी कोई सोने का समय है?"

"नहीं तो क्या, तारे गिनने का है!" अनवरी ने करवट बदल ली—"पेशवा की आँखों में सुई बनकर चुभ गयी है, तुझे नींद काहे को आयेगी...." और हँस पड़ी वह।

सचमुच उसकी आँखों से नींद उड़ चुकी थी। पिछले प्रहर की रात आवश्यकता से अधिक ठण्ढी हो गयी थी। अनवरी सोने का उपक्रम कर रही थी और वह जागने का साधन खोज रही थी। ऐसा तो कभी न हुआ था। पेशवा बाजीराव के साथ महाराज छत्रसाल जब राजधानी पधारे थे तो ओरछा का कोना-कोना विजय-गान से प्रतिध्वनित हो उठा था। मराठा-सेना के लिये नगर के बाहर विशाल मैदान में खीमें लगे थे। कुछ चुने हुए सरदारों के साथ पेशवा, महाराज के साथ हाथी पर बैठे, बुन्देला-नागरिकों के अभिवादनों का विनम्र उत्तर दे रहे थे। सोने का कलात्मक हौदा, फूलों से भर गया था। अनवरी के साथ वह भी राजमहल की अटारी पर खड़ी थी।....

राजमहल के निकट आते ही सत्ताईस तोपों की सम्मिलित गरजना....'महाराज छत्रसाल की जय'....'वीरवर पेशवा बाजीराव की जय....' 'मराठा-बुन्देला मित्रता जिन्दाबाद....' चारों ओर तुमुल कोलाहल व्याप्त हो गया था। पेशवा को देखा था उसने, देखती ही रह गयी थी।....

और दूसरे दिन दरबार का आयोजन....

वह नृत्य कर रही थी। मराठा और बुन्देला सरदारों, महाराज छत्रसाल के लगभग सभी पुत्रों, बुन्देलखण्ड के प्रतिष्ठित नागरिकों आदि से आज दरबार खचाखच भरा था। सबसे आगे, गंगा-जमुनी सिंहासन पर महाराज छत्रसाल और उनके पास ही सोने की चौकी पर पेशवा बाजीराव विराजमान थे। दरबार में सिवा नूपुरों की झनकार के और सब कुछ शान्त था, नीरव!

"सुन्दर...."

"अनुपम...." पेशवा के पतले-अरुण अधरों पर से फिसलते शब्द वह स्पष्ट सुन रही थी। यों तो सत्रह वर्ष की अल्प आयु में ही, उसने बुन्देलखण्ड ही नहीं, दिल्ली, आगरा, कर्नाटक, अवध आदि के नृत्यकला के पारखियों से बहुत सारी प्रशंसायें पा ली थीं....एक बार इलाहाबाद के सूबेदार मुहम्मद खाँ बङ्गश ने उसकी ख्याति पर मुग्ध होकर, महाराज छत्रसाल के पास अपना दूत भेजा था—'मस्तानी को मेरे रूबरू पेश किया जाय....' इस आदेश के साथ....जिस पर महाराज गुस्से से थर-थर काँप उठे थे। कहा जाता है, ओरछा पर आक्रमण करने के पश्चात्, बंगश की सहसा बढ़ गयी भयङ्करता के मूल में, इस घटना का महत्वपूर्ण भाग रहा है।....उस दिन पेशवा के प्रशंसा-शब्द....मन में खुब-से जाते थे....और उसके पैरों में, अंग-सञ्चालन में, लोगों का कहना है, बिजली भर गयी थी....सब चकित थे, महाराज स्वयं अवाक् थे....और वह नाच रही थी....नूपुरों की झनकार वातावरण को विकल कर रही थी....साजिन्दे थक गये, पिछड़ गये पर वह नाचती ही रही, नाचती ही रही....

और जब रुकी तो अचेत थी।

होश में आने के उपरान्त देखा तो गले में मणिमाला झूल रही थी....अनवरी ने बताया—'पेशवा ने अपने गले से उतारकर....'

दीपक तेल न होने के कारण बुझ गया था। अनवरी गाढ़ी नींद में सो रही थी और वह सोकर भी जाग रही थी, जागकर भी सोयी थी। मानस के तार-तार झनझनाट से भर गये थे। अन्धेरा उसे कभी अच्छा न लगता था पर आज तो....ओह, जैसे सब बदल गया हो!

आँखें बन्द थीं। चिन्तन-प्रवाह से मानस सिहर रहा था—

होश में आने पर महाराज ने स्नेहपूर्वक उसका मस्तक चूम लिया था। पेशवा उनके पास ही खड़े थे—विमुग्ध-से निहारते हुए।

"मस्तानी मेरी बेटी है, वत्स बाजी !" महाराज का भाव-विभोर स्वर था।

"महाराज !" वे चौंक-से पड़े थे—"नृत्य-संगीत से मेरा वास्ता नहीं-सा ही रहा है....परन्तु आज, इसकी अपूर्व कला देखकर....कला में जादू होता है, मुझे विश्वास न था...."

और वह अनवरी के साथ जल्दी से चली आयी थी।

तीसरे दिन पेशवा के अनुरोध पर पुनः उसके नृत्य का आयोजन हुआ; पर न तो नृत्य ही जमा और न ही उसके पारखी की दृष्टि ही। दोनों उखड़-से गये थे। तभी तो अनवरी कहती है, उसके पैर में काँटा और उनकी आँखों में सुई....ओह !

क्या हो गया है उसे ? कण्ठ सूख रहा था। धीरे से उठी। अन्धेरे में ही टटोलकर सुराही से पानी पिया और फिर आकर तख्त पर लेट गयी। दूर पहाड़ियों से उमड़ता हुआ किसी रसीले-गले का काँपता हुआ स्वर सुनाई पड़ा—

राति ना सुहात ना सुहात परभात आली
जब मन लागि जात काहू निरमोही सों....

"पागल कहीं का !" अनायास ही कह उठी वह।

मगर आज वह सो क्यों नहीं पा रही है ? रात बीत चली, सबेरा हो रहा है पर उसे क्या सुहा रहा है ?—नहीं, नहीं। तो क्या ?.... नहीं-नहीं-नहीं, भला यह क्योंकर होगा ?

सारा शरीर रोमाञ्च से भर आया।

पेशवा ने नज़ीर से उसका पता जानने के लिये पाँच मुहरें....और आज अप्रत्याशित रूप में उनका आगमन....यह सब क्या है ?.... अनवरी ने अन्धेरे के कारण शायद उन्हें नहीं पहचाना मगर वह एक ही झलक में पहचान गई थी।

कविवर पद्माकर की वह पंक्ति अब भी भोरहरी हवा तिर रही है—

राति ना सुहात, ना सुहात परभात आली....

उद्वेग से माथा फटने लगा।....दुपट्टे से मुँह ढँक लिया....अन्धेरे से डर-सा लगने लगा था। बगल में सोयी हुई अनवरी को बाँहों में भींच लिया। अनवरी नींद में बड़बड़ाई—"अरे-अरे, इतनी जोर से, मर्द की तरह दबोचे जा रही है शैतान...."

पर उसने सुना नहीं। अनवरी के धड़कते हुए सीने में सिर डाले शीघ्र ही सो गयी। पहाड़ियों पर पसरा चाँदनी का रजत निष्प्रभ हो रहा था....

● ●

नीराजी के घाव अब भी पूर्णतया भर नहीं पाये थे। घावों से एक साथ ही बहुत-सा खून निकल जाने के कारण दुर्बल भी हो गया था वह। महाराज छत्रसाल ने अपने महल में ही, पेशवा और प्रमुख मराठा सरदारों के रहने की व्यवस्था की थी। नीराजी पेशवा के साथ ही रहता था। दिन काफी चढ़ आया था। उसने कभी पेशवा बाजीराव को सूर्योदय के पश्चात् सोते नहीं देखा था। आज उन्हें अप्रत्याशित रूप से इतनी देर तक सोता हुआ देख, चिन्तित हो उठा।

"शंकर!" उसने पेशवा के विश्वासी सेवक शंकर मल्हार से पूछा—"क्या राव रात देर तक बाहर रहे?" पेशवा के शयन-कक्ष के बाहर, दालान में तख्त पर बैठ गया वह। स्वर में चिन्ता स्पष्ट थी।

"हाँ, श्रीमान्!"

"रात कब आये?"

"आधी रात के बहुत देर पश्चात्...."

"आधीरात के पश्चात्!" सुनकर वह चौंका—"साथ में और

कोई था ? आने पर अस्वस्थ तो नहीं दीखे थे ?" एक साथ कई प्रश्न कर डाले—"कहाँ थे वे इतनी देर तक ?"

तभी शयन-कक्ष का द्वार खुला। शयन-वस्त्रों में पेशवा बाजीराव खड़े दीखे—"क्या है नीरू ?"

नीरू ने लपक कर उनका चरण स्पर्श किया—"आप क्लान्त दीख रहे हैं राव !"

"नहीं तो !" उन्होंने अपने सूखे अधरों पर मुस्कान लाने की चेष्टा की पर सफल न हुए—"शंकर, इतनी देर हो गयी....तू ने जगाया भी नहीं...." वे बाहर आकर, दालान के झरोखे के सामने खड़े हो गये—"नीरू, देख तो, प्रकृति ने इस ओरछा को कितनी निश्चिन्ततापूर्वक सँवारा है....अनुपम....स्वर्गिक....यहाँ की मिट्टी तक में प्यार का सागर छिपा हुआ है नीरू....देख रहा है न ?....वह, उस मन्दिर के पीछे...."

नीरू परेशान था। आज तक कभी उसने उनके मुख से प्रकृति-सौन्दर्य पर इतने मार्मिक उद्गार नहीं सुने थे। सदैव तलवारों की चमक, खून की नदी और लाशों के अम्बार में महाराष्ट्र के उत्कर्ष की महान् महत्वाकांक्षा में डूबे रहने वाले पेशवा को आज हो क्या गया है ?—समझ नहीं पाया बेचारा।

"राव !"

"बोल...."

"कल पूना से अप्पा साहब का पत्र आया है। गुजरात में दाभाड़े और पिलाजी को अपने हाथ का खिलौना बनाकर निजाम, निकट भविष्य में ही कोई भयंकर खुराफात शुरू करने में लगा है...."

"हूँ...."

"हम यहाँ से कब रवाना होंगे ?"

"नीरू !" पेशवा ने मुड़कर उसकी ओर देखा—"सोचता हूँ,

महाराज के अनुरोध को तिरस्कृत न करूँ। क्यों, तेरी क्या राय है ?" स्वर में कम्पन था और आँखों वैकल्य की छाया।

"पर राव...."

"निजाम इतनी जल्दी मेरे विरुद्ध कोई कड़ा कदम रखने की हिम्मत न करेगा !" उन्होंने धीरे से नीरू के कन्धे पर अपना दायाँ हाथ रख दिया—"अच्छा, उस नर्तकी की कला के सम्बन्ध में तेरी क्या राय है ?" वे पुनः झरोखे की ओर झुक गये थे।

नीरू परेशान था। उसकी समझ में नहीं आयीं पेशवा की रहस्यात्मक बातें तो—"आप अस्वस्थ तो नहीं हैं राव !" स्वर में आशंका स्पष्ट थी—"ऐसी बातें, आपके मुख से कभी...."

"नीरू !"

"राव !"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं !"

"हमें अब शीघ्र ही यहाँ से चले जाना चाहिये। मेरी तबीयत जाने क्यों घबरा रही है। लगता है, बुन्देलखण्ड में हमारा कोई बहुत भयंकर अनिष्ट होने वाला है...."

"किसका अनिष्ट होने वाला है नीराजी !" द्वार से महाराज छत्रसाल का गंभीर स्वर आया तो उसके साथ ही पेशवा भी चौंके। पेशवा ने अपनी अस्त-व्यस्त भंगिमा को प्रकृतिस्थ करने का प्रयत्न किया। दोनों ने जल्दी से महाराज का अभिवादन किया।

"तुमने अभी तक दैनिक-कर्मों से निवृत्ति नहीं पायी बेटा !"

"नहीं, महाराज...."

"आश्चर्य है !" महाराज ने धीरे से पेशवा के कन्धे पर हाथ रख दिया—"आज तुम्हारे मुख पर अस्वस्थता के लक्षण देख रहा हूँ—तुम अस्वस्थ हो बेटा !"

"नहीं तो महाराज !"

"मेरी आँखें धोखा खाने की आदी नहीं बेटा!" महाराज के अधरों पर स्मिति लौट पड़ी—"क्या महाराष्ट्र से कोई चिन्ताजनक समाचार आया है?"

"महाराज, आपको निस्सन्देह भ्रम हो गया है। मैं पूर्णतया स्वस्थ हूँ। नीरू से बुन्देल खण्ड की प्राकृतिक-सुषमा के विषय में बातें कर रहा था। यह तो यहाँ से ऊब गया है!"

"और तुम?"

"मैं तो....मैं तो, महाराज पहले से ही तैयार था...." पेशवा का स्वर लड़खड़ा रहा था—"आप जानते तो हैं, मेरे अनुपस्थित रहने से महाराष्ट्र के शत्रुओं के मन में फितूर उठ रहे होंगे। मुझे जाना ही चाहिये महाराज...." उनकी दशा उस उन्मादी की भाँति हो रही थी, जो एकान्त में हवा को सम्बोधित करते हुए अपने मन की बातें सुनाया करता है। विराट अनुभव से प्रदीप्त महाराज छत्रसाल के प्रशस्त ललाट पर सिकुड़नें पड़ीं पर तुरत ही मिट भी गयीं। नीराजी घबराया हुआ-सा कभी पेशवा की ओर निहारता, कभी महाराज की ओर। उसके मस्तिष्क में रह-रहकर मस्तानी कौंध रही थी, न जाने क्यों? पेशवा के इस परिवर्तन के मूल में, उसका कुछ न कुछ योग अवश्य है, इस शंका पर उसे विश्वास-सा हो चला था।

महाराज ने एक दीर्घ निश्वास लिया और—"बेटा, अब तुम्हें चाह कर भी रोक पाना मेरे लिये सम्भव नहीं। कल दरबार में, तुम्हारी विदाई का निश्चय हो जायगा। परन्तु बाजी, मेरे वत्स, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हें बुन्देलखण्ड आने की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी...."

इस बीच पेशवा ने अपने को पूर्णतया प्रकृतिस्थ कर लिया था। उनकी मुद्रा पर स्वाभाविक उन्मुक्तता खिल उठी। आँखों की तरल ज्योति पुनः ज्वलन्त हो आयी—"आप यह क्या कह

रहे हैं महाराज, मुझ पर आपको विश्वास नहीं। बुन्देलखण्ड और महाराष्ट्र दो नहीं और बुन्देलखण्ड की रक्षा के निमित्त मैं बड़ी से बड़ी कीमत चुकाने को प्रसन्नतापूर्वक तत्पर रहूँगा और सम्भवतः समर्थ भी...."

महाराज छत्रसाल और नीरू ने देखा, उनके गौर-मुख पर रक्त छलछला आया था।

• •

राजमहल के सुविस्तृत प्राङ्गण में दरबार का आयोजन किया गया था। थोड़े ही दिनों में वीर और देशाभिमानी बुन्देलों के मन में, पेशवा बाजीराव और मराठों के प्रति असीम स्नेह घर कर गया था। बाजीराव को पन्ना के बच्चे-बच्चे ने, अपने अन्तस के निष्कपट स्नेह और श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये थे। मराठा-सेनाओं का घर-घर में स्वागत-सम्मान हो रहा था। भाटों ने अपनी ओजस्विनी-कविताओं से, मराठा-बुन्देला मैत्री को कोने-कोने में गुँजा दिया था।

बीस-पचीस दिनों के पन्ना-प्रवास के पश्चात्, पेशवा बाजीराव और मराठा-सेना के महाराष्ट्र जाने का निश्चय हो गया था। दरबार में महाराज छत्रसाल के सभी पुत्र यथास्थान विराजमान थे। पेशवा बाजीराव, नीराजी कदम, मल्हारराव होल्कर, शिवदेव चिंचूरकर आदि प्रमुख मराठा-सरदार, मराठी सेना के वयोवृद्ध वैद्यराज—महाराज छत्रसाल के निकट ही बहुमूल्य पीठासनों पर आसीन, दरबार के वैभव को अपलक निहार रहे थे। चारों ओर के अनगिनत खम्भों पर बहुमूल्य कारचोबी के वेष्ठन लपेटे गये थे, जिनकी चमक से आँखें चौंधिया रही थीं। खम्भों पर टिकी प्राङ्गण की विशाल छत से लटक रहे रत्नों की शोभा भी अपूर्व थी।

बीचोबीच वीरासन में बैठे भाट ने, उच्च-कण्ठ से महाराज-छत्र-साल और पेशवा की प्रशंसा में एक कवित्वपूर्ण भाषण दिया। पेशवा के मुख पर उल्लास था। भाट ने अपने वाक्-चापल्य से उन्हें विह्वल-सा कर दिया था।

"कविराज !"

"अन्नदाता की जय हो !" भाट ने अपनी पुकार पर विनत-भाव से पेशवा की ओर देखा।

"कुछ और सुनाओ कविराज !"

"जो आज्ञा...." कहकर उसने तिरछी दृष्टि से महाराज की ओर निहारा और तब बुन्देलखण्ड में लोकविख्यात छन्द अत्यन्त उद्दीप्त कण्ठ से सुनाने लगा—

देवागढ़ देश नाहीं दक्खिन नरेश नाहीं,
चाँदाबाद नाहीं, जहाँ घने महल पाइहो।
सौदगर सान नाहीं देवन को थान नाहीं,
जहाँ तुम पाहुने लै बहुतक उठ धाइहौ।
मैं तो सुत चम्पत को युद्ध बीच लैहों हाथ,
यही जिय जान उलटी चौथ दे पठाइयो।
लिख के परवाना महाराजा छत्रसाल जू ने
औरन के धोके यहाँ कबहूँ न आइयो।

महाराज छत्रसाल की मुद्रा अत्यन्त गम्भीर हो आयी। एक बार जब मालवे के सूबेदार ने उन्हें मुगलों के अधीन रहने का सन्देश भेजा था तो उन्होंने उसका उत्तर कवित्त में दिया था। उसी कवित्त के भाव को किसी कवि ने अपने शब्दों में व्यक्त किया था। वे स्वयं उच्चकोटि के कवि थे, कविता के पारखी भी थे। उनकी गम्भीरता से बाजीराव चकित-से हो रहे। बेचारा भाट भी सहम गया।

"महाराज !"

"हाँ, बेटा !"

"क्या कविता आपको रुची नहीं !"

"सो बात नहीं बेटा, वस्तुतः बात यह है कि मुझे इस अवसर पर अपनी प्रशंसा अनुपयुक्त प्रतीत हुई—यों भी मुझे यह-सब कभी रुचिकर नहीं लगता...."

"पर मैं तो चमत्कृत हो गया महाराज !" पेशवा ने आह्लाद भरे स्वर में कहा—"बुन्देलखण्ड की मिट्टी तक मुझे कविता में सिक्त लगती है। कवि-हृदय और वीरत्व का ऐसा विचित्र समन्वय अन्यत्र दुर्लभ ही है !" और उन्होंने सामने रखे स्वर्णथाल में भरी मुहरों से मुट्ठी भरकर भाट की ओर उछाली, जिसे उसने सन्नद्ध हाथों बड़ी सफाई से लोक लिया।

"महाराज !"

"कहो कविराज !" महाराज का स्वर पूर्ववत् गम्भीर था—"अभय होकर कहो...."

"अगर अनुमति हो तो श्रीमन्त पेशवा के समक्ष पूज्य गुरुदेव का एक छन्द...."

"अवश्य-अवश्य, कविराज, मैं प्रसन्नतापूर्वक उसे सुनूँगा !" महाराज के कुछ कहने के पूर्व ही पेशवा बोल उठे—"महाराज, कविराज को अनुमति प्रदान करें...."

"पर मेरी प्रशंसा....खैर, तुम्हारी जैसी इच्छा...."

भाट ने प्रणाम किया। महाराज उस ओर से अपनी आँखें फिरा लीं। भाट ने एक बार पेशवा की ओर निहारा और तब महाकवि भूषण का प्रख्यात कवित्त, वातावरण को कम्पित करने लगा—

चाक चक चमू के अचाक चक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरति धाक चम्पति के लाल की।

'भूषन' भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करबाल की।
सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जङ्ग जीति लेवा ते वै ह्वैके दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन महेश—महीवाल की।

और दरबार ने चकित-भाव से देखा, गाते-गाते भाट की आँखों से अश्रु-वर्षा हो रही थी। धमनियों में ज्वाला-सी प्रज्वलित कर देने-वाली महाकवि भूषण की कविता का प्रभाव उस पर प्रतिकूल ही पड़ा था। उत्तेजनावश पेशवा अपने पीठासन से उठकर खड़े हो गये—"कविराज, तुम महाकवि भूषण के शिष्य हो?" उनका स्वर कम्पित था।

"नहीं, श्रीमन्त!" उसने दुपट्टे के छोर से अपनी गीली आँखें सुखायीं—"यह सौभाग्य तो मुझ अकिंचन को नहीं मिला; परन्तु भावुकतावश उन्हें गुरुदेव के रूप में पूज्य मानकर अपने को गौरवान्वित करने की धृष्टता अवश्य कर लेता हूँ।" और उसने महाराज छत्रसाल की ओर दृष्टि फेरी—"महाराज!"

"कहो, कविराज!" महाराज के स्वर में गाम्भीरता नहीं कम्पन था—"तुम्हारे कवि-हृदय की भावुकता मैं समझ रहा हूँ....महाकवि के लिये तुम्हारे मन में इतनी श्रद्धा है, इस नाते मैं तुम्हारे समक्ष...."

"नहीं-नहीं, महाराज!"

"कविराज, तुम्हारे सामने महाराज छत्रसाल नहीं, महाकवि का अनन्य सेवक उपस्थित है...." और उन्होंने अपने कंठ से कंठमाल उतार कर कविराज की ओर फेंक दी, जो नत ही रहे उसके गले में झूल उठी। सारा दरबार स्तब्ध-भाव से, उनके कवि-हृदय का विगलन निहार रहा था।

महाराज और पेशवा को प्रणाम करता हुआ भाट चला गया।

"बेटा, बाजी!"

"महाराज!" पेशवा ने उत्सुक-भाव से उनकी ओर निहारा—"आज्ञा की प्रतीक्षा है...."

"मुझ वृद्ध को, तुमने अपने वीरत्व का सहारा दिया, इसके लिये सारा बुन्देलखण्ड कृतज्ञता प्रकट करता है। सत्तर-अस्सी वर्षों का दीर्घ जीवन-पथ पार करके अब मैं उस सीमा पर खड़ा हूँ....समझ रहे हो न बेटा! मेरा जीवन सदैव आपत्तियों, बड़े-बड़े शत्रुओं से जूझने में व्यतीत हुआ है...."

"महाराज, मैं आपके पुत्रतुल्य नहीं हूँ क्या!" स्वर में श्रद्धा और ममत्व का कम्पन था।

"तुम मेरे पुत्र ही हो बेटा!" महाराज का स्वर आर्द्र था—"आज तुम्हें अपना पुत्र, दरबार के समक्ष स्वीकार करते मैं गौरव का अनुभव कर रहा हूँ!"

पेशवा का शरीर रोमांचित हो आया। छत्रसाल की महानता ने उन्हें विह्वल कर दिया था।

दरबार हर्ष-ध्वनि से गूँजित हो उठा। मराठा-सरदारों ने करतल-ध्वनि की।

"मैं आपका पुत्र तो हूँ ही महाराज!" पेशवा ने कम्पित-कंठ से कहा—"आपसे यह गौरव-पद पाकर मेरी प्रसन्नता का पारावार नहीं...." और उन्होंने वृद्ध महाराज का चरण स्पर्श कर लिया। उनका वीर-हृदय, महाराज छत्रसाल के समक्ष न्योछावर-सा हो रहा था।

"परन्तु महाराज, आपके पुत्रों में पेशवा को कौन-सा स्थान...." मल्हारराव होल्कर की बगल में बैठे वृद्ध वैद्यराज ने कहा तो सभी चौंक पड़े। पेशवा चकित-से राजवैद्य की ओर निहारने लगे।

महाराज ने चतुर वैद्य के प्रश्न का मर्म भलीभाँति समझ लिया।

क्षणभर वे कुछ सोचते-से रहे फिर—"वैद्यराज का प्रश्न उचित है। मेरे प्रथम पुत्र हृदयशाह, द्वितीय जगतराज और तृतीय बाजीराव.... बेटा, तुम अपने दोनों भाइयों के पास ही बैठो !" उनका स्वर अत्यन्त गम्भीर हो आया था।

पेशवा ने भी महाराज के कथन का अर्थ भलीभाँति समझ लिया। कृतज्ञ महाराज ने अपने विशाल-राज्य का, तृतीय पुत्र के रूप में, तृतीयांश उन्हें दे डाला था। उन्होंने छिपी दृष्टि से देखा, पिता के इस निर्णय से, आज्ञाकारी पुत्रों के मुख पर असंतोष की छाया भी न थी। वे पूर्ववत् उल्लसित दीख रहे थे। नतमस्तक हो एकबार पुनः महाराज का चरण स्पर्श कर वे आकर जगतराज की बगल में बैठ गये।

शीघ्र ही महाराज के संकेत पर सेवकों ने रत्नों से भरे कई थाल, बहुमूल्य वस्त्र, मणिजटित मूठ वाली सात तलवारें तथा दस हाथी, सत्तर उत्तम अश्व का लिखित दान-पत्र आदि उपहार ला रखे। पेशवा ने सब कुछ श्रद्धाभाव से स्वीकार कर लिया।

"बाजी !"

"महाराज !"

"तुम्हें देने योग्य मुझ वृद्ध के पास और कुछ नहीं बेटा !"

"एक पिता से, पुत्र को जो कुछ मिलना चाहिये, उससे कहीं अधिक आपने मुझे दिया है, ऐसे शब्दों से मुझे लज्जित नहीं करें महाराज ! आज से भाई जगतराज और हृदयशाह मेरे अग्रज और अन्य बन्धु अनुज हुए। हम एक दूसरे के स्वेद पर अपने लहू...."

"मुझे यही विश्वास भी है बाजी !" इसके उपरान्त महाराज ने मल्हारराव होल्कर, शिवदेव चिम्नूरकर आदि सत्ताईस प्रमुख मराठा सेनानायकों को बड़ी-बड़ी जागीरें तथा रत्नादि उपहारस्वरूप भेंट किये। मराठा-सेना के प्रत्येक सैनिक को पचास-पचास मोहरें भेंट करने

की घोषणा भी उन्होंने की। फिर वे पेशवा की ओर उन्मुख हुए—"बाजी, तुम्हारे लिये मैंने अपनी ओर से एक और उपहार का निश्चय किया है...."

दरबार उत्सुक-भाव से उनके मुख की ओर देखने लगा। पेशवा उद्विग्न-से हो उठे।

"महाराज!"

"वह उपहार तुम्हारे अपने लिये होगा और वह तुम्हें यहाँ से विदा होते समय ही...."

पेशवा की उद्विग्नता और बढ़ गयी।

"और हाँ, कदम घराने का यह बालक—नीराजी, मेरा सबसे छोटा पुत्र है...." नीराजी के लिये उन्होंने जागीरें, एक ईरानी अश्व, जो उनके अपने निजी घुड़साल का सर्वोत्कृष्ट अश्व था तथा अपने शस्त्रागार से चुने हुए रत्नजटित हथियार भेंट किये।

नीराजी ने उनका चरण स्पर्श किया।

"इतने अल्पवय में, तुम्हारी वीरता आश्चर्यजनक है। विश्वास है, तुम अपने दादा, भाई जीवाजी कदम की ज्वलन्त-परम्परा को सदैव प्रोज्वल रखोगे...."

नीराजी ने झुककर महाराज का पुनः चरण स्पर्श कर लिया। इतना सब होने पर भी, जाने क्यों वह प्रसन्न नहीं दीख रहा था। युद्ध में लगे घाव प्रायः भर चुके थे। महाराज छत्रसाल ने उसके मुख की ओर अन्वेषी-दृष्टि डाली तो उसने जल्दी से आँखें फिरा लीं और—"महाराज की मुझ बालक पर इतनी अनुकम्पा...."

"नीराजी!"

"महाराज...."

"तुम्हें कोई कष्ट है?"

"नहीं तो महाराज!" नीराजी घबरा सा उठा—"आपकी स्नेह-

छाया में कष्ट की कल्पना सम्भव नहीं। पूज्य राव ने, मुझ अकिञ्चन को....'' सहसा उसकी दृष्टि बाजीराव पर पड़ गयी और तब वह अपना वाक्य पूरा नहीं कर सका। चुपचाप आकर अपने पीठासन पर बैठ गया। उसके मन में, महाराज द्वारा, पेशवा को विशेष रूप में प्रदत्त किये जानेवाले उस भेंट ने आलोड़न भर दिया था। क्या होगा वह?—आलोड़न बढ़ता ही जा रहा था।

थोड़ी ही देर पश्चात् दरबार के समाप्त होने की सूचना सुन पड़ी। महाराज चले तो पेशवा उनके साथ थे।

मराठा-सरदार अपनी सेना के स्वदेश लौटने की तैयारी की व्यवस्था में दत्त-चित्त हो गये।

❀ ❀

''आज दरबार में मस्तानी की अनुपस्थिति से सभी चकित थे बाजी!'' महाराज ने पेशवा के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—''तुम्हें उसकी नृत्य कला अरुचिकर प्रतीत हुई है, तभी तो तुमने कार्यक्रम में परिवर्तन करने की इच्छा प्रगट की थी। जानते हो, तुम्हारे इस व्यवहार से कलाकार को ठेस पहुँची है....''

''महाराज!''

''बाजी, तुम्हारी इच्छा का समाचार पाते ही मस्तानी चुपचाप चली गयी....वह, लगता है, अपनी कला का निरादर होता देख, मर्माहत-सी हो गयी....'' महाराज ने एक निश्वास के साथ आतुर-विकल पेशवा की ओर निहारा—''मैंने उसे बचपन से ही अपने संरक्षण में रखा है बाजी! उसके स्वाभिमानी-हृदय का इसी नाते, अध्ययन भी पर्याप्त किया है....''

''महाराज!'' बाजीराव का स्वर बुरी तरह काँप रहा था—

"अपनी तीस-बत्तीस वर्ष की उम्र में, जब से होश सम्हाला, तलवार-खून-लाशों से मनोरञ्जन करता रहा। न तो कभी कला को समझने का अवसर मिला न ही कलाकार को। मस्तानी कलावन्त के प्रति मैंने अगर अनजाने में कोई उपेक्षा का व्यवहार किया हो तो...." शेष शब्द क्रमशः तीव्र होते कम्पन में खोते-से गये। मुख पर रक्त छल-छला उठा।

"बाजी !"

"महाराज !" चाहकर भी वे महाराज से आँखें न मिला पाये—"आप मेरे पिता तुल्य हैं....मेरे हृदय में जाने कैसी विकलता....ओह, मैं उसे व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ...."

"बाजी, तुम वीर हो....रण-क्षेत्र में, लाशों के अम्बार और लहू के कीचड़ को ही अब तक जीवन समझते रहे; परन्तु इन सब के बावजूद तुम मनुष्य हो और मनुष्य-जीवन की सार्थकता मात्र वीभत्स-रौद्र कठोरता में ही नहीं। इसे स्वीकार करते हो न ?"

"हाँ !"

"तुम मस्तानी के निवासस्थान की ओर गये थे कभी ?"

"महाराज...."

"मैं जानता हूँ बेटा ! तुम्हारी गति-विधि पर मेरी दृष्टि सदैव रही है। मस्तानी ने अपनी कलामयता, अपने भोले सौन्दर्य...."

"नहीं-नहीं, महाराज...." पेशवा चीत्कार कर उठे पर चीत्कार रुद्धता में डूबा हुआ-सा था।

"बाजी !" महाराज का स्वर अत्यन्त गम्भीर हो उठा—"अपने पिता के समक्ष तुम्हें...." उन्होंने धीरे से पेशवा का दायाँ हाथ पकड़ लिया—"पुरुष की परुषता के लिये नारी दुर्बलता नहीं, उसे ओज प्रदान करती है....परन्तु बेटा, अब सोचता हूँ कि तुम्हारा बुन्देलखण्ड आना सचमुच अनर्थकारी ही सिद्ध हुआ। मस्तानी के

लिये तुम्हारा मोह अस्वाभाविक नहीं तो भी महाराष्ट्र अपने वीर पेशवा को पतनोन्मुख करने का दोष मुझे देगा, यही सोचकर...."

"महाराज !"

"बाजी !"

"महाराज, मैं शीघ्र ही बुन्देलखण्ड से चला जा रहा हूँ...."

"मन में एक टीस लेकर ही तो ?"

पेशवा सहसा उत्तर न दे सके। उनकी बड़ी-बड़ी तेजस्वी आँखों में उस टीस की चीत्कारती हुई-सी छाया दीखी और तब महाराज ने देखा—उनमें से दो बूँदें छलककर कपोलों पर पिघल गयीं—"मेरा पोषण रण-क्षेत्र की विकट-कठोरता ने किया है और सम्भवतः आप खूब समझते हैं कि...." प्रयत्न करके भी वे कण्ठ की रुद्धता को रोक नहीं सके—"मस्तानी कलावन्त से आप मेरी क्षमा-याचना....और मैं अभी, इसी क्षण बुन्देलखण्ड छोड़ रहा हूँ....सेना पीछे आती रहेगी...."

"बेटा !"

"महाराज, मेरे मन का आन्दोलन अब सह्य नहीं...."

"बेटा !"

"नहीं-नहीं...."

महाराज कुछ देर तक अपने में डूबे-से रहे। पलकें अनायास ही ढँप गयीं। बाजीराव को वहाँ बैठा रहना असह्य-सा हो गया। वे कम्पित पगों से उठकर द्वार के बाहर हो गये। महाराज को उनके चले जाने का भास न हुआ। कक्ष के बाहर आकर पेशवा को अनुभव हुआ जैसे कोई अज्ञात-शक्ति पीछे की ओर खींचे लिये जा रही हो कि तभी—

दिल वोह नगर नहीं कि फिर आबाद हो सके
पछताओगे सुनो हो, यह बस्ती उजाड़कर....

महल के नीचे, दूर से कोई दर्दभरी आवाज में सितार पर गा रहा था। बढ़ते हुए पग ठमके। सितार परिचित था और स्वर भी। पेशवा बाजीराव को अपने चारो ओर घोर अन्धकार, जो क्रमशः गहन होता जा रहा था—दीखा। वीणा की झनकार स्पष्ट से स्पष्टतर होती जा रही थी। पैरों में कम्पन हुआ और तब वे भागते हुए-से स्वर की दिशा में बढ़ चले। महल के सेवकों ने सन्ध्या के धुँधलके में पेशवा को, आतुर-भाव से महल का जीना पार करते देखा तो चकित रह गये।

महल के नीचे वाले खण्ड में आकर वे रुक गये। वीणा की वह जादूभरी झनकार, स्वर की वह दर्दभरी ललकार—सब कुछ मौन में डूबा था। उनका मस्तक चक्कर खा उठा।

"श्रीमन्त!"

पीछे से मृदु स्वर आया तो पेशवा ने घूमकर देखा, महाराज के अङ्गरक्षकों का नायक जुझार खड़ा था—"ओह, तुम हो....मैं....मैं.... बाहर जाना चाहता हूँ जुझार सिंह...." लड़खड़ाता स्वर।

"पर श्रीमन्त, आप इतने परेशान दीख रहे हैं कि....बात क्या है?....इसी परेशानी में सम्भवतः आप मार्ग भूलकर इस ओर चले आये हैं....आइये, चलिये...." कहता हुआ वह घूम पड़ा। बाजीराव क्षणभर ठमके रहे फिर जुझार के पीछे हो लिये।

"जुझार!"

"आज्ञा, श्रीमन्त!"

"अभी-अभी कोई वीणा-वादन कर रहा था...."

"हाँ, श्रीमन्त...."

"कौन था वह?" स्वर आतुर था—"महल में भी कोई इस प्रकार कला-साधन में...."

"नहीं श्रीमन्त, आपने मस्तानी कलावन्त को तो देखा ही है....

कल से ही वे अस्वस्थ होकर महल के अतिथि-कक्ष में पड़ी हैं। वही वीणा-वादन कर रही थीं...."

"ओह !" पेशवा को लगा जैसे मन में, गहरे तक सुई चुभ गयी हो—"मस्तानी कलावन्त अस्वस्थ हैं...."

"हाँ, श्रीमन्त...." जुझार पेशवा की उद्विग्नता देख चकित था—"उन्हें जाने क्या हो गया है...."

"अच्छा-अच्छा, जुझार सिंह !" बाहरी द्वार सामने देख, वे बोल उठे—"अब मैं चला जाऊँगा....तुम जा सकते हो...." और वे जल्दी से बाहर हो गये।

अपनी वीरता से सारे देश में विख्यात, पेशवा बाजीराव की रहस्यमयता को निहारता जुझार किङ्कर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा। दूर बुन्देला सैनिक डफली पर, सम्मिलित रूप में 'मारू' गा रहे थे।

● ●

"नीरू !"

"राव !"

"हम परसों चले जायेंगे नीरू !" पेशवा के स्वर में थरथराहट थी—"अच्छा ही है....अच्छा ही है...."

नीरू ने उनकी ओर देखा, देखता ही रहा—"पूज्य राव, महाराज ने जाते समय आपको जो विशेष भेंट देने का वचन दिया है, क्या वह सचमुच अत्यन्त बहुमूल्य होगा ?"

"क्या जाने !"

"मैं जानता हूँ उसे...."

पेशवा चौंक पड़े—"जानता है उसे तू ?"

"हाँ !"

"क्या है ?"

"जिसका कोई मूल्य नहीं होता राव !"

"क्या ?"

"सम्भवतः आपके मनोरञ्जन के लिये कोई खिलौना....राव, क्या आपको खिलौनों से अनुराग हो सकता है ? मैं समझ नहीं पाता, महाराज को हो क्या गया है ?...." उसने एक दीर्घ श्वास छोड़ा— "राव, मेरे मन मे जाने क्यों उस 'खिलौने' के प्रति घोर आशङ्का पैठ गयी है....आपके लिये, हमारे लिये—सबके लिये महाराज की वह भेंट, वह 'खिलौना' विभीषिकापूर्ण सिद्ध होगा....राव, तलवारों की झनझनाहट में मनोरञ्जन पाने का अभ्यासी आपका हृदय इसे.... इसे...." नीरा जी ने धीरे से बाजीराव का पैर पकड़ लिया—"मत.... आप उसे मत स्वीकारें राव ! मेरा अन्तर चीख-चीखकर कह रहा है...." उसने अपना मस्तक पेशवा के पैरों से टिका दिया—"राव, वह सजीव-खिलौना....ओह, अपने इस बच्चे की विवशता समझें राव...."

पेशवा की आँखें भर आयीं। उन्होंने नीरू को उठाकर अपने वक्षस्थल से लगा लिया—"एक तू ही तो है नीरू, जो मेरे आन्तरिक उद्वेग को समझ पाया है। तेरे राव का यह पतन— हाँ, पतन ही तो कहेगा इसे संसार, अपने आपमें कितना मंजुल है, इसे समझता क्यों नहीं पगले ! मस्तानी—तूने तो उसे देखा है नीरू, समझा भी होगा, क्या वह इतनी भयङ्कर है ?"

"राव !" नीरू सिसक रहा था—"मैंने सब समझा है, पर....पर वह नर्तकी है, मुसलमान है और चितपावन-ब्राह्मणों की उच्च-परम्परा उसे कलङ्क की ही संज्ञा देगा। महाराष्ट्र-समाज उसे किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करेगा...."

"हूँ !"

"मैं...."

"तू कहना चाहता है कि...." उनका सारा शरीर काँप रहा था—"नीरू, मस्तानी के बिना मेरा जीवन शून्य हो जायगा....और उस शून्य में मेरी महत्वाकांक्षायें, मेरा अस्तित्व—सब तिरोहित हो जायगा...."

"राव!"

"नीरू, तू चिन्ता न कर, मस्तानी के लिये एक बार सारे संसार से सङ्घर्ष करूँगा....और यह भी याद रख, मुझे झुकाने में कोई भी समर्थ न हो सकेगा...."

"राव...." नीरू का स्वर अत्यन्त करुण हो उठा था—"आपने निश्चय कर लिया है?"

"हाँ, नीरू!" पेशवा के स्वर में अपार दृढ़ता थी—"समाज अगर मस्तानी को अस्वीकार करेगा तो इसे भी समझ ले, उसे बाजी को भी अस्वीकार करना होगा....और मैं इससे भी अपरिचित नहीं हूँ कि तुम्हारा समाज, यह भी करने से नहीं हिचकेगा; मगर...." उसी समय द्वार पर किसी की पदचाप सुन पड़ी। पेशवा की भीगी आँखों ने देखा—घबराई-सी, अस्त-व्यस्त-सी मस्तानी खड़ी थी। नीरू की ओर देख कर वह हिचकी परन्तु फिर धीरे-धीरे आकर एक ओर नतशिर खड़ी हो गयी। वातावरण में गहरा, घुटनकारी मौन घुल रहा था। नीरू ने एक बार पेशवा की ओर फिर मस्तानी की ओर निहारा और तब धीरे-धीरे कक्ष के बाहर चला गया।

"मस्तानी, प्रिये!" पेशवा ने आगे बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रख दिया—"महाराज ने जाते समय जिस अमूल्य भेंट का वचन दिया है, उसे जानती हो?...." स्वर में कम्पन नहीं, सहज माधुर्य था—"मुझ पर विश्वास कर सको तो...." उन्होंने दोनों हाथों से उसका मुख अपने सामने कर लिया—"तुम रो रही हो मस्तानी! किस

लिये ? इसीलिये न कि हमारे मार्ग में कंटक बिछे मिलेंगे....क्या हम उन कंटकों को कुचलकर...." और उन्होंने अपनी दोनों मुट्ठियों को जोरों से भींच लिया।

"नहीं !" मस्तानी ने अपने को थोड़ा परे खिसका लिया—"मेरे कारण आप अपने उच्चादर्शों से एकदम गिर पड़ेंगे प्रभु !. दुनिया मेरे नाम पर थूकेगी....तवारीख में मेरी जगह कलंकिनी...."

"मस्तानी !"

"प्रभु !"

"प्यार पाप नहीं होता मस्तानी !" पेशवा की शिराओं में दौड़ता लहू खौल-सा उठा—"तुम मेरी जीवन-ज्योति बन चुकी हो और अपनी जीवन-ज्योति के लिये मैं अपने प्राण न्यौछावर कर दूँगा। तवारीख हमारे नाम पर घृणा प्रकट करे तो करे, मुझे इसकी परवाह नहीं...." भावोद्वेग में, पेशवा बाजीराव विह्वल हो उठे थे—"पर तुम्हें यह आशंका क्योंकर हो रही है प्रिये कि तुम्हें पाकर मैं दुर्बल हो जाऊँगा, मेरे कर्तव्य-पथ की तुम रोड़ा नहीं, पाथेय हो। तुम्हारे मोह की मधुर ज्योति में मेरा व्यक्तित्व और प्रज्वलित हो उठेगा...."

"नहीं-नहीं, मोह में आप अपने को भूल गये हैं प्रभु !" मस्तानी ने कंपित स्वर में कहा—"आप अपनी उस साध्वी पत्नी को भूल गये हैं, जो अपने सुहाग की लाली को सर्वस्व समझती है। अपने उस समाज को भूल गये हैं, जिसका आप पर नियन्त्रण रखने का अधिकार है। अपनी वंश-परम्परा को भूल गये हैं, जिसका मस्तक सदैव उन्नत रहा है—मुझ नर्तकी के लिये आप...."

पेशवा हतबुद्धि-से हो रहे थे।

वंश-परम्परा !

समाज !!

पत्नी !!!

परिवार !!!!

वे वृहत् आकार वाले शून्य में, जिसका कोई ओर-छोर दृष्टिगत नहीं हो रहा था—निस्सहाय-सा भटकता पा रहे थे अपने को। नीरू ने जब उन्हें यही बातें सुनायीं थीं तो वे अपने में अपार बल का अनुभव कर रहे थे; परन्तु वही बातें मस्तानी ने कहीं तो यह शून्य, यह निस्सहायता....क्यों, आखिर क्यों ?—तभी उनकी आँखों के समक्ष काशीबाई की वह मूर्ति कौंध गयी, जब बुन्देलखण्ड-प्रयाण के पूर्व विकल भाव से....ओह ! अपने सुमधुर-दाम्पत्य के कितने ही क्षण उनके समक्ष साकार हो उठे। मस्तानी को उस अबोध-सुकुमार हृदय का अधिकार देने का क्या अधिकार है ?—नहीं-नहीं !—अन्तस का कोना-कोना चिग्धाड़-सा उठा। वंश-परम्परा, समाज, परिवार और यह मस्तानी ? पलकें ढँप गयीं—वे मन ही मन तुलना कर रहे थे। आशङ्काओं के गहनतम तिमिर में वे अवलम्ब के लिये, ज्योति के लिये छटपटा-से उठे। कानों में रहकर, आते समय का वह स्वर—काशीबाई की वह मर्मभेदी करुणा गूँज रहा था, तड़प रही थी....और जब उसे मेरे इस पतन का समाचार मिलेगा तो कितना बड़ा धक्का लगेगा ? समाज—जिसने उन्हें अपनी नाक समझ कर पूजा की है, वह उनके इस भ्रष्ट-रूप का दर्शन कर तिलमिला न उठेगा ?

"प्रभु !" मस्तानी ने झुककर उनके चरण पकड़ लिये—"मुहब्बत उस समय ही पाक होती है, जब वह कुर्बानी की आग पर तपी हो। मुझे भूल सकें तो ठीक, नहीं तो ऐसे भी हम एक दूसरे के ही रहेंगे। जिस्मानी-भूख ही तो मुहब्बत का आधार होती नहीं। आप जैसे भी हो जल्दी चले जाँय और अपने को...." वह फफककर रो पड़ी। गरम-गरम आँसू की बूँदें, पेशवा के पैर पखार रही थीं।

"नहीं !"

"क्या ?"

"तुम मेरे साथ चलोगी प्रिये !" पेशवा निर्णायक-स्वर में बोले—"प्यार अपने मन का होता है, सांसारिक नाते-रिश्तों का आधार तो महज एक दिखावा है, धोखा है...."

"प्रभु !"

"नहीं, मुझे बहलाने का प्रयत्न न करो और अपनी आँखें पोंछ लो...." उन्होंने धीरे से पैरों के पास बैठी मस्तानी को अपनी बाँहों में ले लिया—"मुझे विश्वास है, रानी तुम्हें अपनी बहन मानने में रञ्चमात्र भी सङ्कोच नहीं करेगी। मैंने उसे समझा है प्रिये ! बस, और किसी से भय करने की हमें आवश्यकता नहीं।" और उन्होंने मस्तानी के अश्रुपूर्ण नयनों पर अपने तप्त अधर रख दिये।

मस्तानी सिहर गयी।

सत्रह वर्ष की उस तरुणी के मन में ज्वार उमड़ आया था और ज्वार की रेशम-सी मुलायम, फ़ुहार की-सी स्फुरणकारी अनुभूति में वह अपने को बहता पा रही थी।

"प्राण !"

"हम एक दूसरे के पूरक हैं प्रिये !" पेशवा का स्वर भावोद्वेग के वितान से छलक रहा था—"अगर देखूँगा, जीवन-पथ में पराजित, थका और शिथिल हो रहा हूँ तो अपने अस्तित्व का दाँव लगा देने में कभी पीछे न हटूँगा....बुन्देलखण्ड ने, तुम्हारे रूप में, मर्म का वह घाव भेंट किया है, जिसकी हर टीस में जीवन की सार्थकता का मादक सङ्गीत लहरेगा...." पेशवा के अन्तस में किसी कोने, सोये पड़े रस पर से कठोरता लुप्त हो चुकी थी। वे अब तलवार-खून-लाशों की आँख-मिचौली खेलने वाले सैनिक नहीं, मानव थे—सम्वेदनशील, रसमय मानवीयता से ओत-प्रोत....

"प्रभु !" मस्तानी ने शिथिल शरीर को पेशवा की सबल भुजाओं में सौंप दिया था—"हमारे सामने कितना मादक, कितना लुभावना

स्वप्न बिखर रहा है....उफ्! मैं उसे सह नहीं पा रही हूँ...." आन्तरिक आह्लाद ने, उसकी चेतना को जैसे अपने आप में समेट लिया....

उत्तर में पेशवा का बाहुबन्धन और दृढ़ हो गया।

उधर—

मराठा-सैनिकों के बीच सनसनी मच गयी थी। पेशवा बाजीराव मुसलमान-नर्तकी मस्तानी के प्रणय-जाल में पड़ गये हैं—उसे अपने साथ ले चल रहे हैं—समाचार सैनिकों को चकित कर रहा था। मराठा-सरदार भावी आशङ्का में डूब-उतरा रहे थे।

● ●

मराठा-सेना प्रयाण के लिये तत्पर थी। ऊँटों और खच्चरों पर सामान पहले ही रवाना हो चुका था। पेशवा के अंगरक्षक सैनिकों को छोड़कर शेष सेना को भी चलने का आदेश देकर मल्हारराव होल्कर आदि सेनापति राजमहल के बाहरी कक्ष में, उनकी प्रतीक्षा में बैठे थे।

जाते समय जो 'भेंट' महाराज छत्रसाल पेशवा को देने वाले थे, उसके सम्बन्ध में अब किसी को जिज्ञासा नहीं थी। नीराजी पेशवा के साथ ही था।

अपने शयन-कक्ष में, पेशवा और मस्तानी के साथ महाराज देर तक जाने क्या बातें करते रहे और जब द्वार खुला तो नीरू ने देखा, तीनों की आँखें अश्रुपूरित हैं। नीरू चौंक पड़ा। बाहर खड़े-खड़े उसने अन्दर की बातें तो नहीं सुनी थीं, परन्तु उसने अनुमान अवश्य लगा लिया था कि उस रहस्यमय-वार्ता का आशय क्या है। उसने झुककर तीनों को प्रणाम किया।

पेशवा ने एक झटके के साथ अपने को सम्हाला—"सब ठीक है नीरू !"

"हाँ, राव !"

"होल्कर कहाँ है ?"

"बाहर आपकी प्रतीक्षा में बैठे हैं...."

"चलो बेटा !" महाराज का स्वर अब भी काँप रहा था। श्वेत केशों और लम्बी घनी दाढ़ी से आच्छादित उनका मुख-मण्डल, आन्तरिक-उद्वेग से, मानसिक पीड़ा से निष्प्रभ हो रहा था। उन्होंने धीरे से मस्तानी और पेशवा के कन्धों पर अपने काँपते हुए दोनों हाथ रख दिये—"बाजी, अपने पुत्र को कोई भी पिता, ऐसी भेंट देने का साहस नहीं करता....मैं....मैंने तुम्हारे सुख-सन्तोष और अपने स्वार्थ-वश—हाँ, उसे स्वार्थ ही तो कहा जायगा—तुम्हारे जीवन में, ऐसे पुष्प की बेल लगाई है, जिसमें जितनी ही कोमलता है, सुरभि है उतनी ही...." कण्ठ रुद्ध हो आया। वाक्य पूरा न हो सका।

"पिताजी....महाराज...." मस्तानी फफककर रो पड़ी।

"जाओ बेटी....ओह, बाजी, चलो बेटा, बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है...." और तब वे धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। पेशवा, मस्तानी और नीरू ने उनका अनुसरण किया।

रहस्य ?—नीरू का मानस झंझवाती हो उठा था। महाराज छत्रसाल के लौह-व्यक्तित्व के मर्म में यह रहस्यमय-तरलता क्या है ?—समझकर भी जैसे कुछ समझ न पा रहा था वह।

● ●

अन्त में महाराज छत्रसाल, उनके सभी पुत्रों, बुन्देला सरदारों से बारी-बारी से बिदा लेकर पेशवा 'पवन' पर बैठे तो महाराज छत्रसाल

की आँखें बरस रही थीं। मस्तानी के लिये चार सुन्दर बैलों वाला सुसज्जित रथ उपस्थित था। महाराज ने खुद उसे रथ पर सवार कराया। साथ में उसकी सात सहेलियाँ भी जा रही थीं। सभी चकित थे, एक मुसलमान नर्तकी की विदाई में वे वैसे ही करुणार्द्र हो उठे थे, जैसे कोई पिता अपनी बेटी को ससुराल पठाते समय।

आगे पेशवा के अंगरक्षक घुड़सवार, लम्बे-लम्बे बर्छे लिये चलने को तैयार थे। अपनी काली घोड़ी पर नीराजी, पेशवा की बग़ल में था। होल्कर आदि सरदार पीछे थे।

नागरिकों का ठठ्ठ का ठठ्ठ—पेशवा को श्रद्धाविगलित नयनों से निहार रहा था।

"पेशवा बाजीराव की जय...."

"महाराज छत्रसाल की जय...." बुन्देला सैनिकों ने अपनी-अपनी तलवारें मस्तक से लगाकर जयजयकार की। नागरिकों ने साथ दिया।

महल की बुर्जियों से तोपों की गगनभेदी गड़गड़ाहट हुई—महाराज छत्रसाल ने अपना काँपता हुआ हाथ पेशवा की ओर बढ़ाया—पेशवा ने झुककर उनका चरणस्पर्श कर लिया।

पेशवा के पथ पर पुष्प वर्षा हो रही थी।

सामने बुन्देली तरुणियों का एक समूह, मस्तानी के रथ पर अक्षत-पुष्प बरसाता हुआ करुण-स्वर में विदागीत गा रहा था।

पन्ना का कोना-कोना विह्वल था—पेशवा की विदाई में।

रथ पर अपनी प्यारी सखियों के बीच बैठी मस्तानी की एक आँख में आँसू की झड़ी थी और दूसरी में आह्लाद की चमक....

पुष्प और कंटक

पेशवा-माता राधाबाई ने चौंककर द्वार पर खड़े चिमणाजी अप्पा की ओर देखा—"अप्पा, मैं यह क्या सुन रही हूँ....ओह, बेटा, क्या तू भी यही कहने आया है कि बाजी अपने साथ किसी यवनी को ला रहा है ?" स्वर थरथरा रहा था। गौर मुख पर जैसे सिन्दूर का लेप हो गया था। उनके पास ही काशीबाई गम्भीर-मुख बैठी थी। अप्पा ने देखा, उनकी स्वाभाविकता को तनिक भी आँच नहीं आयी थी। उन्हें मौन देख, पेशवा-माता की क्रोधाग्नि में जैसे घृत पड़ गया—"तू चुप क्यों है बहू !"

"माताजी !"

"मुझे उत्तर चाहिये अप्पा !"

"मैंने सुना है माताजी...."

पेशवा-माता का स्वर एकबारगी ही शान्त हो गया—"सुनी हुई बातों पर हमें विश्वास नहीं कर लेना चाहिये बेटा ! मेरा लाल बाजी, क्या कभी इतना नीचे गिर सकता है ?—नहीं, यह अकल्पनीय है अप्पा, बोल, है कि नहीं ? आज सबेरे, शास्त्री जी ने जो वज्रपात मुझपर किया है, वह कितना भयङ्कर था, कितना रोमांचक....बहू, तू ही बता न, क्या ऐसा कभी हो सकता है ?"

"असम्भव भी क्या है माताजी !"

"बहू !"

"वे सकुशल, विजयी होकर लौट रहे हैं; इसके समस्त अन्य बातें

गौण हैं मेरे लिये। आप अपने को संयत करें। मुझे विश्वास है, वे ऐसा कोई भी कार्य नहीं करेंगे जो...."

"बहू!" पेशवा-माता चीत्कार कर उठीं—"तू क्या कह रही है और क्या समझाना चाहती है मुझे, समझ नहीं पा रही हूँ मैं। बाजी अपने साथ एक यवनी-नर्तकी को ला रहा है...."

"वह एक नारी ही तो होगी माताजी!"

"बहू!"

"मुझे अपना सौभाग्य चाहिये और मेरे सौभाग्य पर कभी मलिनता आयेगी, इसकी सम्भावना नहीं...." स्वर में कम्पन तो था पर वह अन्तस की गरिमा से दीप्त भी हो रहा था—"अगर सचमुच उनके साथ कोई आ रहा है तो वह मेरा अपना ही होगा। उन्होंने जिसे स्वीकार किया, उसे अस्वीकार करना मेरा धर्म नहीं। नारीत्व इतना ओछा नहीं होता माताजी कि इतनी साधारण-सी समस्या में उलझ कर रह जाय, विचिलित हो जाय...." और उसने धीरे से पेशवा-माता के चरणों पर हाथ रख दिया।

चिमणाजी अप्पा, मूर्तिवत् उसकी ओर निहार रहे थे। इस समाचार ने स्वयं उन्हें भी कम अस्थिर नहीं बनाया था। परन्तु काशीबाई के नारीत्व ने अपने ओज से उनकी अस्थिरता को झटका-सा दिया तो घबरा कर माता की ओर देखने लगे।

उसी समय, पेशवा-माता के परम विश्वासी पंडित हरिराम ने द्वार से झाँककर अन्दर देखा—"श्रीमन्त पेशवा की सेनायें, पूना के निकट पहुँच चुकी हैं...." कहकर वह अपनी लम्बी शिखा पर हाथ फिराने लगे। पेशवा-माता क्षणभर स्तब्ध-सी रहीं, फिर उठकर द्वार की ओर बढ़ आयीं।

"और मेरा बाजी!"

"वे पूना में प्रवेश कर चुके हैं...."

"और फिर भी वह मेरे पास पहुँचने में विलम्ब कर रहा है!" उनके स्वर में विकलता उमड़ आयी थी—"अरे अप्पा, देख तो बेटा, बाजी के आने में विलम्ब क्यों हो रहा है...."

"पेशवा-माता!"

"पंडित जी...." वे अत्यन्त व्यस्त-भाव से उनकी ओर देखने लगीं—"कहिये....आज मैं...."

"शास्त्री जी स्वयं पेशवा से भेंट करने गये थे और उन्होंने वहाँ जो कुछ देखा....वह...."

"पंडित जी!" बीच ही में काशीबाई ने उन्हें टोंकते हुए कहा—"आपने पेशवा के आगमन पर होनेवाले पूजन का प्रबन्ध तो कर ही लिया होगा?"

"हाँ-हाँ, बहूरानी!" पंडित हरिराम अप्रतिभ-से रह गये। उन्होंने कनखियों से देखा—पेशवा-माता का वात्सल्य रुद्ध-सा हो गया था। मुखपर आशंका की एक मोटी परत बिछ गयी थी। उन्होंने कुछ कहने को मुख खोलना चाहा पर स्वर बाहर नहीं हो पाये।

"माताजी...."

"हाँ, बेटी!"

"वे आ रहे हैं...."

"हाँ, बेटी!"

"आप उन्हें आशीर्वाद देने के लिये द्वार तक नहीं चलेंगी? बिना आपके शुभ-दर्शनों के वे भीतर कैसे आयेंगे? विजय-पूजन...."

"पंडित जी!" सहसा पेशवा-माता का स्वर तीव्र हो आया, रुद्धता भी कम नहीं थी।

"आज्ञा, पेशवा-माता!"

"शास्त्रीजी ने क्या देखा?"

"उन्होंने अपनी आँखों से एक लावण्यमयी तरुणी को...."

"क्या ?"

"पता लगा है, वही मस्तानी नामक नर्तकी है, जिसे ओरछा-नरेश ने भेंट स्वरूप...."

"नहीं, असम्भव है यह !" पेशवा-माता चीख पड़ीं—"महाराज छत्रसाल को मैं खूब जानती हूँ। उन-सा वीर कभी मेरे वीर-पुत्र को पतन का मार्ग-निर्देश न देगा....और मेरा बाजी ! नहीं, अपने वंश-गौरव का अभिमानी मेरा पुत्र इतना पतित कभी न होगा....कभी नहीं...."

"पेशवा माता, सत्य यही है...."

"चुप रहो !" उत्तेजना पर पुनः वात्सल्य-रस लहर उठा—"बहू रानी, तुम आरती की थाल सजाओ बेटी....मेरा बाजी....विजयी होकर आ रहा है....जाओ....जाओ...."

"मैंने सारी तैयारी कर ली माता जी !" उनके इस परिवर्तित स्वरूप से वह उत्साहित-सी हो गयी—"पण्डित जी, आप बाहर चलें.... मैं माता जी के साथ द्वार पर आ रही हूँ....टापों की आवाज आ रही है....जाइये आप....लगता है, वे आ गये...."

चिमणा जी अप्पा पहले ही चले गये थे। पण्डित जी भी सिर झुकाये चले गये।

महल की ड्योढ़ी मङ्गल-वाद्यों की मधुर-ध्वनि में गूँज रही थी।

● ●

पूना नगर में हलचल मची थी। जन-जीवन में गहरी अशान्ति दीख रही थी। मुख्य-मार्ग जनाकीर्ण हो रहा था। विजयी-पेशवा के साथ एक यवनी-नर्तकी भी आयी है और उसे देखने के लिये सभी परस्पर विचार-विनिमय करते हुए परम उत्सुक थे। अपने विजयी-

पेशवा के स्वागत के लिये, सभी के हाथों में रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों की छोटी-छोटी डलिया दिखाई पड़ रही थी....

दस-पन्द्रह घुड़सवारों के साथ, चिमणा जी अप्पा आते दीख पड़े। वे महल की ओर से आ रहे थे। मुद्रा अत्यन्त गम्भीर हो रही थी। उनके पार्श्व से, बाजीराव का ज्येष्ठ पुत्र नाना चल रहा था—सभी के मुख पर आशङ्का के बादल मँडरा रहे थे।

"देख रहे हो पटेल!" एक ने बगल में खड़े वृद्ध मराठा की ओर सङ्केत किया—"अप्पा साहब की मुद्रा स्पष्ट कह रही है कि हमने जो कुछ सुना है, सत्य है...."

"हूँ...."

"क्या सचमुच वह यवनी है?"

"हाँ, भाई!"

"अपने पेशवा तो ऐसे नहीं थे....चितपावन-ब्राह्मणों के मुख पर कालिख पुत गयी...." मन का असन्तोष-आश्चर्य, शब्दों के रूप में प्रकट हो रहा था। कुछ तरुण मराठा, असन्तोषी लोगों को, उनकी पोंगापंथी पर फटकार भी रहे थे। परन्तु उनकी फटकार अरण्य-रोदन ही सिद्ध हो रही थी।

दूर से 'पेशवा बाजीराव की जय....' का तुमुल कोलाहल सुन पड़ा।

"पेशवा आ रहे हैं...."

"मैं तो चला भाई, यह पाप-दृश्य देख सकने का साहस नहीं मुझमें। हरि-हरि!" कइयों ने समर्थन भी किया मगर उसी समय सामने पवन पर पेशवा बाजीराव मंथर-गति से आते दीख पड़े। अगल-बगल अनेक मराठा सरदार तथा आगे-आगे पेशवा के अङ्ग-रक्षक सैनिकों का दल चल रहा था। चिमणा जी अप्पा ने आगे बढ़कर पेशवा को प्रणाम किया।

"अप्पा !" पेशवा ने कम्पित स्वर में कहा—"माता जी प्रसन्न तो हैं ?"

"वे आपकी आकुल-प्रतीक्षा कर रही हैं, राव !"

"हूँ !" पवन उसी गति से आगे बढ़ता रहा। वातावरण में अवसाद घुल गया था। नागरिकों ने जय-जयकार की, पुष्प-वर्षा से पथ पट गया। पेशवा के अधरों पर स्मिति लौट पड़ी।

पवन बढ़ता रहा। महल की दूरी सिमटती रही।

अप्पा की दृष्टि चारों ओर घूमती हुई किसी को तलाश कर रही थी, पेशवा से यह छिपा न रहा—"मस्तानी हमारे साथ ही है अप्पा !" मुख से निकल गया।

"मस्तानी !"

"हाँ !"

"वह...."

"वह मेरे साथ आयी है, ओरछा से !" और तभी स्वामी का सङ्केत पाकर पवन उछल पड़ा। सबको पीछे छोड़ता हुआ वह महल की ओर उड़ चला। महल का बाहरी फाटक पार करता हुआ पवन भीतर घुसा। सामने ही पेशवा-परिवार की सभी औरतों से घिरी राधाबाई खड़ी थीं। बाजीराव पवन से कूदकर माता के चरणों पर झुक गये।

"बाजी !"

"माता जी...." माता की फैली हुई भुजाओं में बँध गये वे। वातावरण करुण हो उठा। उसी समय सलज्ज-भाव से काशीबाई, विजयी स्वामी के मस्तक पर कुंकुम-अक्षत लगाने के लिये, बगल में स्वर्णथाल लिये खड़ी सेविका की ओर झुकी कि—

"बाजी !" राधाबाई गरज उठीं—"कौन है यह ?" उन्होंने

अपने चरणों पर झुकी मस्तानी की ओर घृणापूर्ण दृष्टि डाली और तब जल्दी से पैर खींच लिये।

नीरू ने अत्यन्त गुप्त रूप से मस्तानी को पेशवा के पूर्व ही महल में पहुँचा दिया था। वातावरण में थिरकता मङ्गल-गान झटके से थम गया। मस्तानी वैसे ही धरती की ओर झुकी थी। माता का क्रोध देख, बाजीराव क्षणभर के लिये विचलित-से हुए मगर शीघ्र ही उन्होंने अपने को सम्हाल लिया—"माता जी!"

"चुप रह कुलांगार!"

"माता जी...."

"अपना यह पतन दिखलाने के पूर्व तू मर क्यों न गया बाजी!" वे घायल सिंहनी की भाँति दहाड़ रही थीं। काशीबाई के हाथों से आरती की थाल भूमि पर आ रही। उसने लपक कर मस्तानी को अपनी बाँहों में सम्हाल लिया—"माता जी, मस्तानी मेरी अनुजा है!" बाजीराव की आँखों से दो बूँदें ढुलक कर उसके पैरों पर गिर पड़े।

"बहूरानी!"

"माता जी...." उसने दृढ़ स्वर में कहा—"मस्तानी को आशीर्वाद देना ही होगा आपको!" और मस्तानी को धीरे से उनके सामने कर दिया—"माता जी...."

"बहूरानी...." वे लड़खड़ाईं। पीछे खड़ी अप्पा की पत्नी ने उन्हें सम्हाला।

मस्तानी उनके चरणों पर मस्तक रखे, आँसुओं से चरण पखार रही थी।

"इसे मेरी आँखों से दूर कर दो!" उन्होंने निढाल स्वर में कहा—"बाजी, तूने यह क्या कर दिया?" वे अचेत-सी हो रही थीं।

काशीबाई ने मस्तानी का हाथ पकड़ा, एक बार स्वामी की ओर

देखा और ड्योढ़ी की सीढ़ियों की ओर बढ़ गयी। पेशवा की आँखों का तरल-शून्य सिहर उठा। काशीबाई के नारीत्व के समक्ष वे अपने को अत्यन्त तुच्छ अनुभव कर रहे थे और तुच्छता की इस अनुभूति से उनका मर्म विद्ध-सा होता जा रहा था। नीरू उनकी बगल में ही खड़ा था। परिस्थिति की विकटता का अनुभव करते उसे देर न लगी।

"राव!"

बाजीराव ने उसकी ओर निरीह दृष्टि से निहारा—"मैं माता जी के पास जा रहा हूँ...."

राधाबाई को उनके शयन-कक्ष में पहुँचा दिया गया था। वृद्धावस्था का शैथिल्य एकबारगी इतना बड़ा आघात सह न सका, वे अचेत हो गयी थीं। पेशवापरिवार की सभी महिलायें, उनके शयन-कक्ष में जमा थीं। इस समय आस-पास कतिपय मराठा-सरदारों के अतिरिक्त और कोई न था।

"आप विश्राम करें, राव!"

"नहीं, नीरू!" पेशवा का स्वर रुद्ध था—"माता जी के इतने कष्ट का साधन बनूँगा, कल्पना भी न थी....भवितव्य जाने कौन-सा परिहास कर रहा है मेरे साथ— ओह!" उनका मस्तक फटा पड़ रहा था। उन्होंने दीर्घ निश्वास लिया—"हाँ, नीरू, मेरा माताजी के पास जाना इस समय ठीक नहीं—" कहते हुए वे महल की सीढ़ियों की ओर बढ़ गये।

पूना नगर भविष्यत् की कल्पनामात्र से आतङ्कित हो रहा था। मस्तानी तूफान साबित हुई थी। महाराष्ट्र का अस्तित्व सूखे पत्ते सा उड़ता हुआ दीख रहा था—भविष्यत् के उस क्रूर संकेत में।

● ●

सतारा-दरबार निस्तब्ध था। पेशवा बाजीराव की प्रणय-कथा की गन्ध वातावरण में घुल रही थी। प्रतिनिधि श्रीपतराव की आँखों में प्रतिहिंसा की खूनी चमक थी। उसने म्लानमुख बैठे महाराज शाहू की ओर देखा—"महाराज, मुझे दुख है कि हमारे पेशवा के चारित्रिक-पतन को आज सम्पूर्ण महाराष्ट्र घृणा की दृष्टि से देख रहा है।"

"हूँ!"

"सौन्दर्य की शिखा पर पेशवा का समस्त ओज भस्म हो चुका है महाराज!" महाराज शाहू की गम्भीर-मुद्रा से उसके उत्साह को झटका लगा था—"महाराष्ट्र का एक शुभचिन्तक होने के कारण, मुझे यह निवेदन करते रञ्चमात्र भी सङ्कोच नहीं हो रहा है कि ऐसे अस्थिर हाथों में राज्य की बागडोर रहना अनर्थकारी सिद्ध होगा। इतिहास इसका साक्षी है महाराज, नारी के मोहज्वाल में पड़कर ही भारत के अनेक राज्यों का पददलन हो गया है। दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान के जीवन में संयोगिता आदि नारियाँ अगर न आयी होतीं तो आज हमारे देश का मानचित्र इतना कलङ्की कभी न होता!" प्रतिनिधि ने कनखियों से दरबार की ओर दृष्टि डाली, उसके तर्क से सभासदों पर विलक्षण प्रभाव पड़ा था। पेशवा के समर्थकों के मुख पर भी आशङ्का की छाया देख वह मन ही मन मुस्कराया।

"आपका तर्क निस्सार नहीं!" महराज ने गम्भीर स्वर में कहा—"परन्तु पेशवा और चौहान में बहुत अन्तर है, इसे सम्भवतः आप नहीं अनुभव कर रहे हैं। पेशवा की चारित्रिक-दृढ़ता के लिये मस्तानी का उदाहरण पतन का प्रतीक कभी नहीं माना जा सकता...."

"परन्तु एक यवनी-नर्तकी!" महाराज के पार्श्व में बैठे राज-पुरोहित ने मन का सम्पूर्ण असन्तोष स्वर में लाकर कहा—"हमारा धर्म, हमारी परम्परायें, इसे कलङ्क की ही संज्ञा देंगे...." मराठा-राज के पौरोहित्य में उन्होंने पैंतीस वर्षों का दीर्घ समय व्यतीत किया था। महाराष्ट्र-संस्थापक छत्रपति शिवाजी तक ने उन्हें अपने धर्म गुरुओं में माना था, इस नाते शाहू अत्यन्त आदर करते थे। वे रुके नहीं—"महाराज, ऐसे भ्रष्ट व्यक्ति को महाराष्ट्र का पेशवा मानना मुझे किसी भी मूल्य पर स्वीकार नहीं। मुसलमानों में जो जन्मजात घृणित संस्कार होते हैं, वह कर्म भी दूर नहीं हो सकते। हमें उनकी जाति से घृणा करनी चाहिये न कि अनुराग?"

"गुरुदेव!"

"पेशवा को इसके लिये या तो प्रायश्चितस्वरूप उस नर्तकी से अपना सम्बन्ध विच्छेद करना होगा अन्यथा...."

"अन्यथा?" महाराज का स्वर काँप गया।

"अन्यथा उसे अपनी पेशवाई से पृथक् हो जाना होगा। हमने हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान का सङ्कल्प किया है और उस सङ्कल्प की पूर्ति तभी होगी, जब हमारी धमनियों में निष्पाप-चरित्र की ज्वालामयी धारा प्रवाहमान हो...." उन्होंसे निर्णयात्मक स्वर में कहा। वृद्धावस्था के दौर्बल्य से वे हाँफने लगे थे।

"परन्तु गुरुदेव...."

"आप महाराष्ट्र के स्वामी हैं महाराज, पेशवा नहीं?"

"सो तो ठीक है मगर आज महाराष्ट्र चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ है गुरुदेव!"

"तो क्या हुआ?"

"उनका सामना करने के लिये हमें बाजीराव जैसे सुयोग्य वीर नायक की आवश्यकता है। कुछ ही वर्षों में अपनी दुस्साहसिक वीरता

से, कई महान शत्रुओं को पस्त करके उसने यह प्रमाणित कर दिया है कि उसके समान, महाराष्ट्र का नायकत्व और कोई व्यक्ति करने में समर्थ नहीं...."

"यह आपका भ्रम है राजन् !"

"नहीं, गुरुदेव !" उनके स्वर में जितना ही कम्पन था, उतनी ही दृढ़ता भी, निश्चयात्मक दृढ़ता—"महाराष्ट्र के जन-जीवन में अपनी वीरता से उसने जो आग भर दी है...."

"महाराज !" राज्य-प्रतिनिधि ने बीच ही में कहा—"आज जन-जीवन में पेशवा बाजीराव के प्रति उतनी ही घृणा भी व्याप्त हो गयी है। इसकी उपेक्षा भी तो नहीं की जा सकती—"

दोनों ओर से तर्कों की बौछार ने अस्थिर-चित्त शाहू को अप्रतिभ सा कर दिया। वे सहसा कुछ उत्तर न दे सके। राज्य-प्रतिनिधि ने अवसर से लाभ उठाया—"आपको इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये महाराज !"

"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता...."

"पेशवा को अपने पद और उसकी गम्भीरता का सम्मान तो करना ही चाहिये...."

"मैं क्या करूँ ?"

"आप अपने को स्थिर करें और हर बात में पेशवा की ओर निहारते रहना कभी आवश्यक न समझें...."

उसी समय सामने से पेशवा बाजीराव आते दीख पड़े। उनकी उपस्थित से एकबारगी दरबार चौंक पड़ा। बुन्देलखण्ड से लौटने के पश्चात् सतारा प्रथम बार आना हुआ था उनका। मुख पर अन्तर्द्वन्द्व की आभा स्पष्ट थी। महाराज तथा दरबार को यथायोग्य अभिवादन करने के बाद, अपने लिये निश्चित आसन पर बैठ गये वे।

"पेशवा !"

"आज्ञा, महाराज !"

"अस्वस्थ हो क्या ?"

"नहीं, महाराज !"

"बुन्देलखण्ड का विजय-संवाद तुम्हारे पत्र से ज्ञात हो गया था; परन्तु सतारा आने में तुमने बहुत विलम्ब किया, कारण ?" मन के उद्वेग का शमन वे बड़ी कठिनाई से कर पा रहे थे। छिपी नजरों से महाराज की ओर निहारता हुआ राज्य-प्रतिनिधि मन ही मन घबरा रहा था। राज पुरोहित, आँखें बन्द किये गम्भीर-चिन्तन में खो गये-से प्रतीत हो रहे थे। अपने प्रश्न पर महाराज शाहू जाने क्यों सहम उठे। पेशवा के ज्वलन्त-व्यक्तित्व के समक्ष वे निरीह-से हो जाते हैं, ऐसा अनुभव आज प्रथम बार हो रहा था। चतुर प्रतिनिधि को उनकी स्थिति भाँपने में कोई कठिनाई न हुई और तब उसकी घबराहट और बढ़ गयी। दरबार पूर्णतया निस्तब्ध था।

पेशवा मौन ही रहे आये। उनकी तीव्र दृष्टि में, दरबार का कोना-कोना तिर रहा था।

"पेशवा !" उन्हें मौन देख, शाहू ने अपने प्रश्न का स्मरण-सा दिलाना चाहा—"मैंने पूछा था...."

"महाराज, मेरे खयाल से कारण आपसे अजाना नहीं और अगर आपकी यही आज्ञा हो कि मैं स्वयं उसे व्यक्त करूँ तो....खैर, इस सम्बन्ध में मेरा आपसे निवेदन है, अगर मुझपर अविश्वास कर रहे हों तो आज्ञा पाते ही, महाराष्ट्र की सेवा का जो उत्तरदायित्व आपने मुझे सौंपा है, उससे मुक्त होने को तत्पर हूँ...."

"पेशवा !" महाराज चीख-से उठे—"यह तुम कह क्या रहे हो ? मैं तुमपर अविश्वास करूँगा ?"

"महाराज, सब कुछ सम्भव है। मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। आपको अवश्य ही विदित होगा कि आज महाराष्ट्र मेरी

ओर शंकित—संभव है, घृणित भी—दृष्टि से देख रहा है....कारण....कारण...."

"यह तुम पर अन्याय तो नहीं बाजीराव!" कहनेवाले राज-पुरोहित थे।

"अन्याय!" पेशवा के अधरों पर मुस्कान थी, जिसकी व्यंग्यमयी चमक से सारा दरबार अस्थिर हो उठा—"गुरुदेव, न्याय और अन्याय का विवेचन करने का अधिकार तो आप गुरुजनों को ही है। हाँ, इतना मैं अवश्य कहना चाहूँगा कि रूढ़िग्रस्त समाज और उसकी परम्परायें अमानुषी हैं...."

"पेशवा!" पुरोहित जी गुर्राये—"एक यवनी-नर्तकी के मोह-जाल में बद्ध होकर तुम समाज पर इतना बड़ा दोषारोपण कर रहे हो। समाज की शक्ति का आभास तुम्हें नहीं, उससे विरोध करके तुम रहोगे कहाँ? इसे स्मरण रखो, एक दिन ऐसा आयेगा, जब तुम्हें अपने किये पर पछताना होगा। समाज की ज्वाला में तुम्हें भस्म हो उठना पड़ेगा...." आवेश में उनका शरीर थर-थर काँप उठा। भवें तन गयी थीं।

"पर मेरा अपराध?"

"ब्राह्मण होकर यह पूछते तुम्हें लज्जा आनी चाहिये पेशवा बाजीराव! स्व० बालाजी विश्वनाथ के उज्ज्वल-कुल पर कलङ्क-कालिमा पोत दी है तुमने। उनकी आत्मा अपने पुत्र के इस घृण्य स्वरूप पर क्या हाहाकार नहीं करती होगी? तुम मेरे बालक सदृश हो बाजीराव! अपने को सम्हाल लो। तुम एक वीर पिता के वीर पुत्र हो, आज समस्त महाराष्ट्र की आँखें तुम्हारी ओर केन्द्रित हैं....तुम्हारा सुख-दुख, इच्छा-अनिच्छा केवल अपना नहीं, उसमें कोटि-कोटि हिन्दू-हृदयों...." पुरोहित का स्वर कहते-कहते तरल हो उठा था।

"गुरुदेव, मैं विवश हूँ!"

"क्या ?"

"मस्तानी मेरे जीवन की ज्योति-रेखा है, उससे पृथक् मेरा अस्तित्व शून्य में भटकता-सा रहेगा....हिन्दू-समाज के पतन का प्रमुखतया कारण है, उसके हृदय की क्षुद्रता....मनुष्य में जातिगत-संस्कार अन्तर्भूत नहीं होते—वैभिन्य तो उसके संस्कारों एवं वातावरण की देन होता है....और ये संस्कार....वातावरण जनित प्रभाव सर्वथा अमिट नहीं होते...."

"मुझे तुम मानव-दर्शन की शिक्षा देना चाहते हो बाजीराव !" पुरोहितजी पुनः उत्तेजित हो उठे।

"नहीं-नहीं, गुरुदेव !"

"तो ?"

"मेरे कहने का तात्पर्य मात्र यह है कि मनुष्य, मनुष्य में कोई मौलिक भेद नहीं होता। मानवीय-सम्बन्धों में अगर हार्दिकता है तो वर्ग-वैषम्य व्यर्थ है...." कहते हुए पेशवा का मुख तमतमा उठा। उन्होंने महाराज शाहू की ओर घूम कर कहा—"महाराज, मुझे आपकी आज्ञा चाहिये...."

क्रोधावेग सम्हाल न सकने के कारण पुरोहित जी उठकर दरबार के बाहर चले गये।

"बाजीराव !"

"महाराज...."

"तुम्हें हो क्या गया है बाजीराव, ऐसे तो तुम कभी नहीं थे !" उनके स्वर में करुणा, दुख और असंतोष की त्रिवेणी लहर रही थी—"अपने निश्चय पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लो। तुम्हारी ओर कोई अपमानक ढंग से उँगली उठाये, इसे मैं कभी भी सह नहीं सकता। तुम्हें भी क्या यह स्थिति असह्य नहीं लगेगी बाजीराव ?—सोचो तो !" और वे निढाल-से हो मसनद के सहारे लुढ़क गये।

"महाराज !" बाजीराव ने बड़ी करुण-दृष्टि से उनकी ओर निहारा।

"सोच देखो बाजीराव !" महाराज के स्वर में वही 'त्रिवेणी' लहरा रही थी—"मस्तानी के लिये तुम बहुत बड़ी बाजी लगाने जा रहे हो....अपने महाराष्ट्र के भविष्य की बाजी !"

"नहीं !" सहसा ही करुणा तीव्र आवेग में पग उठी—"यह आपका मात्र भ्रम है !"

"बाजीराव, सत्य हमारे सामने अत्यन्त स्पष्ट रूप में...."

"महाराज, अगर विश्वास कर सकें तो....बाजीराव को आप कभी कर्तव्य विमुख होता नहीं पायेंगे। जिस दिन ऐसा अनुभव होगा कि मस्तानी के कारण मैं अपने कर्तव्यों से रञ्चमात्र भी विमुख हो रहा हूँ तो....तो....इस संसार में न तो मस्तानी का अस्तित्व रहेगा और न ही मेरा !"

प्रतिनिधि जल-भुन कर कबाब हुआ जा रहा था। बाजीराव ने उसकी ओर एक उपेक्षा की दृष्टि डाली और एक दीर्घनिश्वास के साथ महाराज की ओर निहारने लगे।

"मुझे विश्वास है तुम पर पेशवा परन्तु...."

"मुझे समाज से कोई भय नहीं। उससे सङ्घर्ष करने में मैं पीछे न हटूँगा। परम्परायें उसी हद तक लोक-कल्याणी होती हैं, जब तक उसमें मानवीयता के मूलभूत तत्व विद्यमान रहते हैं। वह जब अपने जर्जरित, कुष्ठ से सड़े अवयवों द्वारा मानवीयता का गला घोंटने को प्रस्तुत होती है तो उसका विरोध, हर सम्वेदनशील मानव का कर्त्तव्य होना चाहिये। परम्पराओं का महत्व वीभत्सता में नहीं प्राज्वलता में सन्निहित होता है। मस्तानी को मैंने अपनी जीवन-सङ्गिनी रूप में ग्रहण किया है, उसके बाह्यस्वरूप से नहीं अपितु उसके अन्तस की

परख करके। उसने हमको परखा और मैंने उसे....हार्दिक-बन्धन.... नारी और पुरुष का अनुराग-बन्धन इतना कमजोर नहीं कि...."

"सुन्दर !" प्रतिनिधि अपने को जब्त नहीं कर पाया—"अब तक पेशवा बाजीराव के मुख से वीरत्व से प्रज्वलन्त विचार ही सुनने का अवसर मिला था। आज मालूम हुआ वे इश्कोमुहब्बत पर भी पर्याप्त अधिकार रखते हैं! लहू और शहद की एक साथ वर्षा—विलक्षण...."

"चुप रहिये !" बाजीराव गरज उठे—"अपनी सीमा का अति-क्रमण आपके लिये बुरा होगा। यह मेरी अपनी वैयक्तिक समस्या है, जिसमें आपका पाँव अड़ाना मुझे असह्य है...." आवेश में उनका हाथ बगल से लटक रही 'प्रसादिनी' की मूठ पर जकड़ गया।

सभासदों में आतङ्क छा गया। प्रतिनिधि की भवें तन गयीं। शाहू के मुख पर भय की छाया दीख पड़ी—"पेशवा ! सम्हालो अपने को...." घबराहट में वे उठने-से लगे। प्रतिनिधि के समर्थक सरदारों के हाथ भी अपनी तलवारों की मूठ पर जम गये—"तुम सब आपस में....ओह, क्या करना चाहते हो ?"

"महाराज, पेशवा को अपने बल पर घमण्ड हो गया है, मैं अपना अपमान बर्दाश्त नहीं कर सकता। देख रहे हैं न, तलवार का भय दिखलाकर अपने को....पेशवा को स्मरण रखना चाहिये, तलवार के खेल मैंने भी बहुत खेले हैं! मेरे सामने का बालक, आज आँखें दिखा रहा है...."

"पेशवा को कभी अपने बल का घमण्ड नहीं हुआ है प्रतिनिधि महोदय ! हाँ, उसे इस बात का गर्व अवश्य है कि महाराष्ट्र का मस्तक उन्नत रखने में अपने लहू को पानी की भाँति बहा सकता है...."

"और मैंने ?" प्रतिनिधि गरज उठा—"मैंने महाराष्ट्र के साथ कौन-सी गद्दारी की है ?"

"मुझे सब कुछ मालूम है महोदय ! अच्छा हो, मेरा मुख न खुलवायें....महाराष्ट्र आपकी 'पुनीत' सेवाओं का सदैव आभारी रहेगा...."

"बाजीराव !" प्रतिनिधि उठकर खड़ा हो गया। देखते ही देखते उसके समर्थकों की पचीसों तलवारें नग्न हो गयीं। क्रोधावेग में वह उन्मत्त-सा हो रहा था—"तुम्हारे दर्प को चूर्ण कर देने की पर्याप्त शक्ति मुझ में है बाजीराव ! पेशवाई ने प्रतिनिधि के सदैव तलवे सहलाये हैं, इसे भूलो नहीं...."

पेशवा अविचलित भाव से बैठे रहे। उनकी मुद्रा गम्भीर अवश्य हो आयी थी—"महाराज, क्या राजधानी में मेरे आने का यही परिणाम होगा ?"

"नहीं-नहीं, पेशवा ! तुम शान्त रहो....प्रतिनिधि, आपके इस उद्यत व्यवहार से मुझे अत्यन्त खेद है, आप दरबार को परस्पर विग्रह का सङ्घर्षस्थल बनाना चाहते हैं ?" परिस्थिति की विकटता ने शाहू की घबराहट को उत्तेजना में परिवर्तित कर दिया—"सभा समाप्त होती है...."

प्रतिनिधि ने झुककर उनका अभिवादन किया—"मुझे दुख है, महाराज !"

"मुझे ऐसी आशा न थी...." शाहू हाँफ रहे थे।

"मैं विवश था महाराज !" प्रतिनिधि ने शान्त-स्थिर स्वर में कहा—"विश्वास रखिये, भविष्य में ऐसा अवसर नहीं आयेगा...." उसने पुनः अभिवादन किया और तेजी से अपने समर्थकों के साथ बाहर निकल गया। महाराज ने सन्तोष की एक लम्बी साँस ली। सङ्केत पाते ही सेवकों ने उनके सामने स्वर्णपात्र में हलके हरे रङ्ग का कोई सुगन्धित पेय प्रस्तुत कर दिया, जिसे उन्होंने एक ही साँस में खाली कर दिया। दरबार में बीस-पचीस वयोवृद्ध सभासद उपस्थित रह गये थे।

"अनर्थ हो जाता आज !"

"पेशवा ने अपने को शान्त रखकर प्रशंस्य कार्य किया है...." महाराष्ट्र के विख्यात न्यायाचार्य सूर्या जी ने स्नेहपूर्ण दृष्टि से बाजीराव की ओर देखा।

"दादा !" बाजीराव का कण्ठ रुद्ध था।

सूर्या जी ने उठकर उनके सिर पर अपना काँपता हुआ हाथ रख दिया—"बाला जी विश्वनाथ की साक्षात् प्रतिमा हो तुम। वही तेज और वही सहिष्णुता परन्तु....बेटा, अपने इस वृद्ध दादा का एक अनुरोध मान सकोगे ?" वृद्ध सूर्या जी के मुख पर एक विचित्र-सा दैन्य झलक रहा था।

"दादा !"

"बेटा, अपने मस्तक से यह कलङ्क धो डालो !"

"दादा...."

"तुम्हारी माता जी ने जिस मर्मभेदी करुणा में मेरे पास पत्र लिखा है, उसका स्मरण करके अब भी रोमाञ्च हो आता है। अपनी साध्वी-सहधर्मिणी काशीबाई....अपने पुत्रों...."

"पेशवा-माता ने मुझे भी लिखा है न्यायमूर्ति !" महाराज शाहू प्रकृतिस्थ हो चले थे।

"मुझे मालूम है, महाराज !"

बाजीराव को अनुभव हुआ, जैसे किसी निर्दय हाथ ने उनके फेफड़ों को पीस-सा दिया हो। मानस के तार-तार सिहर उठे। आन्तरिक पीड़ा की अनुभूति ने मस्तक को स्वेद-कणों से भर दिया।

"बोलो बोलो, पेशवा !"

"मैं विवश हूँ महाराज...."

"तो क्या, मैं भी निराश हो जाऊँ बेटा !" न्यायमूर्ति का स्वर बेतरह काँप रहा था।

"दादा, महाराज, क्या मस्तानी मुसलमान है इसीलिये वह मेरी जीवन-सङ्गिनी होने योग्य नहीं ? हमारे किसी भी शास्त्र ने मानव-मानव में वैषम्य मानने का सङ्केत नहीं किया है...."

"वह नर्तकी है पेशवा !"

"मैं मानता हूँ महाराज कि वह नर्तकी है; परन्तु रूपा-जीवा कभी नहीं रही है...."

"फिर भी तुम...."

"दादा, आप अपने हाथों मेरे हृदय को चीर कर निकाल लें और तब आप सबको विश्वास हुए बिना न रहेगा कि उसमें वासना का पङ्क नहीं, पवित्र अनुराग का स्पन्दन है...." उन्होंने म्यान से 'प्रसादिनी' निकाल कर न्यायमूर्ति के चरणों पर रख दी।

उपस्थित सभासदों के साथ ही महाराज शाहू भी करुणार्द्र हो उठे। बाजीराव की पीड़ा सबके मन से सिहरन बन कर स्पर्शित हो उठी। न्यायमूर्ति ने झपटकर पेशवा को अपने हृदय से लगा लिया—"मुझे तुम पर विश्वास है बाजीराव ! परन्तु मैं खूब जानता हूँ, तुम्हारे अनुराग को समाज कभी उस पवित्र रूप में स्वीकार न करेगा। तारुण्य के भावोद्वेग में भले ही तुम अभी इसका अनुभव न कर सको मगर जब समाज के विरोध की ज्वाला में तपकर तुम्हारा अनुराग.... कल्पनामात्र से मुझे रोमाञ्च हो आता है...."

"फिर भी दादा, मैं पराङ्मुख कभी न होऊँगा !" मुख पर दृढ़ निश्चय की दीप्ति थी और स्वर में विचित्र-सा तनाव—"सच्चे अनुराग का पुष्प, सदैव पीड़ा, लांछना और अवसाद में पल्लवित होता है, इससे उसका रस क्या सूख जाता है ? नहीं। पीड़ा और लांछना तो उसकी जीवन्तता का प्रोज्वल प्रतीक होती हैं...." उन्होंने झुककर वृद्ध सूर्याजी का चरणस्पर्श कर लिया—"मैं आपके आशीर्वाद का

अधिकारी हूँ और चाहूँगा कि मेरा वह अधिकार आप हमेशा सुरक्षित रखें...."

"पेशवा !"

"महाराज, मुझे मालूम है, माताजी ने मेरी इस अनैतिकता के लिये आप के पास भी लिखा है परन्तु न्याय करते समय मेरी विवशता को मद्देनजर अवश्य रखा जाय, यही निवेदन करने आया था—सामाजिक विरोधों की ज्वाला में मेरा हृदय कभी भस्म न होगा, यह विश्वास मुझे क्षणभर को भी कर्तव्यविमुख न होने देगा—बस !" मुद्रा पर अपार दृढ़ता विराज रही थी। महाराज शाहू चाहकर भी कुछ कह पाने में असमर्थ रहे। बाजीराव ने अनुभव किया, महाराज के साथ ही अन्य सभासदों के मन में भी विरोध, करुणा और सहानुभूति का मन्थन हो रहा है। सभा में गहरा मौन व्याप्त हो गया। कुछ देर बाद, बाजीराव ने उठकर महाराज से चलने की आज्ञा माँगी।

महाराज चौंके—"क्या पूना ?"

"हाँ, महाराज !" और वे सभासदों का अभिवादन करते हुए धीरे-धीरे बाहर चले गए।

बाजीराव-मस्तानी की प्रणय-चर्चा से महाराष्ट्र आतङ्कित-सा भविष्यत् की ओर निहार रहा था, जो अपने आप में एक भयङ्कर तूफान सँजोये अट्टहास कर रहा था।

● ●

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। पेशवा-महल निद्रालु-सा झूम रहा था। काशीबाई ने मस्तानी के लिये, महल के पिछले हिस्से में स्वयं अपनी देख-रेख में, दस-बारह सुन्दर कमरों की व्यवस्था कर दी

थी। परिवार का कोई भी सदस्य, मस्तानी से सम्भाषण करने में प्रसन्नता का अनुभव न करता था। पेशवा-माता के बरजने पर भी, जब काशीबाई ने मस्तानी को अपने आप में आबद्ध रखा तो बाजीराव मर्माहत हो उठे। उसके हृदय की महानता, पग-पग पर उन्हें ठोकर-सी महसूस होती। अनेक बार उद्वेग से विवश हो, वे उस देवी के चरणों पर माथा टेक देने का निश्चय कर चुके हैं परन्तु हर ऐसे अवसर पर काशीबाई किसी बहाने सामने से टल जाती।

घड़ियाल ने रात्रि के अन्तिम प्रहर का जैसे स्वागत-गान किया। झरोखे पर उन्मन-सी खड़ी मस्तानी चौंक पड़ी। सामने काशीबाई का आवास दीख रहा था। उसके शयन-कक्ष के ठीक सामने ही काशीबाई का शयन-कक्ष पड़ता था। आँखें अनायास ही उस ओर उठ गयीं और तब अनायास ही अनुभव हुआ, किसी ने मन में सुई-सी चुभो दी हो!

बुन्देलखण्ड से साथ आयी सखियों ने पूना आने पर जिस 'घृणामय-स्वागत' का अनुभव किया, उससे बेचारी मर्माहत हो गयीं। पेशवा-परिवार के अदने सेवक तक उन्हें अस्पृश्य समझते थे। पर काशीबाई और बाजीराव के भय की दीवार उन्हें कभी सीमा का अतिक्रमण करने नहीं देती थी। स्वयं उसकी ही स्थिति क्या ठीक है?....सोचकर रोमाञ्च हो आया।

"क्या सोच रही हो बहन!" चौंकी, जल्दी से घूमकर देखा तो अधरों पर स्मिति लिये काशीबाई खड़ी थी—"अकेले मन नहीं लगता है न? अरी पगली, अभी तो उन्हें गये सात ही दिन...."

"जीजी!" उसका स्वर ही नहीं, सारा शरीर काँप रहा था—"मुझ अभागिन पर तुम्हें दया आती रही है तो उसे व्यंग्य से बींध देने...." काशीबाई ने भले ही विनोद में कहा हो; परन्तु उससे वह बेतरह-तिलमिला गयी थी—"जीजी, अगर तुम अपनी दया-अनुकम्पा

का दामन इस तरह समेट लोगी तो—नहीं, नहीं-मैं यह कभी भी सह न कर सकूँगी....मेरा अब ठिकाना भी तो कहीं नहीं....मर भी तो नहीं सकती जीजी...." और उसने झुककर काशीबाई के पैरों पर सिर रख दिया।

काशीबाई अवसन्न-सी रह गई। उसने भरजोर मस्तानी को अपनी भुजाओं में बाँध लिया—"मुझपर विश्वास नहीं!" तुम्हें स्वर भर्रा उठा—"अपनी अनुजा के अतिरिक्त और कुछ कभी समझा है तुम्हें? पगली, जिसे मेरा देवता पूज्य समझता हो, वह....वह तो मेरे प्राणों...."

"जीजी!"

"तुम्हें मेरे कारण दुख हुआ....सच कहती हूँ मस्तानी, मेरी बहन, मैं पीड़ा की गहरी झील में डूब गयी हूँ....मुझे क्षमा कर दो...."

"जीजी!"

"मस्तानी!" काशीबाई का स्वर थरथरा रहा था—"हिन्दू-नारी पति को अपना सौभाग्य मानती है और उस सौभाग्य पर कालिमा पुत जाय, कोई उसे अपहृत कर ले—यह उसे मरणतुल्य ही प्रतीत होता है...." कहकर उसने मस्तानी की छलक रही आँखों में कुछ खोजने का प्रयत्न किया।

सुनकर मस्तानी सचमुच घबरा गयी—"हाँ, जीजी!"

"पगली!" काशीबाई उन्मुक्त भाव से हँस पड़ी—"घबरा गयी। सुन तो, हिन्दू-नारी की गरिमा की प्रोज्वल-परम्परा का ज्ञान तुझे नहीं। नारी पुरुष की पूरक होती है। उन्होंने तुझे, मेरी पूरकत्व-शक्ति का हिस्सेदार बनाया है, अपमान के हेतु नहीं, उपेक्षा के लिये भी नहीं, प्रत्युत अपने को, अपनी परुषता को और ज्वलन्त बनाने के निमित्त...."

"परन्तु...."

"सुन तो, मैंने तुझे अपनी सहयोगिनी के रूप में स्वीकार किया

है, प्रतिद्वन्द्विनी के रूप में नहीं और इतने मधुर-सहयोग को अगर दुनिया पाप की, कालिमा की, पतन की संज्ञा देती है तो देती रहे। नारीत्व दुनिया का नहीं, अपने जीवन-सङ्गी का है....''

"जीजी, तुम्हारे हृदय की विशालता को छू पाना मेरे लिये सम्भव नहीं। तुम क्या कहती हो, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता....मैं तो यह जानती हूँ कि मैंने तुम्हारे अधिकार पर डाका डाला और उसका प्रायश्चित अगर कोई है तो मेरी फूटी तकदीर के लिये कभी सम्भव नहीं....काश, कि तुम-सी देवी की पूजा करने का सौभाग्य मैं पा सकती! यह हृदय कितना पापी होता है जीजी, कितना घृणा-स्पद....ओह!"

"नहीं री, हृदय की महत्ता सदैव पावन होती है, श्रद्धेय होती है...."

"और अनुराग?"

"अनुराग हृदय की पावनता का मंजुल-प्रतीक होता है मस्तानी!" काशीबाई का स्वर गम्भीर हो आया था—"अच्छा, जाने दे, यह बता, सारी रात झरोखे पर बैठी तारे गिनते रहने में क्या मिलता है? अगर कुछ बढ़िया चीज मिलती हो तो मैं भी उससे वञ्चित क्यों रहूँ?" कहकर उसने मस्तानी के गालों से अपना गाल सटा लिया—"अरे, हाँ, जरा यह तो बता बदमाश, आज तैंने भोजन क्यों नहीं किया?"

"तुम क्या हो जीजी!"

"लो, यह भी बताना पड़ेगा?"

"हाँ!"

"तेरी जीजी...."

"और?"

"तेरी तरह औरत पर जरा घिसी हुई, पुरानी पड़ी हुई-सी! और बताऊँ?"

"जीजी!"

"माँ भी हूँ री...." कहते-कहते उसके गौर मुख पर पहले मातृत्व-गरिमा की झीनी आभा फिर लज्जा की गहरी दीप्ति दमक उठी। उस समय वह गर्भिणी थी, इसका भास भोली मस्तानी को संभवतः न था—"माँ बनने की इच्छा क्या तुझे नहीं होती मस्तानी!"

"मैं, मैं, माँ?"

"हाँ, रे!"

"यह कैसे होगा जीजी...." अनायास ही उसका गात मधुर-रोमांच से सिहर-सा उठा—"मैं तो यह-सब सोच भी नहीं पाती जीजी, तुम्हें अब कब होगा?" काशीबाई के स्नेह में उभ-चुभ करने लगी थी वह। क्षणभर पूर्व का घुटनमय वातावरण रसमय हो उठा था। कमरे की दीवारों पर चार मधुर-प्रकाश वाले मोमी शमादान ऊँघने-से लगे थे। मस्तानी को बुन्देलखण्ड से आये सात माह हो रहे थे। इस बीच उसने रहन-सहन, वेश-भूषा—सब एक हिन्दू ललना के रङ्ग में रँग लिया था। मुसलमानी-संस्कृति की गन्ध अगर आती भी थी तो उसके नाम से। नाम बदलने की उसने चेष्टा तो की थी परन्तु बाजीराव ने इसे स्वीकार नहीं किया। काशीबाई का भी समर्थन नहीं मिल सका। दोनों आकर पलङ्ग पर बैठ गयीं। पेशवा सतारा गये थे।

"सबेरा हो रहा है मस्तानी!"

"हाँ, जीजी...."

"तो अब सो रहो....हाँ, अप्पा साहब तो नहीं आये थे तुम्हारे पास?"

"नहीं तो! जीजी, भला वे हमारे पास क्यों आयेंगे? माता जी

का सन्देशा लेकर एक दासी आयी थी बस....” आशङ्का से उसका स्वर रुद्ध हो गया।

“सन्देशा !”

“नहीं, आदेश जीजी !”

“क्या ?”

“उनका आदेश है, मैं जल्दी से जल्दी अपने लिये कोई दूसरा निवास ढूढ़ लूँ....”

“क्यों ?”

“यह भी पूछती हो जीजी !” उसकी आँखें छलक पड़ीं—“माता जी को तुम्हारा मुझसे मिलना-जुलना भी अच्छा नहीं लगता होगा शायद....फिर भी तुम....मेरी उपस्थिति से, पेशवा-परिवार की सुख-शान्ति अराजकता में परिणत हो गयी है जीजी! पेशवा के जीवन में अशान्ति की सृष्टि करने के लिये ही क्या मेरा जन्म हुआ था—सोचकर अपने आप से घृणा होने लगती हूँ....”

“मस्तानी !”

“मेरे ही कारण आज पेशवा की ओर उँगलियाँ उठ रही हैं जीजी !” आँखों से ढुलक कर पाँच-सात बूँदें काशीबाई के हाथों पर पसर गयीं—“पेशवा के जीवन में अशान्ति, घुटन और अवमानता की आग लगाने के लिये ही आयी थी....नहीं, मैं अपने हृदय को कुचल डालूँगी जीजी पर....”

वातावरण की उन्मुक्त-तरलता पर पुनः अवसाद के घने मेघ छा गये थे।

“तेरी विवशता मैं समझ रही हूँ मस्तानी !” काशीबाई ने भावोद्वेग में आकर मस्तानी का मस्तक अपने सीने में गड़ा लिया—“पर तुझे सब कुछ सहना है बहन ! पेशवा के लिये, तेरी जान का मूल्य

साधारण नहीं। तू नहीं रहेगी तो महाराष्ट्र-सूर्य राहु-ग्रसन से कालिमा-च्छन्न हो जायगा....”

“जीजी, अनुराग को कवियों ने पुष्प की उपमा दी है—उन मूढ़ों ने इस उपमा से अनुराग का अपमान ही तो किया है?”

“नहीं!”

“तो?”

“पुष्प तभी सार्थक होता है मस्तानी, जब उसके हृदय में कण्टक की चुभन हो!”

मस्तानी ने जैसे सुना ही नहीं। काशीबाई ने उसके मस्तक को अपने सीने में और कस लिया। उसी समय बाहर से किसी के पैरों की आवाज आयी। काशीबाई ने चौंककर देखा—द्वार पर उसकी परिचारिका जानकी खड़ी थी, हाँफती हुई-सी।

“क्या बात है जानकी!”

“रानी, अभी-अभी माता जी आयी हैं। उन्हें बरामदे में क्रुद्धभाव से, सेवकों को कुछ आदेश देता छोड़कर मैं भागी आयी हूँ....”

मस्तानी ने आतङ्कित-भाव से काशीबाई की ओर निहारा, कुछ कहते-कहते भी स्वर कण्ठ के उधर ही अटक गया—“जीजी....अब.... अब क्या होगा?....”

“मैं देखती हूँ उन्हें!” कहती हुई वह पलंग से उतर पड़ी—“तू अब आराम से सो जा। पगली, तुझे अपने को इतना हताश नहीं बनाना चाहिये। जीवन-पुष्प की प्राप्ति के मार्ग में कण्टक तो होते ही हैं। हमें उनकी चुभन से डरना नहीं चाहिये। कण्टकों की चुभन में भी रस होता है मस्सो!” चलते-चलते उसने मस्तानी के कपोल में चुटकी काट ली और एक बार पुनः आराम से सोने को कहकर बाहर हो रही। मस्तानी ठगी-सी खड़ी रह गयी।

प्रतीची का पूर्वी छोर सिन्दूरी हो रहा था।

एक गहरे उच्छ्वास के साथ उसने झरोखे की ओर निहारा। मुख से निकल गया—"पुष्प और कण्टक, कण्टक और पुष्प...." और झरोखे पर मस्तक टिकाकर वह विचारमग्न हो गयी।

थोड़ी देर बाद, सखियों ने आकर देखा तो चकित रह गयीं—झरोखे के पट पर मस्तक टिकाये मस्तानी खड़ी ही खड़ी सो गयी थी।

नीचे तन्तु-वाद्य पर कोई संन्यासी आलाप रहा था—

'....जीवन-कण्टक को पुष्प समझ रे, पगले....'

विरोधाग्नि

चिमणा जी अप्पा के आते ही मण्डली के बीच निस्तब्धता व्याप्त हो गयी। शास्त्री जी ने अपनी बगल में बैठे वेदान्ती जी की ओर देखा और वेदान्ती जी ने धीरे से शङ्कर त्रिकालदर्शी के कन्धे पर हाथ रख दिया। अप्पा की मुद्रा अत्यन्त गम्भीर हो रही थी। अपने में डूबे हुए-से वे शास्त्री जी को प्रणाम करके तख्त की एक ओर बैठ गये। दालान के बाहर चिलचिलाती हुई धूप तप रही थी। पूना नगर की सङ्कुलता, दोपहरी की अलस में जैसे लस्त होकर निस्पन्द हो गयी थी। दूर तक नारियल के वृद्ध-तरुण-शिशु वृक्ष खड़े-खड़े ही ऊँघते दीख रहे थे।

"कैसे हो वत्स !" शास्त्री जी ने मृदु स्वर में पूछा—"इस दोपहरी में कैसे निकल पड़े ?"

"ऐसे ही, गुरुदेव !" एक दीर्घ निश्वास और—"आप सब मेरे आने के पूर्व किसी चर्चा में तल्लीन थे, मेरे आने से उसमें व्याघात पड़ गया क्या ? क्षमा चाहूँगा गुरुदेव !"

"नहीं-नहीं !" सभी ने एक ही स्वर में उनकी शङ्का निस्सार प्रमाणित करनी चाही।

"कोई नूतन समाचार ?" शास्त्री जी ने अपने श्वेत केशों में उँगलियाँ उलझाते हुए पूछा।

"गुरुदेव, परस्पर-विग्रह की ज्वाला में महाराष्ट्र का भविष्य अन्धकारमय हो रहा है...."

"क्यों....क्यों ?" शास्त्री जी चौंक पड़े—"चिरञ्जीव पेशवा के रहते यह अनर्थ कैसे...."

"पेशवा...." अप्पा के अधरों पर मरी हुई-सी मुस्कान थिरकी—"शास्त्री जी, आपके समाज ने पेशवा को बहिष्कृत कर रखा है; फिर भी उनके लिये आपकी इतनी आस्था! बड़ा विचित्र-सा लगता है मुझे तो!" स्वर में आवेश स्पष्ट था।

"अप्पा!"

"गुरुदेव...." उनका मस्तक नत था। स्वर अपेक्षाकृत शान्त, उसमें अब आवेश की चिनगारियाँ नहीं, पराजय की तरलता थी—"मेरा मतलब था...."

"तुम्हारा मतलब था कि समाज पेशवा के प्रति अन्याय कर रहा है?" शास्त्री जी का स्वर कड़ा था। उनका वयोवृद्ध व्यक्तित्व दहक-सा उठा—"एक तुच्छ यवनी, वेश्या...."

"वेश्या!"

"हाँ, वेश्या ही तो है वह, क्या नाम है...." वे अटके-से।

"मस्तानी!" वेदान्ती जी ने झटपट उन्हें सहारा दिया।

अप्पा का मुख तमतमा उठा—"मस्तानी को वेश्या कहकर आप सब पेशवा का अपमान करना चाहते हैं?"

"अप्पा!"

"गुरुदेव...."

"मैंने तुम्हें ही नहीं, तुम्हारे स्वर्गीय पिता को भी धर्म-शिक्षा दी है...."

"मैं आपको प्रणाम करता हूँ गुरुदेव! पर...."

"तुम्हारे और शिवा-परिवार के लिये मेरे मन में सदैव अपार स्नेह रहा है। क्या तुम्हें विश्वास है, जिस बाजीराव को मैंने अपनी गोद में दुलराया है, उसे अनायास ही दुखित करूँगा...."

"हमारे लिये यह अकल्पनीय है गुरुदेव !"

"एक यवनी के प्रणय-जाल में बद्ध होकर बाजीराव अपने समाज की उपेक्षा करने पर तुल गया है। समाज को हमारे शास्त्रों ने अपनी मान्यता प्रदान की है और उसका यह कर्त्तव्य होता है कि...."

"गुरुदेव !" अप्पा ने उनकी बात को बीच ही में लोकते हुए कहा—"हमारे शास्त्रों ने समाज को यह अधिकार कभी नहीं दिया है कि वह हार्दिक-अनुराग को पाप की संज्ञा दे !"

"बालक हो तुम !"

"ठीक कहा आपने, अभी वय ही क्या है !" त्रिकालदर्शी ने शास्त्री जी के कथन को बल प्रदान किया—"बाजीराव भ्रष्ट हो गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। मुझे विश्वस्तसूत्रों से पता लगा है कि उस मायाविनी के सम्पर्क में वह मद्य-माँस का सेवन भी करने लगा है ! चितपावनों की पवित्रता को उसने कलङ्कित कर दिया..." त्रिकालदर्शी की वय इस समय अस्सी को पार कर रही थी। वे भी चितपावन-ब्राह्मण थे। मराठों में उनका गहरा सम्मान था। धर्म-सञ्चालकों का उन्हें प्राण माना जाता था।

"आप क्या कह रहे हैं ?" अप्पा चीख से उठे—"मस्तानी महल के ही एक खण्ड में रहती है। भाभी स्वयं....नहीं-नहीं, आप सबको भ्रम हो गया है...पूज्य राव..."

"अप्पा !"

"गुरु देव !"

"हमें किसी भी प्रकार उस मस्तानी को पेशवा के सम्पर्क से पृथक् करना है। समाज का विरोध, बाजीराव सह न सकेगा, निस्सत्व होकर रह जायगा उसका व्यक्तित्व....विरोधाग्नि की लपटों में वह भस्म हो जायगा अप्पा !"

"महाराष्ट्र के स्वप्न धूल-धूसरित हो जायेंगे गुरुदेव !"

"धर्म और सामाजिक-परम्पराओं के रक्षार्थ सब नगण्य है...."

"ओह !" दोनों हाथों से मस्तक भींच कर वे हतबुद्धि-से हो रहे।

• •

पेशवा बाजीराव के प्रति राज्य-प्रतिनिधि श्रीपतराव के हृदय में जो प्रतिहिंसा पल रही थी, वह अवसर पाकर सजग-सी हो गयी। मस्तानी को आधार बनाकर महाराज शाहू के कान भरना आरम्भ कर दिया उसने। साथ ही, उसके अनुचर पेशवा-विरोधी मराठा-सरदारों के द्वार खटखटाने लगे।

पेशवा ने, दक्षिण के अपने सबसे प्रबल शत्रु निज़ामुलमुल्क को परास्त करके अन्य शत्रुओं की कमर तोड़ दी थी। गुजरात और मालवा में पेशवा-नियुक्त एजेंट, इन समृद्धशाली प्रान्तों से चौथ वसूल करके राज्य के ख़जाने में भर रहे थे। अपनी सेना तथा कुछ मराठा-सरदारों के साथ संभाजी, अब भी निज़ाम के संरक्षण में थे। निज़ाम के मन में, अपनी पराजय सदैव करकती रहती। परन्तु अपने वीरत्व की जो छाप पेशवा ने पहली ही टक्कर में उसपर छोड़ी थी, उससे स्वयं पेशवा के मार्ग में रोड़ा बनने का साहस नहीं कर पाता था वह।

गुजरात से बहुत पहले ही पिलाजी गायकवाड़ और बान्दे ने चौथ वसूल करने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। बान्दे और गायकवाड़ का वह अपना निजी अधिकार था। मराठा-राज्य को उससे कोई विशेष लाभ नहीं था। निज़ाम से निबट कर जब पेशवा की महत्वाकांक्षी दृष्टि गुजरात की ओर उठी तो गुजरात का मुग़ल गवर्नर सर-बुलन्द खाँ घबरा गया। बान्दे और गायकवाड़ के अधिकार की सीमायें सीमित थीं परन्तु जब एक बड़ी सेना के साथ चिमणाजी अप्पा

ने गुजरात को पूर्णतया विजित करने के निमित्त प्रयाण किया तो बेचारा सरबुलन्द खाँ अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार देखने लगा।

पेशवा ने गुजरात पर आक्रमण करने के पूर्व इसकी कल्पना भी नहीं की थी कि बाद में इसके लिये बान्दे और गायकवाड़ के प्रबल विरोध का सामना करना होगा। भूतपूर्व मराठा सेनापति खांडेराव का पुत्र त्र्यंबकराव दाभाड़े गुजरात पर अपना विशेष अधिकार समझता था। पिलाजी त्र्यंबकराव का सहयोगी था। पहले पहल गुजरात पर अपने पंजे अड़ाने वाला खांडेराव ही था।

चिमणाजी अप्पा की विजयिनी सेना का सामना करना आत्म-हत्या के समान था। सर बुलन्द खाँ के सामने निज़ामुल्मुल्क जैसे शक्तिसम्पन्न सेनापति की पराजय मिसाल के रूप में प्रस्तुत थी।

शीघ्र ही उसकी ओर से अप्पा के पास सुलह का सन्देश आया।

पेशवा ने सुलह का स्वागत किया और अहमदाबाद को छोड़कर सम्पूर्ण गुजरात से चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार मराठा-राज्य को मिल गया। पिलाजी गायकवाड़ और बान्दे उपद्रव न मचाने पायें तथा आवश्यकता पड़ने पर पचीस सौ घुड़सवारों से सल्तनत की मदद का वचन मराठा-राज्य की ओर से दिया गया।

गुजरात पर इतनी आसानी से विजय प्राप्त हो जायगी, इसकी आशा न तो पेशवा को ही थी, न ही चिमणाजी अप्पा को। सर-बुलन्द खाँ ने, मराठा-सैनिकों का खर्च भी अपने खज़ाने से चुका दिया। परन्तु विजय का जो मूल्य पेशवा को चुकाना पड़ा, वह साधारण न था।

अभी गुजरात के मैदान में खून की नदी बहनी शेष थी....

● ●

गुजरात-विजय का समाचार पाकर निज़ामुल्मुल्क हैरान रह गया। पेशवा की महात्वाकांक्षी-दृष्टि धीरे-धीरे अपना मार्ग प्रशस्त करती जा रही थी। दिल्ली के मार्ग का सबसे बड़ा अवरोध गुजरात गया तो क्या....और तब उनकी आँखों के समक्ष, तख्तेताउस पर बैठे शाहू की मूर्ति विद्युतगति से चमक गयी।

तब ?—तब की कल्पना मात्रसे उसे रोमांच हो आता। दिल्ली की दशा उससे छिपी नहीं थी। मुग़ल सम्राट मुहम्मदशाह का सम्पूर्ण समय, अपने मंत्रियों, सरदारों के लिये षड्यन्त्रों की संयोजना में ही लगता था।

उसका धूर्त मस्तिष्क चक्कर खा उठा।

बीजीराव !

बाजीराव !!

अपनी वह लज्जाजनक पराजय....खिसियाई हुई बिल्ली की भाँति, महाराष्ट्र के आधारस्तम्भ—पेशवा बाजीराव पर, कल्पित रूप में पंजे झाड़ रहा था।

महाराष्ट्र के राज्य-प्रतिनिधि श्रीपतराव ने तुरत निजाम से सम्बन्ध स्थापित किया। त्र्यंबकराव दाभाड़े के हृदय में बाजीराव के प्रति प्रतिहिंसा की आग फूँक कर उसने निज़ाम से सारी परिस्थिति स्पष्ट कर दी। उस आग को प्रज्वलित करने का ठीका निज़ाम ने प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर लिया। बाजीराव के मंसूबों को मटियामेट कर डालने का इससे बढ़कर और कौन अवसर मिलता ? मस्तानी को लेकर महाराष्ट्र में, बाजीराव के प्रति जो विरोधाग्नि उमड़ उठी थी, इससे भी वह अपरिचित नहीं था।

दाभाड़े के विक्षोभ से लाभ उठाने के निमित्त उसने अपने पुत्र नासिर जङ्ग को तत्काल गुजरात की ओर रवाना कर दिया।

मस्तानी की समस्या को लेकर उलझे पेशवा को इसका भास तक न हुआ।

और—

अक्तूबर सन् १७३० में त्र्यंबकराव, निज़ामुलमुल्क और संभाजी के साथ मराठा-राज्य से विद्रोह करने के लिये तत्पर हो उठा।

पेशवा को जब समाचार मिला तो वे स्तब्ध रह गये।

मराठों में, त्र्यंबकराव के प्रति बड़ी गहरी आस्था थी। फिर संभाजी और निज़ाम जैसे धूर्त....

पूना और सतारा में हलचल मच गयी।

शाहू महाराज की घबराहट का पारावार न था। श्रीपतराव मन ही मन मुस्करा रहा था।

• •

परिवार, समाज और महाराष्ट्र के अणु-अणु में विरोध, घृणा और उपेक्षा की ज्वाला दहक रही थी। माता जी को मुख देखने में पाप का अनुभव होता है और प्रणय की डोर सिहर रही है, काँप रही है। समाज का जो रूप रघुनाथ राव के यज्ञोपवीत और नाना के विवाह में ही दीखा था, वह कितना भयङ्कर था! व्यक्ति और समाज, समाज और व्यक्ति क्या सचमुच एक दूसरे के पोषक हैं, पूरक हैं?—नहीं। समाज के समक्ष, व्यक्ति का महत्व वही तो है, जो भूखे भेड़िये के समक्ष मेमने का होता है। व्यक्ति ने अपनी सुरक्षा और सङ्गठन के निमित्त समाज का स्थापन किया; परन्तु समाज? क्या उसमें मनुष्यत्व के सुकोमल-सपन्दन की रत्तिक भी अनुभूति है?—नहीं। वह तो

जीवन के रस का नहीं, अपितु लहू का प्रत्याशी है। लहू !—हृदय से टपकता हुआ लहू और उसमें स्नात यह ढोंगी समाज, जिसे परम्पराओं का कुष्ठ प्रिय है, जीवन की चिरन्तन गति का माधुर्य नहीं।

पुराने महल से थोड़ी ही दूर पर पेशवा बाजीराव अपने लिये नवीन महल का निर्माण करवा रहे थे। सैकड़ों कर्मकारों-शिल्पियों ने जिस द्रुतवेग से अपने को निर्माण कार्य में तल्लीन कर दिया था, उसने देखते ही देखते शनिवारबाड़े का बाह्याकार प्रस्तुत कर दिया था।

सङ्गमरमर के एक प्रशस्त चबूतरे पर बैठे पेशवा बाजीराव जैसे अपने आप में ही डूब गये थे। शनिवारबाड़ा के एक खण्ड का नाम उन्होंने 'मस्तानी-महल' और उसके मुख्य द्वार का 'मस्तानी-दरवाजा' रख दिया था। पेशवा-परिवार ने मस्तानी को अस्पृश्य ही समझा था, परन्तु वे ?—उनके मन वीणा के तारों की झनकार बन चुकी थी वह। अपने पन्द्रह-बीस वर्षों के दाम्पत्य में उन्हें कर्तव्यानुराग का ही अनुभव हो पाया था। काशीबाई ने उन्हें अपना आराध्य मानकर, अपने अन्तस की सम्पूर्ण श्रद्धा-भक्ति, आदर्श—पत्नीत्व के दायरे में, समर्पित किया था और एक आदर्श पति की भाँति उन्होंने, उस 'निर्माल्य' को अपने जीवन में समाहित भी कर लिया था।

कर्तव्य और प्रणय !

प्रणय और कर्तव्य !

क्या दोनों में कोई साम्य है ?

नहीं !—हृदय में छटपटाहट-सी, सनसनी-सी उमग उठी और उस उमग ने जैसे अपने सम्पूर्ण तेज से, उनके पत्नीव्रत-आस्था को झकझोर कर रख दिया। मानुषी-कर्तव्यों से पृथक्, जीवन में कुछ और भी होता है, जिसमें कर्तव्यों, परम्पराओं के बन्धनों से इतर रसमयता विद्यमान रहती है। हाँ, रसमयता....कितनी मादक, कितनी

शाश्वत, कितनी स्फूर्ति—रसमयता ! आह ! जैसे उस रसमयता को किसी निर्दय-अदृश्य हाथों ने झिंझोड़कर रख दिया। पीड़ा की अनुभूति ने, पुतलियों से चिमटी पलकों को कँपा-सा दिया। निरभ्र आकाश पर अष्टमी का अर्द्धचन्द्र हौले-हौले मुस्करा रहा था। लगा जैसे सङ्गमरमर की शीतलता में आग लग गयी हो। झटके से वे उठकर नीचे आ रहे।

तभी—

"क्या सोच रहे हैं नाथ !" पीछे से काँपता पर मीठा स्वर आया—"इस एकान्त में बैठे-बैठे आप कौन-सी गुत्थी सुलझा रहे थे ?" दूर पर पाँच-सात सशस्त्र परिचारिकायें विपरीत मुख खड़ी थीं।

"तुम, रानी !"

"हाँ !"

"कैसे ?"

"ऐसे ही, मैं भी आपकी तरह...."

"क्या ?" पेशवा चौंके—"तुम....रानी, आधी-रात को इस तरह...." स्वर लड़खड़ा रहा था।

"इस तरह आपको पकड़ पाना, कुछ अच्छा नहीं लगता—यही कहना चाहते हैं न ?" काशीबाई के अधरों पर स्मिति तिर आयी—"यह मरी हुई-सी, निस्तेज चाँदनी में रँगकर हमारा महल कितना सुन्दर दीख रहा है....और यह....मस्तानी-महल है न ? सच कहती हूँ, उस दिन मैं मारे खुशी के पागल हो जाऊँगी नाथ, जिस दिन, उसे गुड़िया-सी अपने हाथों सँवारकर...."

"रानी !"

"नाथ, आपको क्या ऐसा कुछ नहीं लगता ?" स्वर की निश्छलता पेशवा को बेध-सी गई—"हाँ, आप मेरे लिये इतना उद्विग्न क्यों रहते हैं ? मैं अपने आप में तुष्ट हूँ। जानते हैं, अपनी उस स्वर्गिक

तुष्टि के समक्ष संसार को निस्सार समझती हूँ मैं....मैं तुष्ट हूँ....मेरा देवता, मेरे निर्माल्य को...."

"रानी !"

"कहें न....अरे, वह बादल का टुकड़ा....निगल ही गया बेचारे को...."

पेशवा ने अपनी आतुर भुजाओं में, रानी को समेटना चाहा पर जाने क्यों सहम-से गये—"तुम देवी हो रानी !" आहत-सा स्वर—"मैं तो....मैं तो...."

"देवता !"

"नहीं !"

"तो ?"

"पतन के नारकीय-पङ्क में पड़ा नर-कीट...."

"नाथ !" काशीबाई ने झपटकर उनके मुख पर अपनी महावर रञ्जित हथेली रख दी—"मुझ पर यह अत्याचार करते आपका हृदय....ओह, अपने सौभाग्य के निमित्त ऐसे शब्द....नहीं-नहीं, मैं इसे सह नहीं पा रही हूँ...." धुँधले प्रकाश में उसकी आँखों में चमक उठने वाले उन तरल मोतियों को पेशवा विकलभाव से निहारते रहे, निहारते रहे। काशीबाई ने अपना मस्तक उनके कन्धे पर टिका दिया—"नाथ, मेरे सौभाग्य का अपमान न करें। मुझे विश्वास है, आप...." और उसने धीरे से पेशवा को पुनः सङ्गमरमर के उस चबूतरे पर बिठा दिया। स्वयं नीचे, उनके पैरों के पास बैठने को हुई पर बाजीराव की आतुर भुजाओं ने खींचकर अपने पास कर लिया।

"रानी !"

"नाथ, मेरे लिये ही तो आप इतना विकल हो रहे हैं ?"

पेशवा मौन रहे आये। काशीबाई की महानता ने उनके टीस

भरे हृदय पर मरहम-सा लगा दिया था। उसने अपने आँचल के छोर से उनकी बड़ी-बड़ी, भरी-भरी आँखों को सुखा दिया। उसके हृदय में पत्नीत्व नहीं, मातृत्व का आलोड़न हो रहा था।

"रानी !" पेशवा उस मातृत्व-गरिमा में डुब-चुभ होते हुए बोले—"मस्तानी ने सचमुच तुमसे मुझे छीन लिया और मैं इतना विवश कि....कि इस अनर्थ का रंचिक भी प्रतिरोध न कर सका....न कर सका...."

"आपको भ्रम है, मस्तानी में वह शक्ति ही कहाँ है, जो आपको मुझसे छीन ले ! वह तो गुड़िया है, जो किसी का मन हर सकती है—बस।" और सहसा ही वह रुक गयी।

"रानी !"

"और...."

"तुम क्या हो रानी !" गहरे उच्छ्वास में सने स्वर ने उसके शेष शब्दों को जैसे लोक लिया—"समाज-स्वजनों के विद्रूप के समक्ष मैं अपने को जितना ही शक्त और धीर पाता हूँ, तुम्हारी महानता के समक्ष उतना ही निर्बल और अस्थिर...." आवेग में आकर उन्होंने काशीबाई को कन्धे से पकड़ कर झकझोर दिया—"तुम भी मुझसे घृणा करो, लांछना की आग में झुलसाओ रानी !....नहीं तो, नहीं तो...." उनकी आँखें पुनः गीली हो आयीं।

काशीबाई घबरा गयी। शीघ्र ही उसने अपने को संयत भी कर लिया—"ओह, अब हमें चलना चाहिये नाथ ! सबेरा होने में अब अधिक देर नहीं...." कहकर उसने पेशवा के काँपते हाथ पकड़ लिये और वे खिंचते हुए-से साथ हो लिये।

चाँदनी की म्लानता में, अधवना शनिवारवाड़ा जैसे स्तब्ध रह गया था।

• •

परिवार-समाज की विरोधाग्नि और अपने मन के आलोड़न में, पेशवा बाजीराव टूट गया, उसकी महत्वाकांक्षा के शिखर भग्न हो चुके हैं—इस नशे में मगरूर निजामुल्मुल्क, गुजरात के मैदान में अपने भविष्य की स्वर्णाभा स्पष्ट देखने लगा। यद्यपि गुजरात पर अपने मजबूत पाँव जमाने में, चिमणा जी अप्पा ने बड़ी तत्परता से काम लिया था; परन्तु गुजराती, जनता-विशेषतः हिन्दू-मराठा—पर दाभाड़े का बहुत गहरा प्रभाव था। अनेक सुप्रतिष्ठित मराठा-सेनापति, सरदार आदि भी अन्दर ही अन्दर उसके समर्थक थे। निजामुल्मुल्क की दुष्टतापूर्ण नीतिज्ञता पेशवा से अजानी न थी। वे खूब समझ रहे थे, गुजरात के मैदान में, उनकी महत्वाकांक्षा की अन्त्येष्टि भी सम्भव है।

क्षणभर के लिये वे अपने को किङ्कर्त्तव्यविमूढ़-सा होता हुआ अनुभव करते। मराठा-सरदारों के असन्तोष को, उन्होंने अपने तेज से धूमिल भले ही कर दिया हो; परन्तु यह स्पष्ट था, उनमें से एक बहुत बड़ा वर्ग, अपनी धूमिल-सी पड़ गयी असन्तुष्टि के भीतर ज्वाला-मुखी छिपाये है। मस्तानी ने अपनी उपस्थिति से, उस ज्वालामुखी को और बल प्रदान किया है, इस तथ्य से भी वे अपरिचित न थे।

परन्तु क्या मस्तानी उनके महत्वाकांक्षी-जीवन की हार—कलङ्कीहार साबित हुई है?

प्रश्न मानस को मथ कर रख देता।

नहीं-नहीं-नहीं !!

मस्तानी ने उनके हृदय में, अपनी मधुसिक्त सम्वेदनशीलता के

द्वारा, विद्रोहों से जूझते रहने की नूतन शक्ति भर दी है। अपने मार्ग में आने वाले रोड़ों को ठोकरों से अलग कर देने का अभ्यासी उनका जीवन-इतिहास क्या रुद्ध हो जायगा ?—नहीं, नहीं।

और तब उनकी अधमुँदी आँखों के रङ्ग-मञ्च पर विद्युतगति से लाल किला—दिल्ली पर फहराता भगवा साकार हो उठा—कटक से अटक पर्यन्त हिन्दुत्व की ज्वलन्तता का प्रतीक महाराष्ट्र....सदियों की मुसलमानी-दासता से मुक्त हुआ भारतवर्ष—नर्तन कर उठा।

वे भूल गये—समाज के विद्रोह को, परिवार के असन्तोष को और....और इन सबकी मूल मस्तानी की विस्मरणकारी छवि को भी।

दस वर्षों पूर्व—सतारा सभा-भवन में महत्वाकांक्षा की चरम परिणति की वह हुंकार वातावरण में गूँज उठी थी—

'मुगल राज्य अन्दर से खोखला हो गया है। घूस फूट और प्रमाद के कीड़ों ने उसकी सारी शक्ति को चाटना आरम्भ कर दिया है। उसे बस, एक धक्का देने की आवश्यकता है। मुगलिया इमारत की एक-एक ईंटें भहरा पड़ेंगी—एक बार मराठा घुड़सवार उत्तर की ओर उन्मुख तो हों, विजय-लक्ष्मी उनकी प्रतीक्षा कर रही है....महाराज, मुगल-राज्य रूपी तने पर प्रहार करें, शाखायें तो अपने आप गिर पड़ेंगी....मैं विश्वास के साथ कहता हूँ, अटक की दीवारों पर महाराष्ट्र की ध्वजा गाड़कर रहूँगा....'

सारा शरीर रोमाञ्च से भर उठा।

मुगल-साम्राज्य में अब रह ही क्या गया है ?—कुछ नहीं। बाबर और अकबर के वंशजों की नपुंसकता सर्वविदित है। और तब मानस में आलोड़न-सा हो उठा और उस आलोड़न में मुगल-साम्राज्य के पतन की रङ्गीन कहानी मुखर हो रही थी....

....जिस साम्राज्य की स्थापना बाबर जैसे नर-केसरी ने की थी, जिसका विस्तार अकबर जैसे दूरदर्शी और अपने समय के अप्रतिम

राजनीतिज्ञ ने किया, उसकी रक्षा का भार इस समय ऐसे हाथों में आ गया था, जिनमें न बाबर का शौर्य था और न ही अकबर की नीतिज्ञता ! न उनमें स्वयं राज्य करने की शक्ति थी, न दूसरों से कार्य कराने की क्षमता। वह वजीरों के दास थे मगर अपनी 'दासता' को भी ईमानदारी से निभा सकने की योग्यता से शून्य। फलतः या तो अपने वजीरों के गुलाम रहते थे या वजीरों के शत्रुओं के !—मुगल-साम्राज्य के सबसे बड़े शत्रु स्वयं मुगल-सम्राट हो रहे थे।

जिन साधनों से अकबर ने साम्राज्य के गगनचुम्बी भवन निर्मित कराये थे, वही साधन, अयोग्य हाथों में पड़कर भवन को धराशयी करने का उपक्रम कर रहे थे। न इस समय के मुसलमान सरदारों के हृदय में इस्लाम के लिये जोश था और न मुगल बादशाह के प्रति श्रद्धा। उनके समक्ष बस, एक ही लक्ष्य था—अपना स्वार्थ ! हर मुसलमान सरदार अपने को बादशाह का लघु-संस्करण ही समझता था।

घर की कमजोरी की महक पाकर बाहरी शत्रु आक्रमण करने के लिये सदैव सन्नद्ध रहते हैं। राज्य एक प्रगतिशील वस्तु है—या तो वह आगे बढ़ेगा या पीछे। स्थिरता उसे हमेशा प्रिय नहीं होती। अफगानिस्तान से मुग़लों के पाँव उखड़ चुके थे सो उत्तर के लड़ाकू लुटेरों का मार्ग स्वतः प्रशस्त हो गया था। इधर महाराज शिवाजी के उपरान्त महाराष्ट्र का बंजर इलाका, अब 'जंगली-चूहों' के विशेषण में आग लगाकर....

व्यवधान पड़ा। पेशवा बाजीराव एकदम चौंक पड़े।

सामने उनका एक विश्वस्त अनुचर खड़ा था।

"क्या है ?"

"पत्र !" उसने आगे बढ़कर मखमली खरीता चाँदी की चौकी

पर रख दिया। उसे उलट-पुलटकर देखने के उपरान्त उनके मुखपर एकबारगी ही संतोष की चमक दौड़ गयी।

"महाराज स्वस्थ-सानन्द तो हैं?"

"हाँ, स्वामी!"

"तो तुम विश्राम करो अब। कल दरबार में उपस्थित रहोगे.... हूँ!" यह 'हूँ' चले जाने का आदेश था। अनुचर ने मस्तक झुकाया और पीछे हटता हुआ कक्ष के बाहर हो गया।

खरीता पेशवा के शुभचिन्तक सवाई महाराज जयसिंह का था। चाहकर भी वे उसे खोल न सके। चिन्तन-प्रवाह उन्हें पुनः बहा ले गया....

....मुहम्मदशाह सय्यदों की गुलामी से मुक्त होकर भी नहीं हुआ। जिस बादशाह को अपने वज़ीर को पदच्युत करने के लिये षड्यन्त्र और छुरे की शरण लेनी पड़े, उसकी क्लीवता का इससे बड़ा और कोई उदाहरण होगा भी क्या? सय्यद-बन्धुओं का पतन हो गया; परन्तु मुहम्मदशाह की स्थिति पूर्ववत् रही। वज़ीर और बादशाह के संघर्ष में दोषी बादशाह था, वज़ीर नहीं।

घटना-चक्र घूमता रहा, घूमता रहा।

निज़ामुल्मुल्क सय्यदों का सटीक 'जवाब' था। दरबार से उस खतरनाक आदमी को टालने के लिये ही दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा गया था। सय्यदों को विश्वास था, राजधानी से इतनी दूर रहने के कारण उसकी शक्ति अपने आप ही समाप्त हो जायगी; परन्तु उस धूर्त ने दक्षिण को केन्द्र बनाकर अपने को इतना मज़बूत बना लिया कि विरोधी सकते में आ गये। सय्यदों के पतन के उपरान्त मुग़ल राज-नीति को विश्वास था, प्रधान मंत्री निज़ाम के सिवा और कोई न होगा परन्तु उस छँटे हुए खिलाड़ी ने इस ओर कोई उत्सुकता न दिखाई और अभागा अमीन खाँ—जिसने सय्यदों के नाश में

महत्वपूर्ण भाग लिया था—प्रधान मंत्री बना....घटना-चक्र घूमता रहा, घूमता रहा....रोड़े साफ होते रहे और एक दिन बड़ी आसानी से वह प्रधान मंत्रित्व सम्हालने के लिये दिल्ली आ धमका। परन्तु दिल्ली आकर भी दक्षिण में अपने पाँव जमाये रखा....

शीघ्र ही निज़ाम भी बादशाह की आँखों में गड़ने लगा। निज़ाम शक्तिशाली था, अनुभवी था और था परलेसिरे का धूर्त और उसकी यही विशेषता मुहम्मदशाह के लिये 'भयङ्कर' थी। वह बुरी तरह षड़यन्त्र में संलग्न हो गया। मगर निज़ाम और सय्यद-बन्धुओं में महान् अन्तर था और यही कारण था कि दिल्ली का मोह त्याग कर, बादशाही षड्यन्त्रों को विफल करता हुआ वह पुनः दक्षिण में आ गया और....

"राव !" द्वार पर देर तक खड़े रहने के उपरान्त नीराजी ने पुकारा तो मुग़ल-साम्राज्य के पतन की वह लुभावनी-सचित्रता पुनः टूट गयी, बिखर गयी। नीराजी सामने आकर खड़ा हो गया था।

"तुम हो नीरू !" पेशवा अपने आप में विचित्र-सी उत्तेजना का अनुभव कर रहे हैं, स्वर-कम्पन स्पष्ट कर रहा था—"आओ, बैठ जाओ....खड़े क्यों हो ?"

"आप....आप क्या सोच रहे थे राव !"

"मैं....कुछ तो नहीं नीरू !" अधरों पर मुस्कान लोट रही थी।

"मैं बहुत देर से खड़ा था...."

"अच्छा !"

"आप कुछ सोच रहे थे...."

"हाँ, नीरू, सोच रहा था...."

"क्या ?"

"यही कि महाराष्ट्र की विजयनी-ध्वजा अटक की प्राचीर पर फह-राने में अब अधिक विलम्ब नहीं है नीरू ! दिल्ली की नींव मराठी-ठोकरों की प्रतीक्षा कर रही है...."

नीराजी चकित रह गया। आज पेशवा में वह ऐसा उत्साह—बहुत दिनों पश्चात् देख रहा था। उसने पेशवा के मुख की ओर देखा—"पूज्य राव, हमारे जीवन-मरण की समस्या आ पड़ी है—उफ्, उस परिस्थिति की कल्पनामात्र से रोमांच हो आता है, जब गुजरात के मैदान में...."

"दो मराठा तलवारें आपस में टकरायेंगी!" पेशवा ने सहज पर तीव्र स्वर में वाक्य पूरा कर दिया—"तुम्हें अपने राव पर विश्वास करना चाहिये नीरू!" उनका मुख अत्यन्त गम्भीर हो आया था।

"मुझे अविश्वास नहीं है राव!"

"तो?"

"आपकी वर्तमान मानसिक अवस्था...."

"से शंका होती है, पागल है तू नीरू!" पेशवा हँस पड़े—"तुम्हारे राव ने परिस्थितियों से हारना नहीं सीखा है....हाँ, नीरू, कहीं तुम भी तो मस्तानी को मेरे जीवन का शैथिल्य—शैथिल्य ही नहीं, कलंक नहीं समझने लगे हो?" वे अब हँस रहे थे; परन्तु उस हँसी में ज़हर-सा घुल गया है, नीराजी ने अनुभव किया।

"राव!"

"बोलो नीरू! मैं जानता हूँ, ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। हाँ, माता जी से मिले थे तुम? जब से वे काशी से लौटी हैं, मैं उनके दर्शनों का सौभाग्य न पा सका...."

"मिला था...."

"वे तो मेरा नाम भी नहीं लेती होंगी कभी, ऐसा उन्होंने महाराज के पत्र में स्पष्ट लिख दिया है। उनके वंश के उज्ज्वल मुख पर मैंने कालिमा जो पोत दी है...."

"ऐसी बात नहीं है राव!" नीरू का स्वर काँप रहा था—"वे

हर घड़ी आपके ही चिन्तन में खोयी रहती हैं। उनके अन्तस के वात्सल्य को आप समझ कर भी ऐसा...."

"ऐसा सोचते मुझे कम पीड़ा नहीं होती नीरू!" पेशवा ने विकल-भाव से कक्ष में इधर-उधर निहारा, जैसे कुछ खोज रहे हों—"अच्छा, हटाओ...." और वे जल्दी से खरीता उठाकर उसके बन्द तोड़ने लगे। पत्र निकालकर उन्होंने नीराजी की ओर बढ़ा दिया—"पढ़ो तो इसे....महाराणा प्रताप के उपरान्त राजपूतों ने अपनी गौरव-मयी परम्परा, आत्माभिमान, स्वयं अपने तक को मुगलों के चरणों पर न्यौछावर कर दिया था; परन्तु राजपूती-देशाभिमान, परतन्त्रता में भी मरा नहीं है....महाराज सवाई जयसिंह इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं...पढ़ो-पढ़ो...." नीरा जी ने एक बार करुण-दृष्टि से उनकी ओर निहारा फिर एक दीर्घ निश्वास के साथ पढ़ने लगा। कुशल-क्षेम के पश्चात् महाराज ने लिखा था—

"....आज देश की आँखें आप ही की ओर अँटकी हुई हैं। मुगल-साम्राज्य की कमजोर नींव को उखाड़ फेंकने के लिये, सशक्त हाथों का एक धक्का पर्याप्त है और मेरा अपना विश्वास है, आपके महान् निर्देश में, महाराष्ट्र अब इस योग्य हो चुका है कि दक्षिण से अपनी बाग मोड़कर सीधे दिल्ली को अपना लक्ष्य बना सके। दिल्ली-स्थित आपके प्रतिनिधि से मेरा सम्बन्ध बना रहता है, निश्चिन्त रहें।

"आपकी चिन्त्य मनःस्थिति का समाचार पाकर बहुत दुख हुआ। एक छोटी-सी बात को लेकर महाराष्ट्र जो अनर्थ करने पर तुला है, उसके परिणाम की कल्पना मात्र से रोमाञ्च हो आता है। आपकी शक्ति पर विश्वास है, इसलिये थोड़ा सन्तोष होता है। आपने पत्र में सङ्केत किया है—'मैं जीवन की उस घड़ी से गुजर रहा हूँ, जिसकी उपमा, आँधी की गोद में पड़े, निस्सहाय सूखे पत्ते से दी जा सकती है....' नहीं, यह निराशा आपको शोभा नहीं देती। आपको अपने

व्यक्तित्व की हिमालय-सी गुरुता पूर्ववत् बनाये रखनी है—मेरी ही नहीं, देश के कोटि-कोटि हिन्दू-प्राणों की अभिलाषा है यह ।....मस्तानी को क्या कुछ दिनों के लिये महाराष्ट्र से अलग नहीं कर सकते ? आपकी विवशता समझ रहा हूँ, फिर भी अगर सम्भव हो तो इस ओर विचार करेंगे । मैं और मेरा राज्य इस सम्बन्ध में सदैव तत्पर रहेंगे, अगर आवश्यकता पड़े ।

एक बात और—स्व० आन्द्रे के अभाव में, समुद्र की ओर से आने वाले पश्चिमीय व्यापारियों से आपको विशेष सावधान रहना है । वे दिनानुदिन शक्तिशाली होते जा रहे हैं । ये 'व्यापारी' मूलतः व्यापार के निमित्त ही हिन्दुस्तान की ओर उन्मुख नहीं हुए हैं ।

एक कठिन-परीक्षा आपके समक्ष है । निजामुल्मुल्क के षड्यन्त्रों का आधार, गुजरात-सङ्घर्ष आपके लिये चुनौती है ।....

"हूँ !" पेशवा ने एक दीर्घ उच्छ्वास लिया—"बस, समाप्त हो गया नीरू !"

"हाँ !" नीरा जी की मुद्रा अत्यन्त गम्भीर हो आयी थी—"मैं कभी-कभी अत्यन्त घबरा उठता हूँ राव !"

"क्यों ?"

"गुजरात...."

"पागल, पेशवा ने कभी हारना नहीं सीखा । अपने तुच्छ व्यक्तिगत स्वार्थ के निमित्त दाभाड़े देश-द्रोह पर कमर कस चुका है और हर देश-द्रोही हमारा शत्रु है, चाहे वह कोई भी क्यों न हो ? महाराज जयसिंह ने ठीक ही लिखा है, गुजरात का यह सङ्घर्ष मुझे चुनौती है....चुनौती है...."

"आपकी अवस्था...."

"देखूँगा....तुम होल्कर और अप्पा को मेरे पास भेज दो.... सम्भवतः आज ही मैं सतारा चला जाऊँगा....मेरी अनुपस्थिति में

अपना उत्तरदायित्व सम्हालोगे....हूँ !" और वे जल्दी से उठकर कक्ष के बाहर हो रहे। नीरा जी विमूढ़-सा देखता रह गया।

• •

"रानी !" काँपता-सा स्वर।

मस्तानी ने घूमकर देखा तो हाथों में अल्पाहार की स्वर्णथाल लिये अनवरी खड़ी थी—"क्या है अनु !" अन्तस का द्वन्द्व स्वर में छलक उठा—"पेशवा को गये आज तीन दिन हो रहे हैं अनु...."

"तू इतना घबरा गयी—क्यों ?" अनवरी ने उपालम्भ से कहा—"तीन ही दिन में यह मस्तानी की कली मुर्झा गयी तो....अरे, मस्सो, ऐसा क्यों नहीं करती कि पेशवा को बाँधकर अपने उस हार में लटका लेती, जो इन जुल्मी 'पहाड़ियों' से टकरा रहा है मरदूद !" और उसने जब 'पहाड़ियों' को अपने कुटिल-सङ्केत का निशाना बनाया तो मस्तानी शरमा गयी।

"बदमाश !"

"अच्छा !"

"चुप रह...." अधरों पर मुस्कान की लहर देख, अनु हुलास से भर उठी।

"अच्छा तो, अब कुछ खालो, रानी !"

"लाख बार समझाया कि मुझे रानी-पानी न कहा कर पर तेरे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती !"

मस्तानी ने डाँटा तो वह खुलकर हँस पड़ी।

"क्यों हँस रही है ?"

"ऐसे ही !" उसने पास ही के तख्त पर हाथों की थाली रख

दी—"आओ, अब थोड़ा-सा जलपान कर लो, तुम्हारी इसी अदा पर तो बेचारे पेशवा, जीते जी मर मिटे हैं !"

"अनु !" मस्तानी के स्वर में अनायास ही इतनी गम्भीरता करुणा में डूबी हुई-सी गम्भीरता आ गयी कि अनवरी चौंके बिना न रही—"ऐसा क्या नहीं हो सकता कि हम किसी तरह ओरछा चले जाँय...."

"ओरछा !" अनवरी परेशानी से देखती रह गयी उसकी ओर।

"हाँ !"

"मस्सो !"

"अनु...."

"अपने को सम्हाल । मुहब्बत के रास्ते में काँटे तो होते ही हैं। उन्हें कुचलते हुए हमें आगे बढ़ना चाहिये। उनकी चुभन से घबराना तो...."

"अनु !" मस्तानी ने उसे बीच ही में रोका—"रास्ते के काँटे हमेशा पैरों में चुभा करते हैं पर—उफ, मेरे तो कलेजे में ही चुभे जा रहे हैं। पैरों और इस कलेजे के दर्द में बहुत फर्क होता है, इसे झुठलाने की कोशिश करना बेकार है। मेरी ही वजह से पेशवा का चारों ओर तिरस्कार हो रहा है...."

अनवरी मौन रही आयी।

"जर्रा-जर्रा, मुझे कुफ्र की नजर डाल रहा है। पेशवा को मैंने ही भ्रष्ट किया है—मैंने ही....इन दीवारों का चीत्कार क्या तू सुनती नहीं...." वह हाँफने लगी थी।

"मस्सो !"

उसका यह 'चौथा-महीना' चल रहा था। उद्वेग में डूबकर वह मूर्च्छित-सी हो गयी। अनवरी ने झपटकर उसे अपनी बाँहों में सम्हाल न लिया होता तो फर्श पर गिर पड़ती। मस्तानी के 'पैर भारी' हो रहे

हैं, जानकर अनायास ही उसका सारा शरीर रोमाञ्च से भर उठा। विद्रोहाग्नि से झुलसे हुए दो प्राणों के बीच यह तीसरा प्राणी... परिणाम की कल्पना नहीं कर पायी वह। पेशवा के कलङ्की-प्रणय की यह 'मुहर'—उफ्! जल्दी-जल्दी मस्तानी के मुख पर ठण्ढे पानी का छींटा मारती हुई अनवरी उस कल्पनातीत-भविष्यत् में खो-सी गयी थी। इधर गुजरात की नवीन-समस्या के समाधान में, पेशवा सब-कुछ भूलकर दत्त-चित्त हो रहे थे। अपने प्रणय पर लगने वाली इस 'मुहर' का आभास सम्भवतः उन्हें भी न होगा।

मस्तानी ने धीरे-से आँखें खोलीं। देरतक अपने ऊपर झुकी अनवरी की ओर निहारती रही, जैसे अपनी उस ममत्वमयी-सखी से पूछ रही हो—मेरे अभाग्य से तू क्यों संतप्त है री पगली!

"मस्सो!"

"कह!"

"मुझसे भी तूने छिपाया मस्सो, क्यों?" स्वर का उपालम्भ अश्रु-विगलित-सा हो रहा था—"अभी तुझे इसकी कोई जरूरत भी तो नहीं थी रानी....पेशवा को क्या यह मालूम हो चुका है?"

"नहीं!"

"और...."

"केवल जीजी ही जानती हैं....खुद उनसे ही मैंने भी जाना है अनु..." मस्तानी के कण्ठ में विचित्र-सी थर्राहट थी—"इसमें मेरा क्या वश था। कभी-कभी आदमी को विवशता के हाथों....सोचती हूँ, आदमी कितना बेहया होता है अनु! तभी तो...तभी तो...." और उसने विकलभाव से अपने शिथिल हाथ अनवरी के गले में डाल दिये।

स्नेहावेग में अनवरी रह-रहकर रोमाञ्चित हो उठती थी। मस्तानी के करुण मुख की ओर जैसे चाहकर भी देख पाने में असमर्थ होकर

वह छटपटा उठी—"तू माँ बनने जा रही है सखी ! यह....यह कितनी बड़ी खुशी का वायस है पर..." कण्ठ में जैसे कुछ अटक-सा गया। विवशता ने आँखों में आँसू ला दिये।

"पर ?"

"मैं कह नहीं पाती....उफ्, इन लोगों में सचमुच हृदय नाम की कोई चीज नहीं...."

"ऐसा क्यों कहती हो अनु ?" पीछे से पेशवा का गम्भीर पर मीठा स्वर आया तो दोनों घबरा-सी उठीं।

मस्तानी ने लपककर उनके पैर पकड़ लिये। अनवरी अभिवादन करती हुई दरवाजे की बढ़ने लगी। तो—"अरे, मेरे आते ही तुम चल दीं....ठहरो, ठहरो भाई !—अरे, प्रिये, यह तुम्हें हो क्या गया है ?" मस्तानी के काँपते हुए हाथ अब तक उनके पैरों पर थे। जल्दी से उसे उठाते हुए पेशवा ने फटकार-सी बताई—"अभी तक तुम्हारे स्वभाव का बुन्देला-रङ्ग मिटा नहीं। बड़ी खराब बात है यह। तुम अब पेशवा बाजीराव की रानी हो—हृदयेश्वरी...." कहते-कहते उनका स्वर भर्रा उठा—"मस्तानी प्रिये, तुम यहाँ पर सचमुच सुखी नहीं हो....सचमुच...."

मस्तानी के सारे शरीर में सिहरन व्याप्त हो गयी—"ऐसा न कहें प्राण, न कहें...."

"मुझे मालूम न था प्रिये !" स्वर बेतरह थरथरा रहा था—"अपनी शक्ति पर आवश्यकता से अधिक विश्वास था और इसी विश्वास ने, तुम्हारे कोमल प्राणों को झुलसकर रख दिया...." उन्होंने धीरे से मस्तानी के कन्धे पर हाथ रखा—"मेरी अनुपस्थिति में कोई विशेष...."

"नहीं, प्राण !"

"तो ?" स्वर में आतुरता थी—"रानी आती तो रहीं न ?"

"कौन, जीजी !"

"हाँ !"

"उनके ही सम्बल पर तो मैं जीवित हूँ प्राण ! अगर अन्य की तरह वे भी....तो एक क्षण भी रह पाना क्या असम्भव था...." उसने अपने को प्रकृतिस्थ कर लिया था—"सतारा से क्या अभी आए हैं ?"

"पवन ने सीधे यहीं पहुँचाया है....माताजी स्वस्थ तो हैं ?"

"माताजी !"

"ओह, ठीक है, ठीक है, स्वस्थ ही होंगी....तुम्हें क्या मालूम ?" अपनी गलती समझ वे घबरा-से उठे। पेशवा-माता राधाबाई के मन में मस्तानी के प्रति इतनी भयङ्कर घृणा थी कि सेवक सेविकाओं से लेकर पेशवा परिवार के सदस्य तक, उनकी चर्चा भी बेचारी से करने का साहस नहीं कर पाते थे। मस्तानी का नाम सुनकर ही वे अपने को अपवित्र समझने लगती थीं और तब कानों में स्वर्ण-धूलि मिला गङ्गाजल बिना डाले, चैन नहीं लेती थीं। लाख बरजने पर भी जब रानी काशीबाई अड़ी ही रही अपने हठ पर तो वे भी अस्पृश्य-सी हो उठी थीं उनके लिये। वातावरण में मौन घुल गया था। अनवरी दोनों को अपने आप में डूबा हुआ पा, धीरे से बाहर हो गयी थी।

"आपको पहले यहाँ नहीं आना चाहिये था...."

"क्यों ?"

"माता जी...."

"मेरे शरीर पर किसी का भले ही अधिकार हो परन्तु मन मेरा एकदम अपना है प्रिये ! हाँ, तुम्हें इधर अस्वस्थ देख रहा हूँ...." उनकी बड़ी-बड़ी आँखों में अनुराग की असीमता तिर रही थी।

"मैं स्वस्थ हूँ...." मस्तानी लजा-सी उठी। आँखें नत हो गयीं। मुख पर सिन्दूर पुत गया।

पेशवा ने उसका चिबुक उठाते हुए अत्यन्त स्निग्ध स्वर में कहा—"झूठ बोलती हो...."

"नहीं !"

"मैं जानता हूँ...." भुजाओं ने उसे धीरे से अपने में बद्ध कर लिया—"तुम स्वस्थ नहीं हो...."

"क्यों ?" मस्तानी चौंकी-सी—"मुझे कुछ तो नहीं हुआ है प्राण !" स्वर काँप रहा था ।

"सच !" पेशवा का मुख झुका, स्फुरित अधरों ने परस्पर स्पर्शित होकर वातावरण—करुणा और उद्वेग में सन्निहित वातावरण को मधु-सिक्त-सा कर दिया—"मुझसे छिपाया क्यों तुमने ?"

"क्या ?"

"बता दूँ ?"

मस्तानी की आँखें मुँद गयीं । उसकी धड़कनें पेशवा के वक्षस्थल में तिरोहित-सी होती रहीं ।

"रानी ने मुझसे कह दिया था...."

"उफ् !"

"तुम्हें दुख है रानी !" पेशवा का स्वर आन्तरिक उमंग में थिरक-सा रहा था—"हमारे प्रणय का वह प्रमाण है प्रिये ! सच, वह प्रमाण मेरे लिये...."

"नहीं...."

"पगली हो तुम, विद्रोहों के मुख पर तमाचा सिद्ध होगा वह प्रिय !"

"मेरा मन डूबा जा रहा है प्राण....जैसे कोई बार-बार कहता जा रहा हो कि हम दुनिया की इस आग में जलकर राख हो जायेंगे...." और पेशवा के प्रशस्त कंधे पर मस्तक टिका कर वह सिसक उठी ।

"उस राख में भी एक ज्योति होगी प्रिये !"

मस्तानी सिसकती रही, सिसकती रही।

अवसाद और उद्वेग में डूबे हुए दो प्राणों की उस छटपटाहट का अनुभव कर कक्ष में बिखरी हुई हवा तक जैसे भीग उठी। काफी देर तक सिसकती हुई मस्तानी को, अपनी बाँहों में समेटे बाजीराव कराहभरे मौन में उभं-चुभ करते रहे। दरवाज़े की ओट से कई बार अनवरी झाँककर देख गयी पर अन्दर आने का साहस उसे नहीं हो पाया। नीचे बरामदे में, बुन्देलखण्ड से महाराज छत्रसाल का पत्र-वाहक नजीर चिकारा बजाकर बड़े ही करुण-स्वर में धीरे-धीरे गा रहा था—

दुनिया है बेदर्द कि इसकी दुनिया बसी कटार पर
यहाँ कमल का फूल पकाया जाता है अङ्गार पर....

और ठीक उसी समय—

पेशवा-माता राधाबाई के दरबार में विद्रोहाग्नि की लपटें, लपलपा रही थीं। चिमणाजी अप्पा, नाना, रानी काशीबाई किंकर्तव्य-विमूढ़-से उनकी ओर निहार रहे थे और वे गरज रही थीं—"ओह, सतारा से आते ही बाजी उस म्लेच्छ के पास चला गया! मैं जीवित नहीं रह सकूँगी अप्पा....और जानते हो, मेरी मृत्यु का उत्तर-दायित्व—नहीं, हत्या का पाप उस पापी बाजी से अधिक तुम सबको लगेगा...." क्रोधावेग से उनका शरीर थर-थर काँप रहा था। आँखों में, करुणा, घृणा और उद्वेग की त्रिवेणी स्फुलिंग बनकर नर्तन कर रही थी।

"माताजी!"

"चुप रहो!" क्रोध अब क्रमशः रुदन में परिणत हो रहा था—"मैं कहती हूँ, उस दानवी को मेरे पवित्र पुत्र के मार्ग से हटाने का साहस क्या तुम सब में नहीं। महाराज छत्रसाल को मैं वीरात्मा और धर्मनिष्ठ समझती थी पर वह मेरी भूल थी। उन्होंने मेरे लाल को

पथ-भ्रष्ट कर दिया। बोलो, बोलो, यही न कहना चाहते हो तुम सब कि मैं उन्मादिनी हो गयी हूँ। अपनी तलवार निकाल कर इस अभागिन माँ का कलेजा चीर दो और देखो कि उसमें कितना भयङ्कर ज्वालामुखी धधक रहा है....इस बहू को मैं अपनी बेटी समझती थी पर यह भी....यह भी....”

काशीबाई उनके लड़खड़ाते शरीर को सम्हालने के लिये आगे बढ़ी पर वे झनककर दूर हट गयीं।

“मत स्पर्श करो मुझे!” वे चीख पड़ीं—“तुम्हें मेरी चिन्ता न थी, न सही; पर अपने सुहाग के लिये भी खूब कर्त्तव्य पालन किया है बहूरानी!....उस अस्पृश्य, घृणित छोकरी को अपनी बहन बनाते शर्म भी नहीं आयी!”

“माताजी, ज़रा विचार कर देखें, आपके इस आक्रोश की आग में पूज्य राव का जीवन भस्म होता जा रहा है!—महाराष्ट्र को किसी भी मूल्य पर उनके वैसे ही प्रखर स्वरूप की आवश्यकता है। उनकी प्रखरता की ओर आज संपूर्ण देश आशामयी दृष्टि लगाये हुए है। हमारी इस वक्त जो परिस्थिति है....उससे....उससे....”

“हूँ!”

“माताजी!” चिमणाजी ने अपनी बात जारी रखी—“इस समय उन्हें किसी भी प्रकार मनःसंताप पहुँचाना घोर अनर्थ का कारण हो जायगा। गुजरात में दाभाड़े-संघर्ष की गुरुता क्या आपको समझानी पड़ेगी!”

“सब समझती हूँ मैं....”

“पूज्य राव का बलिदान क्या आपको स्वीकार है?”

“धर्म के लिये, ऐसे सहस्रों बलिदान मैं सगौरव, सप्रसन्न स्वीकार करूँगी अप्पा!” स्वर अधिकाधिक तीव्र होता जा रहा था—“चितपावनों ने सदा धर्म के लिये अपने बड़े से बड़े स्वार्थ को तुच्छ समझा

है। तुम्हें किसी भी मूल्य पर उस पापिष्ठा को पूना से निकाल बाहर करना है, भले ही इसके लिये तुम्हें उसके अपवित्र रक्त से अपने हाथ ही क्यों न रँगने हों!" कहकर उन्होंने दाँतों से ओष्ठ काट लिये—"सुना कि नहीं तुमने अप्पा!"

काशीबाई ने मुख से निकलने वाली चीख को बड़ी मुश्किल से रोका। नाना भी सहम उठा।

चिमणा जी अप्पा को काटो तो खून नहीं। अपनी प्रगाढ़ मातृभक्ति पर उन्हें अपार विश्वास था; परन्तु इस आदेश ने उनको हिलाकर रख दिया—"माता जी, आप....आप कह क्या रही हैं?"

"तुम्हे किसी भी मूल्य पर मेरे बाजो की पवित्रता वापस लानी है बेटा!" वत्सलता ने उनकी सम्पूर्ण उग्रता को अपने में समेट लिया था—"नहीं-नहीं, मैं सचमुच उन्मादिनी हो गयी हूँ बेटा—उफ!" और वे दोनों हाथों में मस्तक भींचे धम्म से तख्त पर बैठ गयीं। रानी और अप्पा झपटकर उनके पास चले आये।

"माता जी!"

"आप अपने को संयत करें माता जी!" अप्पा उनके काँपते हुए चरणों पर झुक गये—"थोड़े दिनों और अपने को शान्त रखें। गुजरात की इस विकट समस्या का समाधान होते ही कोई न कोई मार्ग, पूज्य राव से मस्तानी को अलग करने का अवश्य निकालूँगा, विश्वास रखें!" और उन्होंने एक दीर्घ उच्छ्वास लेकर भाभी की ओर निहारा, जिसके मुख भविष्यत् आशङ्काओं ने कालिमा पोत दी थी। काशीबाई ने अपनी आँखें फिरा लीं।

"सच, बेटा!"

"मुझ पर आपको विश्वास नहीं माता जी!"

"है, बेटा!" स्वर में सन्तोषजन्य स्थिरता थी—"मेरा बाजी गङ्गा-सा निर्मल था अप्पा!"

तभी—

"माता जी !" द्वार से पेशवा का स्वर आया। सुनकर सभी चौंक पड़े। वे धीरे-धीरे अन्दर आ रहे और आगे बढ़ कर माता का चरण स्पर्श करने को हुए मगर सहसा ही जैसे किसी अदृश्य शक्ति ने उन्हें रोक लिया। दूर ही से मस्तक झुकाकर उन्होंने प्रणाम किया। राधाबाई क्षणभर स्तब्ध-सी पुत्र को निहारती रहीं और तब एक झटके से उठकर—"मेरा बाजी !" कहती हुई झपट पड़ीं और पेशवा के काँपते शरीर को अपनी भुजाओं में बाँध लिया—"मेरे लाल, मेरा शार्दूल लाल, अप्पा, बहू, देखो न, कौन कहता है कि मेरे बाजी पर कलंक...." वे सब कुछ भूल कर पेशवा के सारे शरीर पर हाथ फेरने लगीं।

बाजी राव के साथ ही और सभी की आँखें भर आयीं। काशीबाई ने अपना मस्तक राधाबाई के चरणों पर रख दिया। बाजीराव भी झुके परन्तु उसी समय उन्होंने अपने पैर खींच लिये।

"बाजी !"

"माता जी !"

"तू उस यवनी के यहाँ से आ रहा है....ओह....मुझे क्या हो गया था प्रभु !"

"माता जी !"

"बस-बस, तू मेरी आँखों से दूर हो जा बाजी ! मेरी कोख को कलंकित करते तुझे तनिक भी संकोच नहीं हुआ। चला जा, मेरी आँखों से दूर हो जा, दूर हो जा !" आवेग में वे चीत्कार कर उठीं।

"बाजी आपका पुत्र है माताजी, और आपका पुत्र कभी कलंकी नहीं होगा, इसे आप कभी न कभी अवश्य स्वीकारेंगी। मुझे देखकर आपको पीड़ा होती है तो अब कभी....अप्पा, आओ चलो, हमें गुजरात-समस्या का समाधान खोजने में दत्त-चित्त हो जाना है....

आओ भाई, आओ....” और मुख से फूट पड़नेवाली रुलाई बड़ी कठिनता से रोक वे कम्पित पगों से कक्ष के बाहर हो गये।

चिमणाजी अप्पा क्षणभर स्तब्ध-से खड़े रहे; फिर माता को प्रणाम कर पेशवा के पीछे हो लिये। रानी काशीबाई ने आँखों पर आँचल रख लिया।

राधाबाई खोयी-खोयी द्वार की ओर देखती खड़ी रहीं—“बाजी चला गया....”

स्वर में पराजय झाँक रही थी—विरोधाग्नि की ज्वाला पर ममत्व की धार पड़ रही थी।

विरोधाग्नि तरलाग्नि में परिणत हो रही थी....

दिल्ली की ओर

गुजरात का सूबेदार सरबुलन्द खाँ नाममात्र की अपनी सूबेदारी, जिसका प्रसार औरङ्गाबाद तक ही सीमित था—के लिये हो रहे उस विकट संघर्ष को, आँखें मूँद कर देख रहा था। निजाम, त्र्यंबकराव और गायकवाड़ के मन में पेशवा बाजीराव के विरुद्ध आग भड़काकर, स्वयं अपनी राजधानी में बैठा रहा।

त्र्यंबकराव वीर था और गुजरात पर वह उसका विशेष अधिकार भी स्वयं सिद्ध था। मराठों में उसके प्रति गहरी श्रद्धा थी। सब कुछ पेशवा बाजीराव समझते थे। शाहू महाराज ने आदेश दिया था, युद्ध में त्र्यंबकराव कभी भी जान से न मारा जाय। खुद पेशवा भी यह नहीं चाहते थे कि वह मारा जाय!

अपने चुने हुए सेनापतियों और चिमणाजी अप्पा के सहित वे, मराठा घुड़सवारों की लगभग पच्चीस हजार सेना लिये बड़ौदे से चालीस मील दूर अपना पड़ाव डाले थे। मुकाबले में त्र्यंबकराव ने उनसे दूनी सेना का सन्नाह किया था। उसकी सेना में, अधिकांश कोल और भील लड़ाकू थे। जन्मजात लड़ाकू होते हुए भी उनमें वे गुण नहीं थे, जो सैनिकों में आवश्यक होते हैं। इस तथ्य से भी पेशवा अपरिचित नहीं थे।

मस्तानी पूना में अकेली अरक्षित ही है, यह सोचकर कभी-कभी वे अस्थिर हो उठते थे। उसकी सुरक्षा के लिये ही उन्होंने नीराजी को पूना में छोड़ दिया था और वह प्राण रहते मस्तानी पर आँच

नहीं आने देगा, यही सोचकर निश्चिन्त-से हो जाते। उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता थी कि कर्तव्य के समक्ष और कुछ दीखता ही न था। त्र्यंबकराव की भयङ्करता ने शीघ्र ही उन्हें सब कुछ भूलकर युद्ध की ओर उन्मुख कर दिया।

देखते ही देखते उनके अन्तस की ज्वलंतता सारे व्यक्तित्व पर छा गयी।

पहले तो दोनों सेनाओं में, दूर ही दूर से संघर्ष होते रहे। इस तरह पेशवाई सेना को नुकसान ही उठाना पड़ रहा था। भीलों के अचूक बाणों से बिद्ध होकर अपने घुड़सवारों का संहार होता देख, पेशवा आवेश में आ गये। त्र्यंबकराव बड़ौदे के समीप दमोई के मैदान में मोर्चा लगाये था।

अपनी सेना के साथ, मार्ग रोकने वाले भीलों-कोलियों को चीरते हुए पेशवा बाजीराव बाज की-सी गति से दमोई की ओर झपट पड़े। अपने आत्मविश्वास तथा सैनिकों की गहरी राज-भक्ति के बलपर वे अन्ततः त्र्यंबकराव के सामने आ ही गये।

जोश में भरा हुआ त्र्यंबकराव एकदम से पेशवा की सेना पर टूट पड़ा। अपने ऊँचे हौदे से वह बाणों की अजस्र-धारा बहाने लगा। आगे पड़ने वाले भील और कोल, पेशवाई घुड़सवारों की पहली ही टक्कर में भाग खड़े हुए। अब दोनों ओर के मराठा-सैनिक हाथों-हाथ जूझने लगे। गहरी भयानकता उपस्थित हो गयी।

पेशवा ने अपना हाथी त्र्यंबकराव की ओर बढ़वा दिया।

"राव!"

पेशवा ने हौदे से घूमकर देखा तो लहू में नहाया हुआ होल्कर अपना घोड़ा भगाता हुआ चला आ रहा था। चारों ओर तलवारों का जौहर अपनी भयङ्करता की चरम-सीमा पर पहुँच चुका था।

"राव, आगे न बढ़ें....न बढ़ें....त्र्यंबकराव पागल हो रहा है...." होल्कर चीखा।

सचमुच पेशवा के हौदे के चारों ओर बाणों की बौछार हो रही थी। ज़मीन खून और लाशों से कीचड़ बन गयी थी। पेशवा के मस्तक पर बल पड़ गये। शीघ्र ही उन्होंने अपने को प्रकृतिस्थ कर लिया और हौदे से कूदकर नीचे आ रहे। 'पवन' पास ही था। उछल कर उसपर बैठते हुए, वे गरज उठे—

"होल्कर, अप्पा कहाँ है? हमें तुरत त्र्यंबक को घेर लेना चाहिये...." उसी समय घोड़ा उछालता हुआ, त्र्यंबकराव का एक सेनापति उनके सामने आ गया। अपना तलवार वाला हाथ उसने उठाया ही था कि बाजीराव ने, नेजा तौल दिया। नेजे का चौड़ा फल मूठ तक, कवच को भेदता हुआ छाती में समा गया। बाजीराव ने नेजा झटका देकर खींचा तो वह घोड़े की पीठ पर से नीचे गिर पड़ा। पेशवा के अगल-बगल मल्हारराव होल्कर और विठोबा जी बूले, चुने हुए सैनिकों के साथ हो गये, रक्षक के रूप में।

त्र्यंबकराव, बाण-बरसा कर भयंकर रूप में पेशवाई-सेना का संहार करता जा रहा था। उँगलियों से लहू टपकने लगा परन्तु उस नर-पुंगव को जैसे उसकी चिन्ता ही न थी। बाण-वर्षा की गति तीव्रातिव्र होती जा रही थी।

पेशवा ने पवन को मोड़कर एक ओर किया। उनके संकेत पर तुरत ही पत्र लिखा गया—'युद्ध बन्द कर दो और सुलह का रास्ता निकालो। तुम्हारे जैसे महान् वीर का वीरत्व शाहू महाराज के दुश्मनों को परास्त करने के काम आना चाहिये, अपनी ही सेना से लड़ने के नहीं....' एक तेज़ साड़नी सवार सफेद झंडा फहराता हुआ, त्र्यंबकराव के हाथी की ओर बढ़ा। सफ़ेद झंडा देखते ही, संहार-यज्ञ क्षणभर

के लिये थम-सा गया। तलवारें शान्त होकर झुक गयीं। सैनिकों में गहरी अशान्ति व्याप्त हो गयी। परस्पर-विरोधी चर्चायें—

"पेशवा ने हार मान ली!"

"जबान सम्हालकर....ऐसे अपशब्द उगलनेवाली जबान को काट-कर फेंक दिया जायगा!"

"सफेद झंडा त्र्यंबकराव की ओर का है!"

"नहीं-नहीं, पेशवा ने भेजा है...."

विचित्र परिस्थिति का निर्माण कर रही थीं। तलवारें थमी तो थीं मगर वे किसी भी क्षण पूर्ववत् गतिशील हो जाने को तत्पर थीं। साड़नी सवार सामने के सैनिकों को चीरता हुआ बढ़ता गया।

त्र्यंबकराव ने सफेद झण्डा देखा तो अनायास ही चकित रह गया। उँगलियाँ धनुष की प्रत्यंचा से हट गयीं। सहसा ही वह अट्टहास कर उठा—"पेशवा बाजीराव! बस, हो गया....इसी बूते दिल्ली पर हुकूमत करने की महत्वाकांक्षा....दामा, देखो, साड़नी सवार का बाल भी बाँका न हो! उसे आने दो मेरे पास...." पास ही मुश्की घोड़े पर बैठे पिलाजी गायकवाड़ के पुत्र दामाजी गायकवाड़ से उच्च स्वर में कहा उसने। साड़नी सवार ने दूर ही से त्र्यंबकराव को अभिवादन किया। पास आकर उसने पेशवा बाजीराव का पत्र दामाजी के हाथ में दे दिया। दामाजी ने पत्र को त्र्यंबकराव के सामने किया।

"क्या लिखा है, पढ़ो तो!"

दामाजी ने पढ़कर सुना दिया। सुनते ही त्र्यंबकराव बौखला गया। आँखों से चिनगारियाँ छिटक उठीं—"उँह:, एक कीट का यह दुस्साहस, जाकर अपने पेशवा से कह दो, अगर उसकी तलवार में जङ्ग लग गयी हो तो भाग जाय सामने से...." और वह पुनः अन्धाधुन्ध बाण बरसाने लगा।

रेलम-पेल में बेचारे साड़नी सवार की क्या गति हुई, इसे कोई जान नहीं सका।

थमी हुई तलवारें, विद्युत-रेखा-सी दीखने लगीं।

"राव, त्र्यंबक पुनः बाण बरसाने लगा!" होल्कर ने घबराकर कहा तो वे चौंक पड़े।

"ठीक है, उसने मेरे संधि-प्रस्ताव को ठुकरा दिया है। होल्कर! आगे बढ़ो...." एक हाथ में नेजा और दूसरे में 'प्रसादिनी' ताने पेशवा झपट पड़े। पेशवाई सेना जोश में भर गयी।

पेशवा बाजीराव के स्वयं रण-क्षेत्र में धँस पड़ने से, देखते ही देखते निर्णायक-युद्ध का-सा मंजर दीख पड़ने लगा। 'पवन' बिजली की तरह कौंध रहा था।

कि सहसा ही—

एक चीत्कार के साथ त्र्यंबकराव अपने हौदे पर भहरा कर गिर पड़ा। पीछे से सन्नाती हुई एक गोली आकर उसके मस्तक को पार कर गयी थी।

स्वामी के गिरते ही त्र्यंबकराव की सेना के पैर उखड़ गये और उखड़े हुए पैरों को खदेड़ने में पेशवाई सेना को कोई खास परेशानी नहीं हुई। पवन ने झपटकर त्र्यंबकराव के सीकड़ों में बँधे हाथी के मस्तक पर अपने अगले पैर टिका दिये। पेशवा कूदकर हौदे पर हो रहे। त्र्यंबकराव समाप्त हो गया था।

"राव!"

"होल्कर, त्र्यंबक समाप्त हो ही गया। हम उस वीर को बचा पाने में असमर्थ ही रहे!" उनके स्वर में पश्चात्ताप का कम्पन था—"अप्पा को बुलाओ और भागती हुई सेना का पीछा करने से अपने सैनिकों को रोक दो। खेल समाप्त हो चुका है...."

और उनके संकेत पर व्यथित महावत ने हाथी को बैठा दिया।

• •

अपनी विजयिनी-सेना को पेशवा ने तुरत ही पूना की ओर लौटाया।

इस व्यर्थ के संघर्ष में लगभग सात हज़ार मराठा वीरों की आहुति पड़ी थी। पेशवा को अपनी यह विजय, हार से भिन्न नहीं लग रही थी। उन्होंने महाराज शाहू के पास तत्काल ही समाचार भेजते हुए लिखा था—'*अत्यन्त दुख के साथ सूचित करना पड़ता है कि वीरवर* त्र्यंबकराव अपने मामा भावसिंह राव की गोली से मृत्यु को प्राप्त हुए। भावसिंह राव मन ही मन उनसे रञ्जिश रखते थे। उन्होंने पहले मुझसे सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की थी परन्तु मैंने अत्यन्त भर्त्सना के सहित उनको लौटा दिया था और....गुजरात पर अब हमारा लगभग निष्कंटक अधिकार हो चुका है। गायकवाड़-बन्धुओं ने, हमारा पूर्ण सहयोग करने का वचन दे दिया है। देखना है, बादशाह मुहम्मदशाह की ओर से अब कौन-सा रुख अख्तियार किया जाता है....'

सेना को पीछे छोड़, वे पवन पर तीव्र वेग से पूना की ओर बढ़े। कर्तव्य के बोझ से मुक्ति पाते ही वे मस्तानी के कुशल-संवाद के लिये विकल हो उठे। माता राधाबाई, उसे किसी भी मूल्य पर उनसे पृथक् करने के लिये कृतसंकल्प हो उठी हैं—इसका भास उन्हें हो चुका था।

आधी से अधिक रात बीते वे पूना पहुँचे। साथ में तीस-चालीस अङ्गरक्षकों के अतिरिक्त और कोई नहीं था। नीराजी उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। घायल-श्लथ पेशवा को उसने सहारा देकर पवन से नीचे उतारा और—"कोई संघातक घाव तो नहीं लगा है आपको

राव !" उसने चिन्तित-घबराये स्वर में पूछा—"बहुत शिथिल हो गये हैं आप। आइये...." कहता हुआ वह पेशवा-महल की ओर बढ़ने को हुआ, तो—

"मस्तानी कुशलपूर्वक तो है नीरू !" पेशवा ने आकुल स्वर में पूछ लिया।

"हाँ, वे आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं...." उसने स्निग्ध स्वर में कहा तो पेशवा ने जल्दी से स्नेहपूर्वक उसकी पीठ पर थपकी दी और महल की ओर बढ़ गये। नीराजी आधीरात के उस सन्नाटे में अपने में खोया-सा खड़ा, जाते हुए पेशवा बाजीराव को निहारता रहा।

ऊपर झरोखे से दो आँखें भी पेशवा को छिपे-छिपे निहार रही थीं। पेशवा जब मुड़कर मस्तानी के आवास की ओर बढ़ गये तो वे एक झटके के साथ झरोखे से हट गयीं।

"भाभी !" नीराजी के मुख से अस्फुट स्वर में निकल गया। वे आँखें, रानी काशीबाई की थीं।

रात के श्यामल-पग भागे जा रहे थे। नीरवता क्रमशः गहन से गहनतर होती गयी।

• •

महाराज शाहू ने गुजरात-विजय और त्र्यंबकराव के निधन का समाचार पाकर सबसे पहला काम किया—अपने दरबारियों के साथ देवी के मन्दिर में जाकर, त्र्यंबकराव की मृत्यु के लिये क्षमा-याचना की और हुतात्मा के परिवार के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की। उनके इस आचरण से, असन्तुष्ट मराठा-समाज तुष्ट हो गया।

दूसरे दिन के दरबार में उन्होंने राजकीय रूप में घोषित किया—गुजरात और मालवा की चौथ और सरदेशमुखी का आधा राज्य-कोष में तथा आधे में, बराबर-बराबर त्र्यंबकराव के परिवार और पेशवा बाजीराव को दिया जायगा। राजा शाहू ने अपनी उदारता से त्र्यंबकराव के परिवार के मन का मैल धो दिया। त्र्यंबकराव के भाई यशवन्तराव की सेनापति पद पर नियुक्ति की घोषणा भी शीघ्र ही कर दी गयी।

गुजरात में राजा शाहू तथा पिलाजी गायकवाड़ के एजेंट घूमने लगे। देखते ही देखते पिलाजी गायकवाड़ ने, पेशवा से मैत्री रखते हुए सम्पूर्ण गुजरात में अपना दौर-दौरा स्थापित कर लिया। गुजरात के मुग़ल सूबेदार सरबुलन्द खाँ का जीना दूभर हो रहा था। बेचारा बड़ी मुसीबत में पड़ गया था। सूबेदारी में जो थोड़ी-बहुत सेना थी, वह धीरे-धीरे कम होने लगी। आदमनी का कोई जरिया न था। केन्द्र से मदद के लिये आशा करना ही मूर्खता थी। उधर मराठों के गुजरात-विजय के समाचार से दिल्ली में सनसनी मची। बादशाह की नींद हवा हो गयी। स्वार्थी-चापलूस वज़ीरों ने बादशाह के कान भरे और गुजरात की स्थिति पर काबू पाने के लिये, सरबुलन्द खाँ के स्थान पर, जोधपुर के राजा अभयसिंह को नियुक्त कर दिया गया। अभयसिंह, सुप्रसिद्ध जोधपुर नरेश अजीतसिंह का उत्तराधिकारी था। उसे बादशाह की ओर से आदेश मिला—सरबुलन्द खाँ अगर सीधे से अपना पदत्याग नहीं करे तो बलपूर्वक उसे मसल दिया जाय और जैसे भी हो गुजरात को मराठों के आतंक से मुक्त किया जाय। राजा अभयसिंह ससैन्य गुजरात की ओर रवाना हुआ। सरबुलन्द खाँ, इस समाचार से बुरी तरह झुँझला उठा। इधर-उधर से सेना जुटाकर उसने अभयसिंह को सूबेदारी देने से इनकार करने का निश्चय कर लिया। पिलाजी गायकवाड़ ने उसकी सहायता करने का वचन दिया

था। गुजराती-सीमा से परे ही सरबुलन्द खाँ और राजा अभयसिंह में टक्कर हुई, जिसमें दैवयोग से विजय-श्री सरबुलन्द खाँ को ही मिली। अपनी हार से राजा अभयसिंह और भयङ्कर हो गया.... हुकूमत से विरोध करके वह जायगा कहाँ?—एक ओर से मराठे खून चूसेंगे और दूसरी ओर....व्यर्थ है—सरबुलन्द खाँ ने सोचा तो अपना भविष्य अन्धकारमय ही दीख पड़ा। अन्ततः उसने राजा अभयसिंह के हाथों में सूबेदारी सौंप दी और 'जान बची, लाखों पाये' की रट लगता दिल्ली की ओर चल पड़ा गुजरात पर मराठा-शाही कायम हो चुकी थी। सरबुलन्द खाँ की सूबेदारी महज औरङ्गाबाद तक ही सीमित थी। बड़ौदा में पिलाजी गायकवाड़ राजकीय-ढङ्ग से अपना अड्डा जमाये था।

महाराजा शाहू और पिलाजी के सैनिक, गुजरात से मुगल सल्तनत को एक पैसा भी चौथ न मिल सके—इस ओर सतर्क रहा करते थे। औरङ्गाबाद में अपने पाँव जमाने के पश्चात् राजा अभय-सिंह ने सीधे बड़ौदे पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। परिस्थिति भी अनुकूल थी। पेशवा बाजीराव, मालवा और सिद्दियों की उलझनों में फँसे थे।

पिलाजी को बड़ौदा से हटाने में थोड़ी परेशानी के बाद राजा अभयसिंह को सफलता मिल गयी। होशियार गायकवाड़ ने, व्यर्थ ही अपने सैनिकों का बलिदान नहीं होने दिया। परन्तु बड़ौदे से हटकर वह राजा अभयसिंह के लिये जहमत ही बन गया। भील, कोल आदि जङ्गली जातियों के बल पर उसने गोरिल्ला-युद्ध में राजा की नाक में दम कर दिया।

घबराकर राजा अभयसिंह ने सम्पूर्ण राजपूत-जाति पर कलङ्क-कालिमा पोत कर जो घृणित कार्य किया, उसने गुजरात को सदा-सदा के लिये मुगल सल्तनत से अलग ही कर दिया। उस नीच ने

पिला जी को सुलह के लिये अपने खीमें में बुलवाकर धोखे से उसकी छाती में पैनी छुरी घुसेड़वा दी। गायकवाड़ तत्काल ही समाप्त हो गया।

गायकवाड़ के मरते ही सारे गुजरात प्रान्त में आग-सी लग गयी। पिलाजी के भाई महादजी और पुत्र दामाजी के नेतृत्व में, एक-एक बच्चा विद्रोही हो गया।

कलङ्की राजा अभयसिंह को बड़ी मुश्किल से जान बचाकर गुजरात से दिल्ली की ओर भाग सकने का मौका मिल सका। मुगल सल्तनत का सितारा अब तेजी से गुरुब हो रहा था। दिल्ली अब मराठा घुड़सवारों का जैसे आह्वान कर रही थी।

उधर—

मालवा में पेशवा बाजीराव की तलवार खनक रही थी। गुजरात हाथ से गया, कहीं मालवा भी न खिसक जाय—दिल्ली के महाप्रभुओं की आँखों से नींद उड़ गयी।

● ●

दिन बीतते रहे। परिवार और समाज के विरोधों ने उग्र रूप धारण कर लिया। राधाबाई का आक्रोश चरम-सीमा को पहुँच गया था। पेशवा बाजीराव का जीना दूभर हो गया। मस्तानी को लेकर शाहू महाराज भी उनसे असन्तुष्ट-से रहने लगे थे। विरोध....विरोध.... चारो ओर विरोध ही विरोध!—परन्तु इन विरोधों से टकराता हुआ बाजीराव का लौह-व्यक्तित्व अविचलित ही रहा आया। मन की पीड़ा, अवसाद को अपनी महत्वाकांक्षा में समेटे वे कर्म-पथ पर बढ़ते जा रहे थे—नीलकण्ठ-से।

मस्तानी ने पुत्र को जन्म दिया। समाज ने उसकी ओर खूनी

आँखों से देखा। मस्तानी सहम उठी पर बाजीराव का मनमयूर नर्तन कर उठा। शनिवारबाड़े के मस्तानी-महल में एक महीने तक उत्सव मनाया गया। लोगों ने साश्चर्य देखा—रानी काशीबाई अब सदैव पति के निकट बनी रहने की चेष्टा करती है।

राधाबाई अपनी हार पर भूखी शेरनी की तरह भयङ्कर हो उठी थीं, मस्तानी के लिये। पेशवा को उसकी सुरक्षा के लिये अब विशेष रूप से सतर्क रहना पड़ा। उनकी अनुपस्थिति में काशीबाई स्थापनापूर्ति करती। देवतुल्य प्रेमी और स्नेहमयी जीजी काशीबाई के छाया में मस्तानी दीन-दुनिया को भूल गयी।

अपने महान् सञ्चालक के नेतृत्व में महाराष्ट्र की ध्वजा धीरे-धीरे दिल्ली की ओर उन्मुख हो रही थी। मालवा में मुगलों की स्थिति चिन्ताजनक ही होती जा रही थी। एक के बाद एक सूबेदारों की नियुक्तियाँ होती मगर मराठा-प्रवाह के समक्ष सभी बह जाते। निजा-मुल्मुल्क भींगी बिल्ली बना हैदराबाद में दुबका हुआ था। मालवा को हाथ से जाता देख, घबराये हुए बादशाह और उसके नालायक वजीरों ने मालवे की सूबेदारी के लिये जिस व्यक्ति को चुना, वे थे जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह! पेशवा बाजीराव सल्तनत के इस दिमागी-दिवालियेपन पर हँस पड़े। महाराज जयसिंह के खीमें में एक दिन अपने साथियों के साथ पेशवा बाजीराव आये और दोनों मित्रों ने भविष्यत्-योजना पर गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श किया। सबकुछ बहुत ही गुप्तरूप से हुआ था पर इसकी भनक दिल्ली पहुँच ही गयी। और इस भनक को बल देने के लिये, शीघ्र ही सवाई महाराज जयसिंह का प्रस्ताव भी दिल्ली आ गया, जिसमें उन्होंने स्थिति की गम्भीर चर्चा के पश्चात् अपनी ओर से विचार रखा था—मालवा को बचाने का एकमात्र यही रास्ता दीख पड़ता है कि सूबेदारी के लिये पेशवा को ही चुना जाय....

प्रस्ताव भयङ्कर था। शासन-यन्त्र डगमगा उठा। बादशाह ने उसी समय दरबारे-खास का आयोजन किया। वजीरेआला खान-दौरान ने दरबारियों को स्थिति से अवगत कराया।

"लाहौल बिलाकुव्वत !" सुनकर वयोवृद्ध काजी शमसुद्दीनअली खाँ ने अपनी बुर्राक दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"ये मूजी काफिर, सूअर के जने होते हैं....भला बताइये, राजा साहब पर सल्तनत कितना भरोसा करती थी, वही...."

"देखिये न, जनाब !"

"मराठे क्या गुल खिलाते हैं, देखना है।"

"खामोश !" बादशाह का गम्भीर स्वर सुन पड़ा—"मेरे खयाल से मराठों को सजा देने के लिये खुद वजीरेआला खानदौरान ही कोई रास्ता ढूँढ़े। बेकार की बातों में वक्त ज़ाया करने का मौका अब नहीं रहा। माबदौलत को इस बात का सख्त अफसोस है कि मुगल सल्तनत की इतनी बड़ी ताकत के होते हुए भी, एक अदना लुटेरा बाजीराव क़हर वर्षा करता जा रहा है...."

खानदौरान की ओर सारे दरबार की आँखें अँटक गयीं।

"वजीरेआला !"

"हुक्म आलमपनाह !" खानदौरान ने गर्दन झुका दी।

"बात ही बात में गुजरात गया और अब मालवा जाने को तैयार बना हुआ है...."

"हुक्म इरशाद आलीजाह !"

"आप खुद दकन की ओर तशरीफ ले जाइये। मेरी मंशा है...."

"हुक्म सर आँखों पर बन्दानवाज !"

मुहम्मदशाह अपनी खुशनुमा दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ थोड़ी देर खामोश बैठे रहे फिर कुछ सोचते हुए बोले—"वजीरेआला, मेरा ख़याल है, जितना सुना जाता है, मराठे उतने खतरनाक नहीं। वजीर

का दर्जा हुकूमत में निहायत ऊँचे दर्जे में शुमार होता है। ऐसे मामूली बलवे को दबाने के लिये आपका जाना हुकूमते-मुगलिया की तौहीन है....है कि नहीं?"

"बेशक है शहंशाहेआलम!" दरबारियों ने एकस्वर से ताईद की।

"मगर मैं तो हुकूमत का अपने को अदना मुलाजिम समझता हूँ गरीबनवाज!" खानदौरान ने चापलूसी के लहजे में कहा तो बादशाह पुनः जल्दी-जल्दी अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगे। जिसके पूर्वज साधारण से साधारण विद्रोह को दबाने के लिये स्वयं घोड़े की पीठ आबाद करते थे, उन्हीं का वंशज शासन की इतनी बड़ी अराजकता को दबाने के लिये, वजीर को भेजने में भी अपनी तौहीन समझ रहा था! असल में, सीधे वजीर को आज्ञा देकर वे सहम-से उठे थे। परिमार्जन आवश्यक था सो....

बाबर और अकबर की कर्मठता का प्रतीक मुगल सल्तनत और उसका ताज वजीरों के हाथों की कठपुतली बनकर, पतन की अन्तिम सीमा को चूम रहा था। वस्तुतः मुगल हुकूमत की नींव की ईंटें उसी समय धसक उठी थीं, जब उसपर से आलमगीरी-साया उठा था।

कुछ देर तक दरबार निस्तब्ध बना रहा।

"आलीजाह को फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं। मैं सब इन्तजाम कर देता हूँ। पेशवा के बढ़े हुए मंसूबे के पङ्ख कटवाकर आपके कदमों डाल दूँगा, उसने अपने को समझ क्या लिया है?" कहते-कहते खानदौरान जोश में आकर उठकर खड़ा हो गया।

"बहुत खूब, बहुत खूब!"

दरबारे-खास प्रशंसा-शब्दों से गूँज उठा।

• •

युद्ध और विजय की सरगर्मी ने, पूना के जन-जीवन में व्याप्त मस्तानी के प्रति असंतोष-घृणा को अपने में समेट-सा लिया था। प्रकृति से युद्ध-प्रिय मराठे, जैसे सब-कुछ भूलकर, पेशवा की 'सक्रियता' में उलझ गये थे।

शनिवारबाड़ा तैयार हो चुका था। राधाबाई को छोड़कर और पेशवा-परिवार उसी में आ गया था। बहुत प्रयत्न करने पर भी बाजीराव, राधाबाई से शनिवार बाड़े में रहना नहीं स्वीकार करा सके।

आसमान में दोपहर का सूरज तप रहा था। मस्तानी-महल के अन्तःभाग में, भोजन के उपरान्त पेशवा बाजीराव पलंग पर विश्राम कर रहे थे कि अनवरी ने धीरे-से द्वार का पर्दा उठाया। मस्तानी उनके पास ही बैठी थी। आहट पाकर उसने देखा और—"क्या बात है अनु !" धीरे-से पूछा।

"पेशवा क्या सो गये हैं?"

सुनकर बाजीराव की ढँपी हुई पलकें खुल गयीं—"नहीं भाई, बिल्कुल नहीं...." और वे अँगड़ाई लेते हुए उठकर बैठ गये—"आओ न अनु ! कितनी बार कहा होगा मैंने कि अपना यह संकोच धो डालो पर तुम...." वे मुस्कराये। दोनों हाथ अनायास ही मस्तानी के कंधों पर जा पड़े—"अपनी सखी को तुम्हें भी तो समझाना चाहिये...."

"जी, बाहर नीराजी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं...." अनवरी ने पर्दे के उसपार से ही कहा, किंचित घबराये स्वर में—"बड़ी रानी ने आपको अभी बुलाया है, कोई बहुत ज़रूरी काम...."

मस्तानी पलंग से नीचे आ खड़ी हुई थी। सुनकर बेतरह चौंकी। जल्दी से दरवाजे के पास आ गयी वह—"नीराजी ने और कुछ नहीं बतलाया अनु! जीजी की तबीयत तो ठीक है न?" स्वर में आतुरता थी।

"मैं देखता हूँ!" बाजीराव जल्दी से बाहर आ गये। फिर घूम-कर—"मैं चलता हूँ प्रिये!" और आगे बढ़ गये। दालान में नीराजी बेचैनी से टहल रहा था। पेशवा को देखते ही उसने झुककर चरण स्पर्श कर लिया। पेशवा ने स्नेहपूर्वक उसकी पीठ पर थपकी दी और—"क्या बात है नीरू!"

"क्या आप सो रहे थे?"

"नहीं तो...."

"भाभी आपकी प्रतीक्षा में हैं...."

"कोई विशेष बात...." झपटते हुए वे सीढ़ियाँ पार कर रहे थे। नीराजी भी आगे बढ़ने को हुआ पर उसी समय पीछे से मस्तानी ने आकर उसे रोक लिया। उसकी मुद्रा अत्यन्त उद्विग्न हो रही थी।

"नीराजी!"

वह मौन ही रहा। पेशवा आँखों से ओझल हो चुके थे।

"जीजी स्वस्थ हैं?"

"हाँ!"

"और माताजी?"

नीराजी घबरा उठा। एक बार सहमी हुई आँखों से उसकी ओर निहारने की चेष्टा की परन्तु असफल रहा। मस्तानी ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया। नीराजी की घबराहट, रोमांच में परिणत हो गयी।

"नीराजी!"

वह मौन। आँखों का फर्श पर कुछ खोजने का वही उपक्रम। [म]स्तानी के मानस में झंझावात का ताण्डव-सा हो रहा था। नीराजी

का मौन उसे असह्य हो उठा। नीराजी ने अनुभव किया, आवेग से उसके पैर बुरी तरह काँप रहे हैं। बड़ी मुश्किल से कह पाया—"आप निश्चिन्त रहें। पूज्य राव ने आपकी सुरक्षा मुझे सौंपी है....मेरे शरीर में एक बूँद खून के रहते....कुछ नहीं होगा, कुछ नहीं...."

"नीराजी!"

"......." आँखें उठीं। पुतलियों में प्रश्न झाँक उठा—'क्या मुझपर विश्वास नहीं!'

मस्तानी ने समझा और तब अनायास ही विचलित हो उठी। पेशवा के इस भोले-भक्त ने अपनी सहज सुकुमारता एवं कर्तव्यनिष्ठा से उसके पीड़ित मन को सदैव साहस बँधाया था। मस्तानी की आँखें गीली हो उठीं—"नीराजी, माताजी मुझे पेशवा से छीन लेने को विकल हैं न?"

"भाभी!" नीराजी चीख उठा। उसके मुख से यह 'सम्बोधन' आज पहली ही बार हुआ था। सुनकर मस्तानी रोमांच से भर उठी। वह कहता रहा, स्वर क्रमशः तीव्र होता गया—"पूज्यराव की सुख-शान्ति की आप आधार हैं और वह आधार हमारे लिये कम मूल्य नहीं रखता....आवश्यकता पड़ने पर, मेरे और मुझ जैसे अनेकानेक पेशवा-भक्तों का एक-एक बूँद लहू...."

"नहीं-नहीं, मेरे भोले भाई, ऐसा कभी न होगा। माताजी को मेरा खून चाहिये....मैं स्वयं अपने शरीर का एक-एक बूँद उनके चरणों पर उड़ेल दूँगी। ज़रा सोचो तो, मेरे ही कारण तुम्हारे राव के उज्ज्वल मुख पर कालिख पुत गयी है। अदना से अदना व्यक्ति उनकी पीठ के पीछे...."

"किसकी मजाल है!" नीरू भड़क उठा।

"शान्त रहो नीरू, मेरे भाई!" मस्तानी ने पुनः उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। नीरू के आवेग को झटका-सा लगा। वह कहती

रही—"मुझे मालूम है, माताजी ने अप्पा और नाना को मुझे गिरफ्तार करने का आदेश दिया है....तुम घबराओ नहीं, उसके लिये मैं तैयार हूँ...."

"भाभी !" नीराजी भौंचक्का-सा उसकी ओर देखता रह गया।

"जीजी ने पेशवा को बुलाया है—क्यों ?"

"यही...."

"यही कहने के लिये !—कितनी पगली है मेरी जीजी, है न ? उनको तो बहुत पहले ही मालूम हो चुका है। गुजरात जाने के पहले ही....तुम घबराओ नहीं....आओ, चलो, तुमसे आज बहुत-सारी बातें करनी हैं....नीरू, आज तुमने मुझे भाभी कहा है—उफ् ! उनके और जीजी के अतिरिक्त कोई और भी मुझे अपना समझता है—मेरी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं...." सचमुच उसके निष्प्रभ मुख पर उल्लास और संतोष की एक झीनी परत पड़ गयी थी।

नीरू ठगा-सा देखता रह गया।

"आओ, नीरू !" स्वर में जाने कहाँ का अपनत्व छलका पड़ रहा था।

वह रुक न सका।

"आज तुम्हें भी भ्रष्ट करूँगी मैं !" चलते-चलते कह रही थी वह—"तुम्हारी भाभी हूँ न ! आज भाभी के हाथ से तुम्हें जलपान करना होगा....क्या नहीं करोगे नीरू !"

जाने कितनी ममता, जाने कितनी करुणा थी उस विकल-प्रश्न में कि नीरू की आँखों के कोरों पर मोतियाँ झलक उठीं। पैर स्वतः ही उसका अनुसरण कर रहे थे।

पेशवा ने अपने मन के सम्पूर्ण असन्तोष-अवसाद को 'पेशवाई-सक्रियता' में समाहित कर लिया। सतारा—राजधानी का महत्व धीरे-धीरे पूना में खिंचा आ रहा था। महाराष्ट्र के शासन का दायित्व

पेशवा के हाथों सौंप कर महाराज शाहू निश्चिन्तमन-से, महल और आखेट के मनोरञ्जन में रम गये। राज्यप्रतिनिधि का अस्तित्व—बस, अस्तित्व ही रह गया।

दिल्ली का आकर्षण पेशवा को अपनी ओर बुरी तरह खींच रहा था। सिद्दियों और समुद्रतटीय विदेशी-व्यापारियों की समस्याओं के समाधान का उत्तरदायित्व चिमणा जी अप्पा और होल्कर आदि सेनापतियों को सौंप, वे अपने को एकदम उत्तर की ओर उन्मुख कर लेने को तत्पर हो उठे। घटना-चक्र की तीव्र गति ने उन्हें विवश भी किया। पूना के विषाक्त-वातावरण से जहाँ तक होता, अपने को अलग ही रखते।

दिल्ली की हर गति-विधि का समाचार लाने के लिये पेशवाई-गुप्तचरों का दौर-दौरा था। मुहम्मदशाह की दरबारी-हड़बड़ी की भनक मिली तो उनके अधरों पर मुस्कराहट लोट पड़ी।

"खानदौरान आ रहा है, भई खूब!" एक के मुख से फूट पड़ा।

"आश्चर्य नहीं, एक दिन मुहम्मदशाह बादशाह का 'रङ्गीला-खींमा' ही श्रीमन्त के मुकाबले में आकर अड़ जाय!" विठोबा जी चूले ने मूँछों पर हाथ फेरते हुए फब्ती कसी तो सरदार-मण्डली अट्टहास कर उठी। परन्तु पेशवा ने उसमें कोई योग नहीं दिया। उनके मुख पर पूर्ववत् गम्भीरता छायी रही। महत्वाकांक्षा की चरम परिणति, अटक पर लहराता हुआ हिन्दू-पद-पादशाही का प्रतीक भगवा—आँखों के समक्ष नाच-नाच जाता और तब लगता, अन्तस में ज्वाला-मुखी फट पड़ा हो!

सरदार-मण्डली को उनकी गम्भीरता अखर गयी। सब चकित-से उनकी ओर निहारने लगे। सहसा पेशवा ने चौंककर सामने खड़े गुप्तचर की ओर देखा—"और कुछ?"

"श्रीमन्त, खानदौरान को बादशाही आदेश मिल चुका है।

मुगल-सरदारों ने सम्भावित-विजय की कल्पना में, आपके पुतले बनाकर जमुना में...." वाक्य पूरा न कर सका बेचारा।

"अच्छा!" पेशवा की भृकुटि बङ्क हुई पर क्षण ही भर के लिये, दूसरे ही क्षण वे पूर्ववत् शान्त दीख रहे थे—"क्या खानदौरान स्वयं आक्रमण का नेतृत्व करेगा?"

"यह तो...."

"मैं जानता हूँ। बादशाह का आदेश पालन करने के लिये अपने शरीर को इतना कष्ट देने की अभी वह आवश्यकता न समझेगा।" बाजीराव जैसे अपने से ही कह उठे—"आज की मुग़ल राजनीति का यह धर्म भी तो नहीं। खैर, देखा जायगा। सादत खाँ क्या राजधानी में ही है?"

"हाँ, अरसे से!" गुप्तचर ने कहा—"मेरे आने तक, उसकी अपनी सेनायें, दिल्ली के आस-पास पड़ाव डाले पड़ी थीं। खानदौरान उसे अपने मार्ग का रोड़ा भी समझ रहा...."

"हूँ!"

"मेरे लिये और कोई आज्ञा श्रीमन्त!"

"नहीं, अब तुम जा सकते हो...." पेशवा ने आदेश दिया—"और कल प्रातःकाल ही तुम्हें दिल्ली के लिये प्रस्थान भी कर देना है, इसे भूलो नहीं...." प्रणाम करता हुआ वह कक्ष के बाहर चला गया। पेशवा ने एक दीर्घ निश्वास के साथ सरदार-मण्डली की ओर निहारा।

"श्रीमन्त!"

"कहो, बूले!"

"अब हमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। बादशाह और उसके नमकहराम सरदारों को अभी भी हमारे प्रति भ्रम है....उस भ्रम को चूर-मार करके...." विठोबा बूले आवेश में आ गया था।

"नहीं, बूले !"

"तब ?"

"हमें दिल्ली की ताकत को तौल लेना होगा...."

"वह तो तुल चुकी है श्रीमन्त !" एक सरदार ने दबे स्वर में कहा—"हमारे घुड़सवार अपने घोड़ों की टापों से, मुग़लों की झूठी शान रौंद देने को विकल हो उठे हैं !"

"मैं इससे अपरिचित नहीं हूँ, मेरे भाई !" पेशवा का स्वर बहुत गम्भीर हो गया था, इतना कि सरदार-मण्डली की उत्तेजना पर उसका असर तत्काल पड़ा। सभी स्तब्ध-से उनकी ओर निहारने लगे। पर पेशवा की गहराई की थाह लगा पाना किसी को भी सम्भव नहीं दीखा।

"पूज्य राव !" अन्त में शिवदेव चिंचूरकर ने मौन भङ्ग किया—"दिल्ली में अब रह ही क्या गया है ? बादशाही-फौज में, मेरा खयाल है, आधे से अधिक तो खोजा होंगे !"

"अवश्य...."

"अवश्य...." चारों ओर से आवाजें आने लगीं।

पेशवा के अधरों पर मुस्कराहट की पतली-सी रेखा बिछ गयी—"मुग़ल-सल्तनत अब अपने में, अकबर और औरङ्गजेब की गन्ध भी नहीं रख पायी है—सभी जानते हैं, परन्तु इससे भी तो इनकार नहीं किया जा सकता कि तख्तेताउस पर अपना हक समझने वालों की संख्या कम नहीं। हमारे मार्ग की दीवार, स्वयं बादशाह नहीं, उसके सरदार बनेंगे और उस दीवार को लाँघ पाना उतना आसान नहीं, जितना देखने में आता है। हमको अपना हर कदम फूँक-फूँककर रखना है...."

तर्क की सत्यता सभी ने स्वीकार की।

"अपने में धैर्य रखकर भविष्यत्-संकेत की प्रतीक्षा करनी होगी...."

"तुमने ठीक कहा, पेशवा !" कहते हुए द्वार पर वृद्ध जीवाजी कदम खड़े दीखे। सब हड़बड़ाकर उठ पड़े। इधर कुछ ही दिनों से उनके वृद्धत्व ने शरीर पर प्रगति के बहुत सारे चिह्न छलका दिये थे। तनी हुई कमर, कमान से होड़ ले रही थी। झुर्रियों की संख्या-वृद्धि भी कम न हुई थी।

"आप तीर्थ-यात्रा से कब आये दादा !" उनको श्रद्धापूर्वक पीठासन पर बिठाते हुए पेशवा ने पूछा तो उनका मुख-मण्डल स्नेह से स्निग्ध हो उठा—"अभी तो आपको लौटने में विलम्ब लगना चाहिये था !"

"हाँ, बेटा !"

"तो ?"

"आना पड़ा सो आ गया...." स्वर में कम्पन था।

"दादा ! लगता है, यात्रा में आप अस्वस्थ रहे !" पेशवा की आँखें, उनकी मुद्रा पर तिरते उद्वेग को टटोल-सी रही थीं। कदम ने देखा और समझा भी। पेशवा बाजीराव ने जल्दी से अपनी आँखें फिरा लीं, जाने क्यों ?—"दादा, इधर तो मुझे साँस लेने की भी फ़ुरसत नहीं—"

"महाराष्ट्र के पेशवा के लिये यह आवश्यक भी है बेटा !" उन्होंने पेशवा के कन्धे पर अपना काँपता हुआ हाथ रख दिया—"क्या दिल्ली की ओर से कोई आक्रमण...."

"हाँ !" पेशवा चञ्चल-से हो गये थे।

"निकटभविष्य में ही ?"

"हाँ, दादा !"

उन्होंने पेशवा के 'परिवर्तन को लक्ष्य किया और तब धीरे-से उठ पड़े—"तुम्हारी माताजी का बुलावा आया है। चल रहा हूँ। अगर सन्ध्या को फ़ुरसत हो तो आ जाना...."

"माताजी से मिलने जा रहे हैं ?"

"हाँ !"

"मैं अवश्य आऊँगा, दादा !"

"तुम्हारी प्रतीक्षा में रहूँगा बेटा !" और वे सब के अभिवादन पर आशीर्वाद की 'मुहर' लगाते हुए, धीरे-धीरे बाहर चले गये।

उनके जाने के बाद, शीघ्र ही सरदारों को भी विदा लेनी पड़ी। पेशवा की परिवर्तित मनःस्थिति ने, उन्हें विवश भी किया इसके लिये। एकान्त होते ही पेशवा गद्दी पर, गावतकिये के सहारे उठँग गये। आँखें ढँपने-सी लगीं।

प्रभावशाली वयोवृद्धों में, एक जीवाजी कदम ही थे, जिन्होंने मस्तानी-प्रकरण पर, पेशवा के प्रति रञ्चमात्र भी असन्तोष नहीं प्रकट किया था। इस सम्बन्ध में आज तक उन्होंने कभी बाजीराव से चर्चा भी नहीं की। पेशवा-माता ने, अनेक बार उनसे इस सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने को कहा परन्तु उन्होंने अपने को पृथक् ही रखा।

पेशवा-माता का विरोध जब अत्यधिक उग्र, अत्यधिक असंयमित हो उठा तो एक दिन, बिना किसी योजना के उन्होंने तीर्थ-यात्रा का निश्चय कर लिया।

और आज !—

पूरे एक वर्ष के पश्चात् माताजी ने उन्हें बुलाया है !—क्यों ?

मानस के तार-तार काँप उठे—क्यों ? उत्तर भी कम स्पष्ट नहीं था—

सोचकर पेशवा के मस्तक पर स्वेद-कण झिलमिला उठे।

उसी समय घबराया हुआ-सा नीराजी आकर सामने खड़ा हो गया—"अनर्थ हो गया राव !" चीख पड़ा वह।

"नीरू !"

"राव, छोटी भाभी का महल में पता नहीं है...."

"क्या?" बाजीराव को काटो तो खून नहीं। वे हड़बड़ाकर उठ पड़े—"कहता क्या है?" उनका सारा शरीर थर-थर काँप रहा था।

"ठीक है, राव!"

वे अवसन्न रह गये।

"राव...."

"नीरू, मैंने उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी तुझे सौंपी थी!"

"मैं अपनी असावधानी पर लज्जित हूँ।"

"और बच्चा!"

"वह भी!"

पेशवा के पैर लड़खड़ा गये। वे गद्दी पर गिर-से पड़े। नीराजी घबराकर उनकी ओर लपका—"मुझे क्षमा करें राव!" उसने उनके पैर पकड़ लिये—"वे जहाँ भी कहीं होंगी, मैं ढूँढ़ निकालूँगा....अपने प्रयत्न में असफल रहा तो विश्वास रखें, अपना मुख कभी...."

"नीरू!" वे सम्हले-से—"इतना घबराने से काम नहीं चलने का मेरे भाई!" स्वर में कम्पन नहीं, स्थिरता थी—"मस्तानी को इस प्रकार मुझसे कोई अलग नहीं कर सकेगा। क्या अनवरी आदि भी नहीं हैं?" उन्होंने नीरू की पीठ पर स्नेहपूर्वक थपकी थी।

"वे सब हैं, राव!"

"हूँ!"

"क्या माता जी...."

"हाँ, नीरू, इसमें उन्हीं का हाथ मालूम पड़ता है!" एक उच्छ्‌वास और—"खैर, रानी से कुछ मालूम हुआ?" उन्होंने पूछा तो सही पर तुरत ही—"नहीं-नहीं, माता जी इतनी बड़ी गलती कभी न करेंगी....रानी की जानकारी में, उनका यह षड्‌यन्त्र कभी सफल नहीं होता, कभी भी नहीं...." वे विकल-भाव से कक्ष में चक्कर काटने लगे। नीरू स्तब्ध-सा खड़ा निहारता रहा।

दोपहरी की जवानी ढल रही थी।

और उसी दिन सन्ध्या को—

नगर के बाहरी हिस्से में अपनी बनी हवेली में, जीवा जी कदम उद्विग्नमन बाजीराव को सान्त्वना दे रहे थे—"इतना घबराने से काम नहीं चलने का बाजी!....मस्तानी कल सबेरे तक तुम्हारे सामने उपस्थित रहेगी। वह इस समय कहाँ हो सकती है?—मैं जानता हूँ।"

"आप जानते हैं?"

"हाँ, बेटा!"

"कहाँ?" वे उतावले हो रहे थे—"इसी पूना में ही तो! बोलिये, दादा!"

"नहीं!"

"तो?"

"पास ही....पर हो सकता है, यह मेरा अनुमान ही साबित हो। खैर, मस्तानी को किसी भी कीमत पर सुबह तक तुम्हारे सामने कर दूँगा, विश्वास रखो!" उनका स्वर दृढ़ था। उनके शरीर में, जाने कहाँ से स्फूर्ति आ गयी थी। जल्दी से बाहर जाने के लिये तत्पर हो, उन्होंने पेशवा से कहा—"तुमको, विश्वास दिलाना होगा, जब तक मैं वापस न आ जाऊँ, अपने को पूर्णतया शान्त रखने का प्रयत्न करोगे....नहीं, अच्छा हो, आज अपने दादा के ही यहाँ...." और वे द्वार के बाहर हो गये। बाजीराव मूर्तिवत् खड़े देखते रहे। लग रहा था, जैसे निस्सीम गगन में उस कपोत-से फिर रहे हों, जिसके चारों ओर निस्सीमता पसरी पड़ी हो और बेचारा घबराकर उस घुँटन-मयी निस्सीमता से सिर टकरा रहा हो।

● ●

तीन दिनों तक मस्तानी का कोई समाचार नहीं मिला। बेचारे कदम सिर पटककर रह गये। राधाबाई ने, बाला जी और अप्पा के द्वारा उसे पूना के बाहर कहीं भिजवा दिया है और वह जीवित है, उनसे केवल इतना ही सन्तोष बाजीराव को मिल सका, बस! नीरा जी का भी कोई पता नहीं चल रहा था। पेशवा की आँखों से नींद उड़ गयी। कई बार आवेश में आकर नाना और अप्पा को बुरी तरह फटकार चुके थे; पर वे विवश थे, इससे अपरिचित भी न थे। राधाबाई की कठोरता पिघल न सकी!

"नाथ!"

पेशवा ने भरी-भरी आँखें काशीबाई की ओर उठाईं तो वह अपने को सम्हाल न सकी। उनके कन्धे से मस्तक टिकाये, फूट-फूटकर रो पड़ी—"रोती हो रानी!" स्वर का वह मौन-रुदन कितना हाहाकारी था और कितना दारुण!—दरवाजे पर खड़ी अनवरी ने अपना मस्तक दीवार से दे मारा। काशीबाई की आँखें सावन-भादों बनकर बरस रही थीं।

"आप एक बार माता जी के पास हो लें...."

"नहीं!"

"नाथ...."

"वे मेरी मौत चाहती हैं रानी!" पेशवा की आँखों में विराट् शून्य तिर रहा था—"मस्तानी अगर....रानी, अगर उसका बाल भी बाँका हुआ तो....तो....उनके पास जाऊँगा और उसी समय, शरीर का एक-एक बूँद लहू निचोड़ कर उनका चरणार्चन करूँगा....

पुत्र के लहू से भी अगर उनके कुल पर पुत गयी कालिमा न धुल सकी तो....”

“नाथ !”

“माताजी यही तो चाहती हैं रानी ?”

“महाराष्ट्र की ओर देखें नाथ !”

“नहीं, तुम्हारा भ्रम है यह। बाजी तो महाराष्ट्र के मस्तक पर कलंक है रानी !” उनके स्वर के एक-एक अणु में विष था, घायल-अन्तस की हुंकार थी। कुछ देर तक अपने आप में खोये हुए-से वे मौन बैठे रहे। एकबारगी ही उनकी भवें तन गयीं, काशीबाई ने सिहर कर देखा, क्षणभर पूर्व, करुणा में भीगी हुई उनकी आँखों से स्फुलिंग छिटकने लगे और वह गिरते-गिरते बची। आवेश में आकर उनका शरीर तन गया था—“रानी !”

“नाथ, आपको क्या हो गया है, आप अपने को शान्त रखें !”

“शान्त रखूँ ?” वे गरज-से उठे—“माताजी ही क्या सारा महाराष्ट्र भी मेरी मस्तानी को मुझसे नहीं छीन सकता ! कभी नहीं। अपनी महत्वाकांक्षा में मैंने महाराष्ट्र को....मैं सब कुछ जलाकर राख कर दूँगा, राख कर दूँगा....” क्रमशः बढ़ रही उत्तेजना से उनका सारा शरीर थर-थर काँप रहा था।

काशीबाई घबरा उठी। वे मानसिक-अशान्ति में पागल तो नहीं हो गये ?—मन में हूक-सी उठी। बाजीराव कक्ष में चारों ओर भूखे सिंह की भाँति निहार रहे थे। उसी समय, शनिवारवाड़ा हलचल से भर उठा। पेशवा झरोखे पर झुके थे। अचानक उनके मुख से फूट पड़ा—“मस्तानी आ गयी, रानी !” और वे झपटते हुए दरवाज़े को पार कर गये।

मस्तानी सचमुच वापस आ गयी थी !

और अपने महल के विशेष-कक्ष में पेशवा-माता राधाबाई, अप्पा और बालाजी की इस असावधानी पर बरस रही थीं।

मस्तानी पाँच ही सात दिनों में इतनी शिथिल हो गयी थी कि झपटते हुए बाजीराव ने जब उसे अपनी बाँहों में सम्हाला तो वह अचेत-सी हो गयी। पास ही नीरू खड़ा था।

"नीरू !"

"राव...." उसने झुककर उनका चरण स्पर्श कर लिया।

अचेत-सी मस्तानी को अनवरी और काशीबाई ने सम्हाल लिया था। थोड़े ही प्रयत्न में उसे होश आ गया। काशीबाई के आतुर अधर उसके मस्तक और तब सारे मुख का स्पर्श कर रहे थे। पीछे खड़े पेशवा से वह दृश्य देखा न गया। वे धीरे-धीरे कक्ष के बाहर हो गये।

"नीरू !"

"राव !"

"बच्चा कहाँ है ?"

"सानन्द है, राव !" नीरू थका हुआ-सा तख्त पर धम्म-से बैठ गया—"छोटी भाभी ने स्वयं ही अपने को स्वतंत्र किया है...."

"हूँ !"

"माताजी ने सारी व्यवस्था इतनी तत्परता और सावधानी से की थी कि हम सिर पटक कर रह जाते पर...."

"पर ?"

"पता लगना संभव नहीं था !"

"अप्पा तो यहाँ नहीं है नीरू, फिर यह सब किसने किया...."

"वे आये थे राव !" नीरू ने कहा—"माताजी ने उन्हें अत्यन्त गुप्त रूप से...."

उसी समय दोनों ने चौंककर देखा—सामने से, वृद्ध जीवाजी कदम के साथ चिमणाजी अप्पा चले आ रहे थे। नीरू उठकर खड़ा हो गया।

"मैं चल रहा हूँ, !" और उनके उत्तर की बिना प्रतीक्षा किये वह जल्दी से दूसरे द्वार में घुस गया।

कदम को प्रणाम करते तथा अप्पा के अभिवादन का उत्तर देते हुए वे पूर्णतया प्रकृतिस्थ दीख रहे थे।

"तुम कब आये अप्पा !"

"राव !" अप्पा घबराये मगर तुरत ही सम्हल भी गये—"अभी-अभी चला आ रहा हूँ। दादा से मालूम हुआ आप अस्वस्थ हैं...."

"था !" और वे हँस पड़े।

कदम ने उनकी हँसी को साश्चर्य देखा और अप्पा ने सहम कर।

"राव !"

"तुम्हें हो क्या गया है अप्पा ! सदाशिव इधर अस्वस्थ हो गया था न ?—अब कैसा है ?" सदाशिव राव, चिमणाजी अप्पा के ज्येष्ठ पुत्र का नाम था। अप्पा का परिवार माता जी के साथ, पुराने महल में ही रहता था।

"राव...."

"कहो न....क्या वह....भाऊ....अभी अस्वस्थ ही है !....विवश हूँ अप्पा, उसे चाहकर भी देखने नहीं जा पाया। कैसा है वह ?"

"ठीक है, राव !" एक दीर्घ निश्वास के साथ निकल गया।

"और माताजी !"

उनके स्वर में व्यंग्य नहीं था; था एक कराहता हुआ-सा गाम्भीर्य, छटपटाती हुई-सी आकुलता। कुछ उत्तर देते नहीं बन पड़ा अप्पा से।

सहसा कदम ने पूछा—"सुना है, मस्तानी आ गयी बेटा !"

"हाँ, दादा !"

चिमणाजी अप्पा की आँखें, उस समय फर्श पर कुछ ढूढ़ने में व्यस्त हो गयी थीं। बाजीराव ने छोटे भाई के मन की पीड़ा का अनुभव किया और तब वार्ता का विषय ही बदल दिया। कुछ ही देर

बाद, अप्पा उठकर काशीबाई के महल की ओर बढ़ गये। कदम ने संतोष की एक लम्बी साँस ली।

"दादा!"

"बेटा!"

"अप्पा अपने आप में ही परिताप-दग्ध हो रहा है। कितना पागल आदमी है यह। उसको दोष देने की कल्पना भी मुझसे नहीं हो पायेगी कभी....मैंने अपने अन्तस की मातृ-भक्ति को कलंकित कर लिया है परन्तु उसने....उसने तो जो भी किया अपना कर्त्तव्य समझ कर ही...."

"उसे भूल जाओ, बेटा!"

"भूल चुका हूँ, दादा!" बाजीराव के अधरों पर स्वाभाविक-मुस्कान की तरलता थी—"मैं अविलम्ब पूना छोड़ रहा हूँ!"

कदम ने देखा—

तीन दिनों के निराहार से क्लान्त पड़े उनके शरीर पर वही महत्वाकांक्षी तेज छा गया था, जिसकी दीप्ति में हिन्दू-पद-पादशाही की स्थापना का स्वप्न साकार हो उठा था।

"अब तुम विश्राम करो बेटा!"

"दादा!"

"तुम काल-कूट हो बाजी! शंकर!! विष की घूँट स्वयं पीकर अपने महाराष्ट्र को...." कंठ अवरुद्ध हो गया।

बाजीराव उनके चरणों पर झुके थे।

● ●

मराठों को मालवे से निकाल बाहर करने के बादशाही आदेश का बोझा अपने भाई मुजफ्फर खाँ पर डालकर, खानदौरान निश्चिन्त-सा हो गया। अपने वजीर की लायकियत और ताक़त पर बादशाह

को विश्वास था सो दिल्ली-दरबार में पेशवाई-आतङ्क से जो गड़बड़ी हो गयी दीखती थी, पुनः 'रङ्गीन' हो उठी। बादशाह मुहम्मदशाह 'रंगीले' की रंगीलियत चहकने लगी। दरबार में, सल्तनत पर सम्भावित विपत्तियों का समाधान नहीं, 'मीरहम्ज़ा' की कपोलकल्पित बहादुरी के क़िस्से सुने-सुनाये जाते थे। 'मीरहम्ज़ा' के क़िस्से में बादशाह बड़ा रस लेता था। सुनानेवाले 'किस्सा-गो' को दस हज़ार सालाना की एक जागीर अता फरमायी गयी थी, बादशाह की ओर से। कभी दिल्ली की सड़कों पर रमल फेंक-फेंककर धेला-पैसे की आमदनी करनेवाला, किस्सा-गो बनकर, इस समय अपने को 'सरदार' समझ रहा था!

मुजफ्फर खाँ बिना रोक-टोक के मध्य-भारत में धँसता चला गया। समाचार पाकर खानदौरान को, बादशाह के मन में यह बैठा देने में कोई खास परेशानी न हुई कि डर कर पेशवा सीधे पूना की ओर भाग गया है! और जब अचानक ही मुजफ्फर खाँ और उसकी सेना पर पेशवाई सेना ने सहसा ही आक्रमण कर दिया तो बादशाह ने चौंककर वज़ीर की ओर देखा। दरबार सन्नाटे में आ गया।

"वज़ीरेआला!"

"हुज़ूर!"

"ये आखिर आ कहाँ से गये?"

"आलमपनाह, 'जंगीली-चूहों' की ज़मात ठहरी, कोई ख़ास ताज्जुब की बात नहीं। मुजफ्फर खाँ को तो आप जानते ही हैं, बात की बात में काट-कूट कर मुट्ठीभर उन 'चूहों' को साफ़ कर देगा!"

"ऐसा ही हो!" एक लम्बी साँस के साथ उन्होंने सादत खाँ की ओर निहारा—"आपका क्या खयाल है, जनाब!"

"मेरा?"

"फरमायें!"

"आलमपनाह, वज़ीरेआला को बिरादर मुजफ्फर खाँ पर बहुत

ज्यादा भरोसा है, होना ही चाहिये, पर पेशवा बाजीराव को मामूली बला समझकर टालना खतरनाक बात होगी !"

"देखी जायगी !" खानदौरान गुर्राया।

"मैंने तो ऐसे ही होशियार रहने की नीयत से कहा था जनाब !" सादत खाँ ने गुर्राहट पर मुस्कराहट का लेप-सा किया।

उस समय पेशवा का दिल्लीस्थित प्रतिनिधि धोंडो अपने निवास-स्थान पर एक गुप्तकक्ष में बैठा, पेशवा को पत्र लिख रहा था—

'...हो सके तो जल्दी से जल्दी मुजफ्फर को खत्म कर दीजिये। सादत खाँ और खानदौरान को बादशाह दक्खिन की ओर रवाना कर ही देगा और तब आपके लिये मार्ग प्रशस्त हो जायगा। दिल्ली आपकी प्रतीक्षा-सी करती मिलेगी। मैं बराबर दरबार में पहुँचता हूँ। बादशाह और उसके वजीरों को मेरी ओर ध्यान देने का जैसे मौक़ा ही नहीं। सब के सब नम्बरी बेवकूफ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।...'

पेशवा ने मुजफ्फर खाँ को और कसा। बेचारे के सामने मौत नाचने लगी।

खबर पाकर खानदौरान घबराया, चिन्तित हुआ—मुजफ्फर भाई था न ?

और एक दिन दरबार में उसने जोर-शोर से घोषणा की—"मैं खुद मराठों का मिजाज ठिकाने लगाऊँगा !" बादशाह ने वज़ीर के जोश पर सन्तोष प्रकट किया। उत्साह भी बहुत दिखाया।

पाँच-सात दिनों के बाद खानदौरान की सेनाओं के तम्बू दिल्ली से बाहर भेजे गये। खुद चार-पाँच दिनों के बाद रवाना हुआ। उसके हरकारे बादशाह को हर पड़ाव पर समाचार देते रहे—

'मराठों का कहीं पता नहीं लग रहा है !'

हर पड़ाव की खबर पाकर, दरबार की रंगीनी और गहरी हो जाती।

धोंडो ने पुनः पेशवा को सूचित किया—

'....वजीर ने बादशाह को लिखा है कि मैंने यमुना के पार आ गयी मराठों की एक बहुत बड़ी सेना का सफाया कर दिया है। दो हजार घुड़सवारों को तो नदी में डुबो दिया है....मल्हार जी होल्कर और विठोबा जी बूले जान से मार दिये गये हैं। जिस दिन पेशवा सामने आ गया, उसे भी अपनी तलवार से दो टूक कर दूँगा....

और उसने यह भी लिखा है कि मैं यमुना नदी पार करूँगा और मराठों को तलवार के घाट उतारता हुआ, हमेशा के लिये चम्बल के उस पार खदेड़ दूँगा....

राजधानी में इस समय सादत खाँ भी नहीं है। दिल्ली के क़िलेदार की थोड़ी-बहुत सेना ही हमारे सामने रहेगी....आप जैसे भी हो अपनी बाग दिल्ली की ओर अविलम्ब मोड़ दें....'

और पेशवा बाजीराव ने आनन-फानन में मुजफ्फर खाँ की घिरी हुई भूखों मर रही सेना को नेस्तोनाबूद कर दिया। उस समय तक खान-दौरान यमुना को पार करता हुआ काफी आगे बढ़ आया था।

मराठा-घुड़सवारों के उत्साह का पारावर न रहा, जिस समय सेना-पतियों ने उन्हें दिल्ली की ओर प्रयाण करने का आदेश दिया।

वर्षों का सँजोयी महत्वाकांक्षा पूर्ण हो रही थी। बाजीराव ने दिल्ली की ओर बढ़ने के पूर्व चिमणा जी अप्पा को लिखा—

'....अप्पा, बादशाह मुहम्मदशाह अपने नालायक वजीर की कल्पित-विजय का समाचार पाकर फूला नहीं समाया है। तख्ते-ताउस पर बैठने वाले उस मूर्ख ने, समझ लिया है, मराठा-घुड़सवारों के लहू से यमुना लाल हो उठी है! बाबर और अक़बर के बंशज की 'वीरता' देख रहे हो न? खानदौरान और सादत खाँ के लिये दिल्ली से, खिलत रवाना हो गये हैं मराठों

के लहू से यमुना को 'लाल' कर देने की शाबासी में ! दिल्ली में मराठों के प्रति तिरस्कार-युक्त बातें प्रचारित हो रही हैं। कहने को बड़ी-बड़ी बात और काम के नाम पर शून्य !—मुग़लों की राजनीति तो तुम जानते ही हो !

'मुहम्मदशाह के इस भ्रम का निराकरण दो ही प्रकार से हो सकता है—या तो खानदौरान और सादत खाँ को उनके इन सारे 'अरमानों' सहित खून की नदी में डुबो दिया जाय या तो दिल्ली पर आक्रमण करके उसे जलाकर राख कर दिया जाय !—तभी तो मालूम होगा, मराठे अभी जीवित हैं, मरे नहीं !....

'मैंने दूसरा ही रास्ता अपनाने का निश्चय कर लिया है। हमारा लक्ष्य इस समय दिल्ली है।

'और दिल्ली मराठा घुड़सवारों की प्रतीक्षा भी कर रही है।

'हाँ, अन्य आवश्यक कार्यों के साथ ही तुम्हें बेईमान निजामुल्मुल्क की ओर भी कड़ी दृष्टि रखनी है। सब कुछ होते हुए भी दिल्ली में घुसना हमारे लिये खतरनाक है। आशा है तुम इस ओर सन्नद्ध रहोगे....'

बादशाह मुहम्मदशाह जीत के सपनों में खोया हुआ था और ऊधर मराठा-घुड़सवार प्रतिदिन चालीस मील की रफ्तार से, चुपके-चुपके उड़े जा रहे थे—गन्तव्य दिल्ली था !!

• •

दरबार में आतङ्क छा गया, उस समय, जब कि शाही रिसाले के पन्द्रह बीस सिपाही बुरी तरह घायल होकर पहुँचे। मुहम्मदशाह उस समय तख़्तेताउस पर बैठा किसी किस्से के एक अंश की गुत्थी सुलझाने में तल्लीन था। शोर सुनकर उसने नज़र घुमाई तो—

"मराठे दिल्ली के पास आ गये हैं आलमपनाह...."

"उनके घुड़सवार, शहरपनाह तक आकर लूट-पाट मचा रहे हैं...."

"या खुदा !" मुहम्मदशाह हड़बड़ा कर तख्तेताउस पर खड़ा हो गया—"क्या बकते हो, वे मूज़ी तो जमना में काटकर फेंक दिये गये थे !"

"नहीं, हुजूर !"

"बकवास है, यह सब...."

"हकीकत है हुजूर, हम उन्हीं शैतानों के हाथ घायल हुए हैं.... आप यकीन करें !"

"मराठे अभी जिन्दा हैं !"

"दिल्ली लुट रही है...."

"या इलाही...."

दरबार की व्यवस्था डगमगा उठी। चारों ओर सनसनी मच गई। किलेदार को शहरपनाह का दरवाजा बन्द कर देने का आदेश दिया गया। अचेत-से हो रहे बादशाह को खोजाओं ने महल के अन्दर पहुँचा दिया। बेगमात अपने-अपने हिजड़े रिसालेदारों को तैयार रहने का हुक्म दे रही थीं !

पेशवा बाजीराव ने अपना कैम्प तुग़लकाबाद के पुराने किले में डाला था।

दिल्ली की शहरपनाह सामने दीख रही थी—

"राव !"

"हमारी महान् महत्वाकांक्षा आज पूर्णता के बहुत निकट पहुँच गयी है....देखो !"

"आप आज्ञा दें, दिल्ली में आग लगा दी जाय !"

"नहीं !"

"राव !"

"दिल्ली को राख बना देने से हमें कोई लाभ नहीं होने का होल्कर! ....हिन्दू-पद-पादशाही की राजधानी दिल्ली में ही रहेगी....दिल्ली भारत का हृदय है, इसे क्यों भूलते हो!"

"पर...."

"अपने घुड़सवारों को इसी समय आदेश दो होल्कर कि लूट में, न तो एक भी नागरिक का खून बहे और न ही....हम बादशाह को यह बताने आये हैं कि मराठे अभी जीवित हैं, वे कभी मर नहीं सकते!" उनका स्वर अधिकाधिक गम्भीर होता जा रहा था। मल्हार-राव होल्कर लपकता हुआ चला गया। जोश में आकर मराठा-घुड़सवारों ने कुछ मकानों में आग लगा दी थी। किलेदार के सैनिकों से उनकी छोटी-मोटी लड़ाई भी हुई, जिसमें मुग़ल-सैनिक गाजर-मूली की तरह कट मरे।

शहरपनाह की बुर्जियों पर बड़ी-बड़ी तोपें चढ़ी थीं—पर व्यर्थ।

मराठा-घुड़सवार उनसे बचते हुए, दिल्ली को मनमाना लूट रहे थे। लूट का माल जमा कर के कैम्प में पहुँचाया जा रहा था।

भयभीत बादशाह ने बहुमूल्य भेंट के साथ, पेशवा के पास सुलह का पैग़ाम भेजा। उधर घुड़सवार उन्मुक्त-भाव से लूट में संलग्न थे।

दिल्ली लुट रही थी—

और महल के परकोटे पर से बादशाह देख रहा था।

बाजीराव ने निस्सन्देह बड़े दुस्साहस का काम किया था। पूना और दिल्ली के बीच अपनी सेनाओं के साथ कई मुग़ल-सेनापति इस फिराक में पड़े थे कि मराठे मिलें तो उन्हें मसलकर रख दिया जाय। एक दक्ष सेनापति की भाँति पेशवा ने अपनी परिस्थिति की विकटता का अनुभव किया।

खानदौरान से सादत खाँ मिल चुका था। बादशाह का आदेश पाकर दोनों की सम्मिलित सेनायें, तेज़ी से दिल्ली की ओर बढ़ रही

थीं। मुहम्मद खाँ बंगश को भी आने का शाही-आमन्त्रण भेजा जा चुका था।

अगर उन्हें घेरकर, पीछे लौटने का रास्ता ही बन्द कर दिया गया तो....तो पूना से सैकड़ों मील दूर, उनकी दशा क्या होगी?

पेशवा का मस्तिष्क तेजी से चक्कर काट रहा था।

सुलह का प्रस्ताव विचाराधीन था, जिसे कुछ शर्तों के साथ स्वीकार कर लिया गया। जान बचाने के लिये, बादशाह ने पेशवा को मालवा का सूबेदार बनाना स्वीकार कर लिया था और खर्च के लिए नकती भेंट भी अर्पित की गयी। पेशवा को अविलम्ब दक्षिण की ओर कूच कर देना था और बादशाह सोच रहा था—जान बची लाखों पाये!

शर्तें पूरी की गयीं। दोनों ओर से हस्ताक्षर कर दिये गये।

मराठा कैम्प तुग़लकाबाद से हटकर कुतुबमीनार की ओर गया, फिर कुछ दिनों तक वहाँ, जहाँ पर अंग्रेज वायसराय का भवन है और चार-पाँच दिनों बाद, बाज की-सी गति से मराठा-सेना ने यमुना को पार करके अपना रुख पूना की ओर किया।

• •

बला तो टल गयी पर मराठों का आतंक दिल्ली के चप्पे-चप्पे पर छा गया। अच्छा अवसर देख, निज़ामुल्मुल्क ने बादशाह से क्षमा-याचना करते हुए, सल्तनत की सेवा करने की आज्ञा माँगी। घबराये हुए मुहम्मदशाह ने सहर्ष निज़ाम को दिल्ली आने का न्यौता दिया। मराठों का हौवा उसके दिलो-दिमाग़ में बस गया था। निज़ाम जैसे अनुभवी-वीर सेनापति की उसे आवश्यकता भी थी।

निज़ामुल्मुल्क के स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं। वजीर और

बादशाह में उसके स्वागत के लिये जैसे होड़ लग गयी थी। शानदार स्वागत किया गया उसका। बादशाह ने उसे 'आसिफजा' की उपाधि प्रदान की।

निज़ाम का दरबार में जो रोब गालिब था, उसका तो पूछना ही क्या !

सल्तनत की सेवा में पहला काम उसे जो सौंपा गया, वह था—पेशवा बाजीराव की गुस्ताखी का भरपूर मजा चखाना !—हो सके तो, दिल्ली के अपमान में, पूना को जलाकर राख कर दिया जाय !—बादशाह ने अपनी विशेष इच्छा प्रकट की थी।

"आप निसाखातिर रहें, मैं उस शैतान को जहन्नुम की हवा खिलाकर दम लूँगा !"

"आप पर मुझे पूरा भरोसा है !"

"मैं उस भरोसे की तहेदिल से क़द्र करूँगा आलमपनाह !" निज़ाम ने अपनी शानदार दाढ़ी को सहलाते हुए, मुस्कानसने स्वर में कहा। शायद उस समय अपनी पिछली पराजयों का स्मरण उसे नहीं था !

बरसात की समाप्ति पर—

इधर-उधर से बँटोर कर निज़ाम ने जो सेना इकट्ठी की, उसकी कुल संख्या ३४-३५ हज़ार के करीब थी। उसे भलीभाँति सज्जित कर वह मालवा-विजय के लिये दिल्ली से रवाना हुआ।

पेशवा बाजीराव असावधान नहीं थे।

अन्तिम झलक

अपने प्रधान शत्रु निज़ामुल्मुल्क से अन्तिम बार निबटारा कर लेने के लिये, पेशवा अपनी सत्तर हज़ार सेना के साथ तत्पर हुए तो मस्तानी उनके साथ थी।

अकेले नीराजी, मस्तानी की सुरक्षा करने में घबराने लगा था इसलिये कि पेशवा-माता का क्रोध उग्रातिउग्र होता जा रहा था। पेशवा-माता ने उनके इस निश्चय पर दाँत पीस लिया। महाराष्ट्र-समाज की आँखों से ज्वाला फूट पड़ी परन्तु पेशवा ने किसी की परवाह नहीं की।

सुरक्षा की इससे बढ़िया व्यवस्था वे और कर भी क्या सकते थे?

● ●

निज़ाम ने अपने दक्षिणी-सहायकों को सूचना भेजी थी कि पेशवा का रास्ता रोक लिया जाय, जब तक वे अपने को सम्हालें, तब तक वे सेना सहित नर्मदा को पार कर चुके थे! बेचारे हाथ मलते रह गये!

मस्तानी की चिन्ता से मुक्त, उसे अपने साथ पाकर उनके उत्साह की सीमा न थी।

भोपाल के समीप उन्होंने निज़ाम का रास्ता रोक लिया।

निज़ाम अनुभवी था। बाजीराव की गति से पूर्णतया भिज्ञ भी।

अपनी सेना पर सिवा तोपों के उसे कोई खास भरोसा नहीं था। निजाम ने आगे बढ़ना उचित नहीं समझा और अपनी सेना सहित भोपाल के किले में घुस गया।

पेशवाई सेनाओं ने टिड्डी-दल की तरह किले को चारों ओर से घेर लिया।

"निज़ाम तो अपने को दक्ष-सेनापति समझता रहा है, प्रभु !"

"है भी !" पेशवा ने, सामने खड़ी मस्तानी की ओर विमुग्ध-दृष्टि से निहारते हुए कहा ।

"खाक़ है !"

"क्यों ?"

"इस तरह घिर जानेवाला अगर सुदक्ष सेनापति है तो...."

मस्तानी की झुँझलाहट पर पेशवा खुलकर हँस पड़े—"बिल्कुल ठीक, मुझे स्वयं आश्चर्य होता है प्रिये ! इससे वह सारे हिन्दुस्तान में बदनाम होकर रह जायगा...." उन्होंने धीरे से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया—"तुम कलावन्त ही नहीं, सेनापति भी हो प्रिये !"

मस्तानी ने उनकी ओर अनुरागमयी दृष्टि डाली—"यह तो आपकी...."

उसी समय बाहर से नीराजी की आवाज आयी—"राव !"

पेशवा जल्दी से बाहर आ गये ।

"नीरू !"

"राव, दक्षिण से बाप की मदद के लिये सफदरजङ्ग ने सिर उठाया था पर मल्हारराव ने उसे कुचल दिया। यही दशा नासिरजङ्ग की भी हुईहै अप्पा जी के हाथों...."

"अब ?"

"लगता है, वह दिल्ली का रास्ता देख रहा है....पर मेरा अनुमान है, वहाँ से भी कुछ...."

"तुम्हारा अनुमान ठीक है। खानदौरान इसका पुराना प्रतिद्वन्द्वी है। उसकी जान साँसत में देखकर वह प्रसन्न हो रहा होगा....हमको अपने घेरे को और कस देना चाहिये...."

"आप ठीक कहते हैं। पर उसकी यह तोपें...."

"कोई बात नहीं...." और वे जल्दी से आगे बढ़ गये ।

सहायता से निराश होकर निजामुल्मुल्क ने तोपों के सहारे घेरा तोड़कर निकल भागने का निश्चय किया। अन्त में सावधानीपूर्वक व्यूह-रचना करके वह सेना के साथ बाहर निकला। चारों ओर तोपों का घेरा था। धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। पेशवा बाजीराव खुद प्रतिरोधी सेना का निर्देशन कर रहे थे। एक-एक कदम के लिये, मराठा-घुड़सवार अपनी चपलता से, बीस-बीस सिरों की कीमत ले रहे थे। निजाम स्वयं बेतरह घायल हो गया था।

तीन ही दिन में उसकी हालत खराब हो गयी।

मराठा-घुड़सवारों ने उसकी आधी सेना का सफाया कर दिया था। और तब उसने घबराकर अपनी परम्परा में एक और हार जोड़ी-पेशवा के समक्ष।

पेशवा ने उसे इस बार बुरी तरह पस्त कर दिया था। निज़ाम का सुलह-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। सिरोंज के निकट सन्धि-प्रस्ताव पर हस्ताक्षर हुए।

निजाम ने अपने पास से बीस लाख रुपये, क्षति-पूर्ति स्वरूप पेशवा को अर्पित किये।

हीनतम-सन्धि का तग़मा लगाये निज़ाम दिल्ली लौटा।

और वहाँ पर उसकी आवश्यकता भी थी।

खोखली और जर्जरित मुग़ल-सल्तनत पर खून बरसाने के लिये, उत्तरी सीमा पर भयानक लाल-बादल उमड़ने वाला था!

नादिरशाह ने अफगानिस्तान पर अपने खूनी पञ्जे अड़ा दिये थे।

● ●

विजय-श्री चरण चूम रही थी परन्तु मन का यह घोर अन्धकार जीवन में टुटन भर रहा था। पूना में रह पाना दुस्सह हो गया। पेशवा-माता

की क्रोधाग्नि में अनुराग की मञ्जुलता भस्म हो रही थी। राधाबाई के हृदय के असन्तोष से; धीरे-धीरे विरोधियों की संख्या बढ़ती ही गई।

पेशवा कभी-कभी अपने को एकदम अकेला अनुभव करने लगते थे।

समाज की आग को उन्होंने अपनी दृढ़ता से तरल कर देने का निश्चय किया था परन्तु जब उनकी सारी दृढ़ता धू-धू कर जल उठी तो अन्तस का कोना-कोना हाहाकार कर उठा। दिन बीतते रहे, आग फैलती गई।

जन-जीवन में उनके प्रति घृणा है!

परिवार के मस्तक पर वे कलङ्क बनकर अङ्कित हैं!!

समाज अस्पृश्य समझता है!!!

चारों ओर विरोध, घृणा, कुत्सा और अवमानता। बस, और कुछ नहीं।

हिन्दू-पद-पादशाही की महान् महत्वाकांक्षा धूल-धूसरित हो रही थी पर समाज उसके लिये अपनी परम्पराओं की हत्या तो नहीं कर सकता—कभी नहीं कर सकता!

मानसिक अशान्ति बढ़ती गई और उसी अनुपात में उनका स्वास्थ्य भी गिरता गया। दिल्ली में जिस समय दुर्दान्त नादिरशाह खून की नदी बहा रहा था, उस समय महाराष्ट्र का वह शेर—अपने मन के तिमिर में खो गया था।

मराठा-विजय-वाहिनी तत्पर थी; परन्तु उनका निर्देशक समाज की ज्वाला में, अपने शरीर को बूँद-बूँद लहू की आहुति दे रहा था, देने को विवश किया जा रहा था!

मस्तानी देखती—और आँखों से झड़ी लग जाती।

अनेक बार अपने को मिटा देने की चेष्टा की; परन्तु हरबार पेशवा के निश्छल और सबल अनुराग की डोर वापस खींच लाई।

काशीबाई का सारा समय मस्तानी और पति के पास ही बीतता था। मस्तानी पर उसे दया आती थी।

• •

२४ नवम्बर १७३९ की एक सन्ध्या को, पेशवा-माता के आदेश से मस्तानी को उसके महल में, जबरदस्ती गिरफ्तार कर लिया गया। पेशवा निज़ाम के पुत्र नासिरजङ्ग के साथ उलझे थे उस समय।

उन्होंने सुना पर मुख से आह तक न फूटी।

नीराजी और काशीबाई के सहयोग से वह भाग निकली। पेशवा के वक्षस्थल से लगी वह आँसुओं की नदी बहा रही थी कि पेशवा माता का कठोर स्वर आया—

"बाजी!"

दोनों ही चौंके। अलग खड़े हो गये। बाजीराव की निरीह आँखें भर आयीं।

"माता जी!"

"मत कर अपनी अपवित्र जिह्वा से यह पवित्र सम्बोधन! अप्पा, पकड़ ले इस नीच को...."

बाजीराव क्षणभर अवसन्न-से खड़े रहे; फिर सहसा ही तड़प उठे—"ऐसा न हो सकेगा माता जी!" और उनकी 'प्रसादिनी' नग्न हो गयी थी।

अप्पा सहम उठे।

राधाबाई थर-थर काँप रही थीं।

"बाजी!"

"........"

"बाजी, इस मस्तानी के लिये तू महाराष्ट्र को गृह-युद्ध का रौरव

बनाना चाहता है ! तू चाहता है कि छत्रपति शिवाजी का स्वप्न सदा-सदा के लिये परस्पर-विग्रह की ज्वाला में राख हो जाय....तू वासना में, मोह में, भूल गया है बाजी कि उस स्वप्न को सँजोने में, तूने अपने लहू का एक-एक बूँद अर्पित कर देने का सङ्कल्प किया है....एक ओर महाराष्ट्र....तेरी....कोटि-कोटि हिन्दू-प्राणों की आशा, आधारस्तम्भ.... और दूसरी ओर यह तुच्छ, घृणित मस्तानी...."

"........" निश्वासों का तूफान और वही मौन !

"अप्पा !" राधाबाई गरज उठीं—"आगे बढ़ो....मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ अप्पा ! आगे बढ़ो, बाजी का विरोध मेरी लाश पर होगा...." और सभी ने चकित होकर देखा, उनके हाथों की पैनी छुरी, सीने से लगी हुई थी ।

बाजी राव सिहर उठे । अप्पा के पैर काँप उठे । मस्तानी ने अपनी आँखें मूँद लीं ।

"अप्पा !"

"माता जी !"

"बाजी का विरोध मेरी लाश पर होगा....मेरी लाश पर होगा...."

बाजीराव के हाथ से प्रसादिनी झनझनाती हुई ज़मीन पर गिर पड़ी ।

"जाओ....प्रिये....मैं....हार गया....पराजित हो गया...." वे लड़-खड़ाये और अचेत होकर गिर पड़े ।

"प्रभु...." मस्तानी झपटी उनकी ओर ।

पर राधाबाई के संकेत पर उसे पकड़कर बाहर कर दिया गया....

और....

मर्म का घाव

और—

मर्म का घाव फट पड़ा हो जैसे। स्मृतियों की झंझा में खोया हुआ मन तड़प कर सजग हुआ। आँखें पूर्ववत् ढँपी रहीं।

"भाभी!"

"नीरू....आह....नाथ....नाथ!" पास ही खड़ी काशीबाई हाहाकार कर उठी।

नीरू बिलख पड़ा—"राव, आँखें खोलो राव!"

"मस्तानी, प्रिये, मैं हार गया....तुम्हारी रक्षा न कर सका....न कर सका...." कंठ रुद्ध हुआ, पुनः—"रानी....मुझे क्षमा कर देना.... मैं हार गया तो क्या हुआ....तुमसे....मस्तानी, प्रिये, तुमसे मैं अलग नहीं रह पाया....और...."

"नीरू!"

"भाभी, धैर्य रखें....वैद्यराज, वैद्यराज!" चीखता हुआ वह कक्ष के बाहर भागा। रावर-भवन का निस्तब्ध वातावरण कोलाहलपूर्ण हो गया था।

पेशवा बाजीराव अनन्त पथ पर वेगपूर्वक भागे जा रहे अपने प्राणों को रोकना चाहकर भी नहीं रोक पा रहे थे।

एकाएक—

"रानी...." उनकी पलकें झटके से खुल गयीं—"मुझे क्षमा कर देना....नीरू...माताजी...क्या नहीं आयीं....अपने पुत्र का रक्तार्चन....

रानी....नीरू....मैं आ रहा हूँ....आ रहा हूँ....आह!" एक हिचकी और पुतलियों का कम्पन जैसे उसमें खो गया।

रानी काशीबाई पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

वैद्यराज के साथ भागता हुआ नीरू आया तो सब कुछ समाप्त हो गया था। रानी काशीबाई फर्श पर अचेत पड़ी थी और सन्ध्या क्रमशः गहरी होती जा रही थी।

सम्पूर्ण महाराष्ट्र ने, अनुभव किया, जैसे पृथ्वी—उनका आधार, दोलायमान हो गया हो।

२८ अप्रैल १७४० की वह मनहूस सन्ध्या, भारतीय इतिहास को नया मोड़ दे रही थी।

बस